भारत की स्वाधीनता यात्रा: 1857 से 1947

क्रान्ति से गांधी
राज से स्वराज

India's March to Freedom from : 1857 to 1947

Kranti to Gandhi
Raj to Swaraj





स्वतंत्रता के लिए भारत की स्वाधीनता यात्रा : 1857–1947

सन् 1857 की 150 वीं वर्षगांठ को यादगार बनाने के लिए गांधी स्मृति एंव दर्शन समिति ने 11 सितम्बर, 2007 को गांधी स्मृति में एक विशेष प्रदर्शनी " भारत की स्वाधीनता यात्रा : 1857–1947, क्रान्ति से गांधी, राज से स्वराज" की रचना की। प्रदर्शनी का उद्घाटन भारत की राष्ट्रपति श्रीमति प्रतिभा देवी सिंह पाटिल ने किया। प्रदर्शनी में भारत की स्वतन्त्रता यात्रा को प्रभावी चित्रो एंव लेखों द्वारा दर्शाया गया है, जिसकी शुरुआत सन् 1857 के महान् विद्रोह और राजनैतिक परिदृश्य में महात्मा गांधी के आविर्भाव से होती है।







India's March to Freedom : 1857 - 1947

To commemorate the 150th year of 1857, Gandhi Smiriti and Darshan Samiti launched a special exhibition on India's March to Freedom from 1857 to 1947, Kranti to Gandhi, Raj to Swaraj", at Gandhi Smiriti on September 11, 2007. The exhibition which was inaugurated by HE. Smt. Pratibha Devi Singh Patil, President of India, depicts India's March to Freedom, beginning with the great uprising of 1857 and the emergence of Mahatma Gandhi in the political scenario.

मेरा विशवास है कि भारत का ध्येय दूसरे देशों के ध्येय से कुछ अलग है। भारत में ऐसी योग्यता है कि वह धर्म के क्षेत्र में दुनिया में सबसे बड़ा हो सकता है। भारत ने आत्मशुद्धि के लिए स्वेच्छा पूर्वक जैसा प्रयत्न किया है, उसका दुनिया में कोई दूसरा उदाहरण नहीं मिलता। भारत को फौलाद के हथियारों की उतनी आवश्यकता नहीं है; वह दैवी हथियारों से लड़ा है और आज भी वह उन्ही हथियारों से लड़ सकता है। दूसरे देश पशुबल के पुजारी रहे हैं। युरोप में अभी जो भयंकर युद्ध चल रहा है, वह इस सत्यका एक प्रभावशाली उदाहरण है। भारत अपने आत्मबल से सबको जीत सकता है। इतिहास इस सचाई के चाहे जितने प्रमाण दे सकता है कि पशुबल आत्मबल की तुलना में कुछ नहीं है। कवियों ने इस बल की विजय के गीत गाये हैं और ऋषियों ने इस विषय में अपने अनुभावों का वर्णन करके उसकी पुष्टि की है।

(स्पीचेज़ एण्ड राइटिंग्ज़ ऑफ महात्मा गांधी, पृ० 405)



Visitors to the exhibition

I feel that India's mission is different from that of others. India is fitted for the religious supremacy of the world. There is no parallel in the world for the process of purification that this country has voluntarily under gone. India is less in need of steel weapons, it has fought with divine weapons, it can still do so. Other nations have been votaries of brute force. The terrible war going on in Europe furnishers a forcible illustration of the truth. India can win all by soul force. History supplies numerous instances to prove that brute force is as nothing before soul force. Poets have sung about it and seers have described their experiences.

(Speeches and Writings of Mahatma Gandhi, p. 405)



Published by:

Gandhi Smriti and Darshan Samiti

5, Tees January Marg, New Delhi - 110011

Ph: 011 - 23012843, 23011480, 23392710, 23392709

e-mail : 2010gsds@gmail.com

Website : http://gandhismriti.gov.in/

प्रकाशक :

गांधी स्मृति एंव दर्शन समिति

5, तीस जनवरी मार्ग नई दिल्ली – 110011

फोनः 011 – 23012843, 23011480, 23392710, 23392709

इमेलः 2010gsds@gmail.com

वेबसाइटः http://gandhismriti.gov.in/



भारत की स्वाधीनता यात्रा
1857 से 1947 : क्रान्ति से गांधी
राज से स्वराज तक

वर्ष 2007 एक सौ पचासवीं वर्षगांठ है 1857 की उस महान् जन क्रांति की। यह क्रान्ति भारत की राष्ट्रीयता के विकास के पथ का ऐतिहासिक और अविस्मरणीय मील का पत्थर है। अंग्रेज़ों की गुलामी से मुक्ति का बिगुल बजाने वाला यह विद्रोह राष्ट्रीय जन जागृति का महान् प्रतीक है। 1857 की क्रांति भारत की राष्ट्रीय चेतना के विविध आयामों को अपने में समाहित किए हुए है, यही कारण है कि क्रांति के किसी न किसी पहलू से हर व्यक्ति अपने को जुड़ा अनुभव करता है। वर्ष 1857 आज भी जीवित है हमारी चेतना में जब ब्रितानिया साम्राज्य को हमारे वीरों ने गम्भीर चुनौती ही नहीं दी थी बल्कि उसकी जड़ों को हिला कर रख दिया था। अंगेज़ी राज्य ने अपने मुकुट का सबसे मूल्यवान हीरा, भारत, लगभग खो ही दिया था।

भारतीय जनमानस की चेतना में 1857 की छाप अमिट है। 1857 की क्रांति गुलामी, कुशासन और शोषण के खिलाफ सतही आधुनिकता पर परम्परा की शानदार विजय की अमर गाथा है। इस क्रांति के महानायक आज भी देश के घर–घर में प्रातःस्मरणीय हैं।

भारतीय स्मृतिमंथन में इसका विशेष स्थान होने का एक कारण यह भी है कि अंग्रेज़ी ताकत को चुनौती देने के लिये समाज के सभी वर्गों के लोग इसमें जी–जान से शामिल हुए थे।

राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम के प्रत्येक दौर में इन स्मृतियों का प्रेरणादायक योगदान रहा है। 1857 के बाद के वर्षों में देश की प्रत्येक क्रांति चाहे वह अहिंसक जनान्दोलन था या सशस्त्र चुनौती थी सभी ने इस महान् विद्रोह से ही नैतिक प्रेरणा ली है। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में ब्रिटिशराज के अत्याचारों के विरूद्ध उठती आवाज़ों ने 1857 की क्रांति के महत्व को फिर से उभारा। 1920 और 1930 के दशक के क्रान्तिकारियों ने 1857 की क्रांति को ही अपना प्रेरणापुंज माना है भगतसिंह, चंद्रशेखर आज़ाद, सूर्य सेन आदि, जिन्होंने अंग्रेज़ी शासन को हिंसक क्रांति द्वारा उखाड़ फेंकने के प्रयास किये इन सबने 1857 के वीरों से ही प्रेरणा ली। जनक्रान्ति नायकों ने भी इस महान् विप्लव से ही प्रेरणा ली।







नेताजी सुभाष चन्द्र बोस ने आज़ाद हिन्द फौज को देश को स्वाधीन करने के लिये दक्षिण पूर्व एशिया में एकत्रित कर पुनःगठित किया जो स्वाधीनता की ओर बढ़ाया गया एक और क्रान्तिकारी कदम था।

1857 के विषय में ब्रिटिश धारणा कि यह केवल सिपाही विद्रोह था बिल्कुल मिथ्या और उपलब्ध तथ्यों के बिल्कुल विपरीत है। यह तो सर्वविदित है कि 1857 का विद्रोह अंग्रेज़ों के विरूद्ध किया गया सबसे बड़ा जन–विद्रोह था। इसकी पहुँच भी महात्मा गांधी के नमक सत्याग्रह के समान व्यापक थी। इस विद्रोह का सम्पूर्ण स्वरूप, विस्तार, जनप्रियता सब यही प्रमाणित करते हैं कि यह देश का पहला स्वाधीनता संग्राम ही था, केवल चन्द सिपाहियों की बग़ावत नहीं।

भारत में ब्रिटिश शासन की जड़ें बुरी तरह हिल चुकी थीं। इस विद्रोह में भारतीय जनता का अंग्रेज़ों के प्रति हिंसक रवैया शायद स्वाभाविक था क्योंकि एक सदी के शोषण के परिणामस्वरूप देश की जनता का स्वाभिमान जाग गया था और अत्याचारी के विरूद्ध अब उसने हथियार उठा लिये थे। इस विद्रोह के परिणामस्वरुप अंग्रेज़ों ने विद्रोहियों को अत्यन्त क्रूरता से दंडित किया। इन अत्याचारों की मानों कोई सीमा ही नहीं थी, प्रेस की आज़ादी छीन ली गयी, भारतीयों को उचित न्याय न मिल सके इसलिये न्यायपालिका को पूरी तरह से अंग्रेज़ों का साथ निभाना पड़ा, पेड़ों की डालें विद्रोहियों के लिये फाँसी का फन्दा बना दी गईं, बागियों को तोपों के मुँह से बाँधकर उड़ा दिया गया, देशवासियों पर विद्रोह की आवाज़ उठाने के लिये अमानवीय अत्याचार किये गए। विद्रोही नेताओं जैसे मंगल पाण्डे, ताँत्या टोपे और असंख्य विद्रोहियों को खुले आम फाँसी की सज़ा दे दी गई। मार्च करती अंग्रेज़ी फौज से मुँह फेरने वालों को भी कड़ी से कड़ी सज़ा दी जाने लगी।









India's March to Freedom
From : 1857 to 1947: Kranti to Gandhi
From Raj to Swaraj

The Great Uprising of 1857, a historic landmark in India's national evolution, celebrates its glorious hundred and fiftieth anniversary this year in 2007. "1857" encompasses a whole spectrum of legends in Indian national consciousness with which people from all walks of life continue to feel a close bonding. It lives in popular memory as the year in which the might of the British Rule was seriously challenged and shaken. It is widely hailed as a national uprising of the Indian people for liberation from the British yoke. In fact, in 1857 the British had nearly lost the most precious jewel in their crown: India.



A compelling reason why 1857 has endured in popular Indian memory is that people from vastly different segments of the society defying difficult circumstances came together to challenge the British might. It remains deeply embedded in the Indian consciousness as the magnificent sense of triumph of tradition over alien modernity.



These memories have inspired numerous subsequent struggles for national liberation. In particular all attempts at armed revolt in later years have drawn rich moral sustenance from the tradition of 1857. By the early 20th century, critiques of imperialist actions, that sought to recover the rebellious voice of 1857, began to appear. 1857 played a significant role in inspiring the generation of militant revolutionaries of the 1920s and the 1930s. Those who took to arms to overthrow British rule—men like Bhagat Singh, Chandra Shekhar Azad and Surya Sen—as well as those who believed in mass resistance to oust the foreigner, alike shared the feeling of love and admiration for the heroes of the 1857 revolt.



Ultimately, Subhas Chandra Bose reorganised the Indian National Army, Azad Hind Fauj in South-East Asia to focus these feelings during Japan's war against the British.



The British view that it was nothing more than 'Sepoy Mutiny' is too facile. It is a fact accepted by all that the uprising of 1857 remains one of the biggest upsurge against the British, almost as widespread as the Salt Satyagraha led by











ऐसा लग रहा था मानो ब्रिटिश शासक इस विद्रोह को बर्दाश्त नहीं कर पा रहे थे और उन्होंने अत्याचारों की सभी सीमाओं का अतिक्रमण करने की ठान ली थी।

इस अमानवीय क्रूरता से जनमानस का हृदय विक्षोभ से भर गया था।

पलासी युद्ध से 1857 तक के शोषण और दमन चक्र का देशव्यापी विद्रोह था 1857 का विप्लवी संघर्ष। देश के सभी भागों में इसकी ज्वालाएँ फैल गईं थीं जिसकी आंच में ब्रिटिश शासन मानों झुलस गया था। क्रांति की चिंगारियाँ तो देश के कई भागों में 1857 से पहले भी देखी से पहले ही लोगों का आक्रोश भड़क रहा था, के सिख खालसा और तालमीरों का विद्रोह, अफगान, बर्मी और मराठा विद्रोह, मैसूर में का विद्रोह, दक्षिण भारत का पोलिगर विद्रोह बंगाल के विभिन्न हिस्सों में व्याप्त विद्रोह। की बुलन्द आवाज बना 1857 का संघर्ष की लहर पैदा कर दी। 1857 की क्रान्ति के कुँवर सिंह, अमर सिंह, रानी लक्ष्मी बाई, नाना असंख्य जन साधारण जिन्होंने आज़ादी की अलख जगाई, आज हमारे हृदय में कि हम उन्हें कभी विस्मृत न करें और आने वाली हर नई पीढ़ी को राष्ट्र पर करवाएँ।

जा सकती हैं। व्यापक विद्रोह जैसे 1840 के दशक में सिन्ध सन्यासी विद्रोह, नील–विद्रोह, हैदरअली और टीपू सुलतान और अठारहवीं शताब्दी मे विद्रोह की इन दबी चिंगारियों जिसने देश में अद्भुत एकता जन नायक जैसे मंगल पाण्डे, साहब, ताँत्या टोपे और अन्य वास करते है, हमारा कर्तव्य है न्योछावर इन महान बलिदानियों की गौरव गाथा से परिचित

1857 की जन क्रांति

सिपाही विद्रोह अथवा भारत का प्रथम स्वाधीनता संग्राम

1857 के विद्रोह को ब्रिटिश इतिहासकारों ने ऐसा 'सिपाही विद्रोह' बताया जो ''पूर्णतः स्वार्थ केन्द्रित स्थानीय नेतृत्व पर आधारित था – इसमें देश भक्ति का कोई लेश मात्र आभास नहीं था..... न जनसमुदाय का सहयोग था''। वहीं भारतीय इतिहासकारों ने लोक संस्कृतियों, जन–नायकों के कृतित्वों का आधार मानकर तथा ऐतिहासिक तथ्यों को सामने रखकर इसका सटीक चित्रण प्रस्तुत किया है। यह वह विद्रोह था जिसमें 'फिरंगी' के ख़िलाफ देश का साधारण जन –मानस निर्भीक हो खड़ा हो गया था।



इस ऐतिहासिक वर्ष में 1857 के महाविप्लव के विषय में देश में उपलब्ध जानकारी का पर्याप्त न होना बहुत खल रहा है। 1857 की 150 वीं जयन्ती ने हम सबको, साथ ही कवियों, लेखकों, विचारकों को भी उद्वेलित किया है कि इस महान क्रांति का भारतीय पक्ष देशवासियों और विश्व के समाने लाएँ।

अंग्रेज़ों ने इस पूरी लड़ाई को 'म्यूटिनी' या 'ग़दर' बताकर 1857 के पूरे स्वाधीनता संग्राम को कुछ विद्रोही तत्वों की नाफरमानी तक सीमित करने का भरसक प्रयत्न किया। अंग्रज़ों ने इस समर को मामूली घटना बताने के मकसद से मेटकाफ की रिर्पोट को इतना प्रचारित किया कि अनेक इतिहासकार और विचारक भी अंग्रेज़ों के इसी कुप्रचार के प्रभाव में आ गए।

इसका एक मुख्य कारण यह भी है कि भारत में इतिहास लेखन की परंपरा का अभाव रहा है। कथाओं और महाकाव्यों के ज़रिये यहाँ इतिहास रचा गया। इसीलिए 1857 का कोई विधिवत् इतिहास हमारे यहाँ नहीं है। साथ ही हमें यह याद रखना होगा कि अंग्रेज़ों को 1857 से इतनी अधिक चिढ़ थी कि उन्होंने न केवल भारतीयों को इस विषय पर लिखने पर पांबदी लगा रखी थी, बल्कि सन् सत्तावन के योद्धाओं के नामों पर अपनी संतानों के नाम रखने पर भी रोक लगा दी थी।

अतः इन परिस्थितियों में यह तो स्पष्ट ही है कि इस दौर में भारतीय पक्ष को प्रकाश में लाना कठिन था। लेकिन हमारे विद्रोही पूर्वजों ने अपने रक्त से जो इतिहास रचा है उसके अक्षर तो हमारे हृदय पटल पर सदा के लिये अंकित रहेंगे।

वह कैसा क्रूर दौर था इसका अनुमान ही लगाया जा सकता है। साम्राज्यवाद के समर्थक एक प्रतिष्ठित समाचार पत्र के 9 अगस्त 1896 के एक अंक में इस विषय पर स्पष्ट लिखा गया कि ''....यदि कोई व्यक्ति फांसीसी पादरी विद्रोह का समर्थन करता था, न्याय, संविधान की बात करता था, तो उसे लोहे की बेड़ियों में जकड़ दिया जाता था और क्रूरतम् अपराधियों के साथ दण्डित किया जाता था.....'' और इस लेखक ने 1857 के विद्रोह पर लिखने वाले हर दुःसाहसी भारतीय को इसी प्रकार का दण्ड देने की बात की है।









Mahatma Gandhi. The very spontaneity, the spread and popular resentment against British rule lends it the character of a mass struggle for independence.

The British Empire in India was rattled to its foundations. The war was certainly marked by gory events of anti-British violence. Many instances were also recorded of chivalrous Indian behaviour to fleeing `white' refugees. However, it was even more marked by draconic penal ordinances by the colonial authorities, suppression of press freedom, suspension of the rights of Indians to fair trials, summary hangings, blowing up of rebels from the mouths of cannons, and the infliction of inhuman torture on Indians for such trivial offences as turning their faces away from British troops marching in avenging columns down the roads. This ferocity soured deep into the colonial consciousness.

The real significance of 1857 lies in spotlighting ways in which colonialism had impacted on different Indian regions in the previous century since Plassey. The Revolt of 1857 complimented the heritage of resistance to British aggrandisement, demonstrated by the Sikh Khalsa and the Talpur Mirs of Sindh in the 1840s, by the Afghans, the Burmese, and the Marathas in the previous 50 years, and by Tipu Sultan and Hyder Ali in Mysore, and the Poligars further south, as well as by the tribal forces of Western Frontier Bengal in the 18th century. There were many uprisings in India in the 100 years from 1757. The great feat of people like Mangal Pandey, Kunwar Singh, and his brother Amar Singh, Lakshmi Bai, Tatya Tope and Nana Saheb are legendary; their heroic deeds deserve to be recalled and narrated to succeeding generations.





1857 Uprising :

Sepoy Mutiny or India's First War of Independence

The 1857 uprising has been one of the most passionately debated subject with historians, both British and Indian. The British historians have been understandably inclined to dismiss the uprising merely as a " sepoy mutiny" that was "wholly unpatriotic and selfish... with no native leadership and no popular support." The Indian writers, on the other hand, on the basis of folk traditions and the legends handed down through generations, have called it the "First War of Independence" in which people rose enmasse, gave no quarter to the "Firinghis" and fought to the bitter end.

In this solemn year paucity of authentic Indian side of the story of the great uprising is deeply felt. But the spirit of the anniversary of 1857 is inspiring writers and poets and thinkers alike to reflect on the great event.



The conditions under British rule at that time were such that anyone attempting to write about it risked his life. A few contemporary Indians who wrote on 1857 did so for the British. This controversy was first raised inside the British ruling class itself. The defenders of the East India Company underplayed the significance of the Indian revolt by characterizing it as a mere "Sepoy Mutiny" to hide the weaknesses of the Company rule. The opponents of the East India Company, the representatives of the British industrial bourgeoisie showed up the inadequacy of the above characterization and argued that it was a national rebellion. The conclusion they drew was that the Company rule should be ended and the Crown should take over India. Lord Canning, the then Governor-General, not to displease either side, took a middle position!



Sir John William Kaye, the British historian of the 1857 revolt, states that Canning "asked himself whether it was combating". "He soon ceased to speak of the mutiny and called it a 'rebellion'—a 'revolt'. He wrote to the Indian Minister at home, "the Indian Empire was in flames."

The dominant British attitude is revealed in an article entitled,

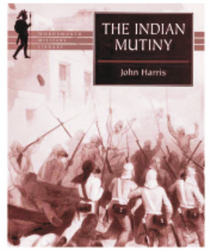


जहां तक इस आन्दोलन का राष्ट्रीयता को उभारने में योगदान का प्रश्न है, तो इसे सदा भारतीय इतिहास की महान् घटना के तौर पर याद किया जाता है और आगे भी किया जाएगा। कभी न भुलाया जा सकेगा कि भारतीयों ने किस तरह अंग्रेज़ों से लोहा लिया था। उस समय की हिन्दू–मुस्लिम एकता की आज के समाज में बड़ी प्रासंगिकता है। इसे एक सकारात्मक पहलू के रुप में देखा जाना चाहिए। हमें इस ऐतिहासिक याद को संजोना चाहिए, ठीक उसी तरह, जिस तरह फ्रांसीसी क्रांति और अमेरिकी गृहयुद्ध को संजोया गया। इन विश्व प्रसिद्ध क्रांतियों से किसी भी मायने में कम नहीं था 1857 का विप्लव।



अंग्रेज़ी शासन में उस समय ऐसी परिस्थिति थी कि यदि कोई विद्रोह का सही विवरण देता तो उसकी जान तक जा सकती थी। कुछ समकालीन भारतीयों ने अगर 1857 पर कुछ लिखा भी तो वह अंग्रेज़ों का ही पक्ष लेकर लिखा। ईस्ट इन्डिया कम्पनी के समर्थकों ने भारतीय जनमानस के इस प्रबल विद्रोह को 'सिपाहियों का ग़दर' करार दिया और कम्पनी के शासन की कमियों को छुपाने के लिये इसे निरर्थक और महत्वहीन बताया। इसके विपरीत ब्रिटिश औद्योगिक वर्ग ने इसे कम्पनी सरकार की नाकामी बताते हुए इस बात पर ज़ोर दिया कि कम्पनी का शासन समाप्त कर भारत को अब महारानी विक्टोरिया के शासन के अधीन किया जाए। तत्कालीन भारत के गवर्नर जनरल लॉर्ड कैनिंग ने दोनों दलों में मध्यस्थता की कोशिश की।





1857 के विद्रोह के इतिहासकार सर जॉन विलियम के लिखते हैं कि लॉर्ड कैनिंग ''स्वयं से पूछते रहते थे कि जिसका वह सामना कर रहे थे वह क्या केवल सिपाहियों का ग़दर था?शीघ्र ही उन्होंने इस को 'ग़दर' कहना छोड़कर विद्रोह कहना शुरु किया। इंग्लैण्ड में भारतीय अधिकारी मंत्री को उन्होंने लिखा ''भारत का साम्राज्य सुलग रहा है''।

उस समय लन्दन टाइम्स के प्रसिद्ध संवाददाता सर डब्ल्यू. रसेल लिखते हैं–: ''यह क्रांति गुलामी के विरुद्ध ही नहीं थी .....हमने तो यहाँ धर्म का, जाति का, प्रतिशोध का, आशा का, अपरिचित अत्याचारी शासन को उखाड़ कर फेंक देने का और स्थानीय नेतृत्व तथा राष्ट्रीय धार्मिक अनुशीलन की पुर्नस्थापना को दृढ़ शक्ति से अंजाम देने के लिए छेड़े गए व्यापक युद्ध को क़रीब से देखा।''



अंग्रेज़ों के बीच भी कुछ सहृदय सज्जन व्यक्ति थे जो सही बात सामने लाने से नहीं हिचकिचाए। क्रान्ति को दबा दिये जाने के आठ वर्षों बाद कर्नल मैलेसन पुनः भारत आए, देश के विभिन्न वर्गों से मिले और अपनी 1891 में प्रकाशित पुस्तक ''द इण्डियन म्यूटिनी ऑफ 1857' में लिखा कि ''यह विद्रोह राष्ट्रीय ही था'' एक सदी से हमारे वफादार लोगों के मन में जो घृणा, जो विक्षोभ जागा था वह व्यक्तिगत नहीं राष्ट्रीय स्तर का था क्योंकि परिस्थितियाँ ही कुछ ऐसी बन गई थीं। ''मैलेसेन इससे पहले तीन खण्डों में इस विद्रोह का इतिहास लिख चुके थे।



बाद की पुस्तक में उनकी विद्रोह के प्रति स्पष्टतः सकारात्मक सोच उभर कर आती है। फैज़ाबाद के जन नायक मौलवी अहमदुल्ला को वे इन शब्दों में स्मरण करते हैं –

''मौलवी अद्भुत व्यक्तित्व के मालिक थे, विद्रोह के दौरान उनके नेतृत्व के अनेक प्रमाण मिलते हैं '' ..... युद्धक्षेत्र में दो बार सर कॉलीन कैम्पबेल को तगड़ा मुकाबला हर कोई नहीं दे सकता था... यदि वही देशभक्त है जो अपने देश की स्वाधीनता के लिये निडर हो कर लड़े तो मौलवी सचमुच ही सच्चे देशभक्त थे। उन्होंने कोई हत्या अथवा षड़यंत्र नहीं रचा था बल्कि वीरता से सम्मानजनक रुप से विदेशी शासकों से युद्ध किया था जिन्होंने उनके देश पर कब्ज़ा कर रखा था। उनकी स्मृति सदा ही वीर और देशभक्तों को दिए जाने वाले पवित्र सम्मान के योग्य रहेगी।''

यही सम्मानजनक श्रद्धांजलियाँ अनेक अंग्रेज़ इतिहासकारों ने अन्य क्रांतिवीरों जैसे झांसी की रानी, ताँत्या टोपे, कुँवर सिंह तथा अन्य महान् जननायकों को दी है। भारतवर्ष का जनमानस तो निश्चित रुप से स्वीकार करता है कि 1857 की क्रांति ही हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन का मुख्य प्रेरणास्त्रोत है।

1857 में लखनऊ के वली बिरजिसकद्र के फरमान में यह स्पष्ट उल्लेख है ''सभी हिन्दू और मुसलमान जानते हैं कि हर इन्सान को चार चीजें बहुत प्रिय हैं पहला–धर्म; दूसरी इज्ज़त; तीसरा, जीवन; और चौथी, सम्पत्ति; और यह सभी स्थानीय शासन में ही सुरक्षित हैं।''

जो इस जन–विद्रोह को केवल सिपाहियों की बगावत मानते हैं क्या यह समझा सकेंगे कि कैसे दस दिनों के अन्दर अवध से अंग्रेज़ी शासन समाप्त हो गया था ? कैसे अनेक प्रान्तों में सिपाहियों से पहले स्थानीय जनता विद्रोह कर चुकी थी ? और अगर यह केवल सिपाहियों का ग़दर ही था तो ''पूरे देश को किस लिये सज़ा देना ज़रुरी था, क्यों लोगों को फाँसी पर लटकाया गया, मौत के घाट उतारा गया था'' ? लॉर्ड कैनिंग के फैसले ''सिपाहियों की तुलना में स्थानीय जनता के प्रति क्यों अधिक कठोर थे?''क्यों यह .... विद्रोह एक पूर्वी तूफान की तरह फूट पड़ा और देश भर में कम्पनी शासन की धज्जियां उड़ गईं ?''

यह विद्रोह वास्तव में अंग्रेज़ों के ख़िलाफ पहला देशव्यापी सामूहिक विद्रोह था जिसने इसे राष्ट्रीय स्वरुप दिया। पण्डित जवाहर लाल नेहरु का यह कथन सत्य ही है कि ''यह एक सैन्य विद्रोह से कहीं अधिक था। यह बहुत तेज़ी से फैला और एक जनव्यापी विद्रोह तथा भारतीय स्वाधीनता संग्राम के रुप में प्रतिष्ठित हुआ।'

"How to Deal with It," published on 9th August 1896, in Pioneer, a very influential British organ of the time:

".....If a clergyman praised the French Revolution and advocated Parliamentary reform and fair representation, he was condemned to work in iron manacles, to wade in sludge among the vilest criminals...."

"The writer advocated the infliction of the same punishment on any Indian who dared to write on the Indian Mutiny of 1857."India, thus, had no say in the controversy but our rebel ancestors with their heroic deeds and by shedding their warm blood had made their contribution more eloquent than words.



Sir W. Russell, the famous correspondent of the London Times wrote: "Here we had not only a servile war and a sort of Jacquerie combined, but we had a war of religion, a war of race, and a war of revenge, of hope, of national determination to shake off the yoke of a stranger and to re-establish the full power of native chiefs and the full sway of native religion."

Eight years after the suppression of the revolt, Colonel Malleson again visited India, talked with people in various walks of life on the events of the 1857 revolt and admitted the dominance of the national character of the uprising in his later smaller work, The Indian Mutiny of 1857, published in 1891. "Circumstances had proved to me that extraneous causes were at work to promote an ill feeling, a hatred not personal but national, in the minds of men who for a century had been our truest and most loyal servants." This was an advancement on his earlier work - a three volume history of the revolt on the basis of the "sepoy mutiny" thesis.



Malleson paid his tribute to Maulavi Ahmadullah of Fyzabad in these words:

"The Maulavi was a very remarkable man...Of his capacity as a military leader many proofs were given during the revolt...No other man could boast that he had twice failed Sir Colin Campbell in the field! If a patriot is a man who plots and fights for the independence, of his native country, then most certainly the Maulavi was a true patriot. He had not stained his sword by assassination, he had connived at no murders; he had fought manfully, honourably and stubbornly in the field against the strangers who had seized his country; and his memory is entitled to the respect of the brave and true-hearted of all nations."

Such glowing tributes from British sources themselves could be given for Rani of Jhansi, Tatya Tope, Kunwar Singh and many local leaders. Indian people have already accepted the uprising of 1857 as the source inspiring our national movement.

It was a very healthy national feeling to prefer our own rulers to the foreign rulers and have the strength and confidence to deal with the failings and limitations of our rulers in our own way and according to our own strength. This is exactly what the Indian revolutionary leaders of 1857 did.

In Lucknow, in a proclamation issued by Birjis Qadr, Wali of Lucknow, it was stated: "All the Hindus and Mohammedans are aware that four things are dear to every man - first, Religion; second, Honour; third, Life; fourth, Property. All these four things are safe under a native government".



Those who dismiss the uprising as merely a sepoy mutiny must also explain how it was that in the course of ten days English administration in Oudh vanished like a dream without a trace, why, at several places the populace rose before the sepoys at those stations mutinied? If it was a purely military insurrection, why was it deemed "necessary to punish the entire country and her people and oppress the citizens by fine and hanging for complicity in acts with which they of their own accord had nothing to do". Why did Lord Canning always "judge much more harshly those of the civil population than sepoys?" Why did the discovery of a plan to murder all Europeans at Nagpur synchronize with mutiny at Aurangabad, and why did "the revolt burst with the suddenness of an eastern tempest" and "in thousands of square miles overthrow and scatter to the winds the Company's administration which had seemed secure against any shock?" These and many such questions are still awaiting convincing answers from those who continue to have a colonial mindset.



But it is unanimously believed by historians on both sides that indeed, it was, up till then, the biggest upsurge against the British that gives it the character of a War of National Independence.

As Pandit Jawaharlal Nehru has righty remarked, "It was much more than a military mutiny. It spread rapidly and assumed the character of a popular rebellion and a war of India's Independence".



क्रांति की पृष्ठभूमि



1857 के विद्रोह के वास्तविक स्वरुप को समझने के लिये तथा भारत पर इसके दूरगामी सामाजिक , राजनैतिक तथा आर्थिक प्रभाव को समझने के लिये यह नितान्त आवश्यक है कि हम इसकी जड़ों तक पहुँचे और रक्तरंजित इस गाथा में देश के हर वर्ग की भूमिका को समझें। इस समूचे विद्रोह की पृष्ठभूमि में अंग्रेज़ी साम्राज्यवाद द्वारा भारतीय जनता का चहुँमुखी शोषण निहित था। 1857 की जन क्रांति इस महान् देश की, उसके वासियों के ऊपर अत्याचार, अन्याय और शोषण की, ईस्ट इण्डिया कम्पनी के आगमन से लेकर इस क्रांति के फलस्वरुप उसके राज की समाप्ति तक की एक भयावह त्रासद गाथा है।



व्यापारी बन कर आई कम्पनी ने क्रमशः अन्य विदेशी प्रतिद्वन्दियों को हराते हुए देश पर अपना शिकंजा कसना शुरु किया। 1757 के प्लासी युद्ध के बाद से उनकी जय–यात्रा निर्बाध गति से चल पड़ी। 1765 तक बंगाल, बिहार, तथा उड़ीसा की दीवानी वे हासिल कर चुके थे।

इंग्लैण्ड में आई औद्योगिक क्रांति के परिणामस्वरुप देश के कुटीर उद्योगों को कम्पनी राज ने लगभग नष्ट ही कर दिया। भारत ही ब्रिटेन के उद्योगों का प्रमुख बाज़ार बन गया और देश के परम्परागत कुटीर तथा हस्तशिल्प उद्योग विनाश की कगार पर पहुँच गए। लॉर्ड विलियम बेन्टिन्क ने इंग्लैण्ड में कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स को लिखा ''वाणिज्य के इतिहास में दुःखों की और कोई ऐसी मिसाल नहीं है। सूत कातने वाले जुलाहों की हड्डियों से इस देश की धरती मानो पट सी ही गई है।''



देश में व्याप्त चरम दुर्व्यवस्था, किसान वर्ग का शोषण , और असंख्य अन्यायों के विरोध का स्वर था 1857 का महासमर।

अंग्रेज़ों ने अपने शासन की कमज़ोरियों को छिपाने और उस विद्रोह का महत्व कम करने की हर संभव कोशिश की। दरअसल अंग्रेज़ 'ब्रिटिश साम्राज्य का सूरज कभी अस्त नहीं हो सकता' जैसी कहावत के मद में इतने चूर थे कि वे यह विश्वास करने को तैयार ही नहीं थे कि उनके शासितों द्वारा उनकी सत्ता उखाड़ फेंकने का इतना सशक्त प्रयास हो सकता है। इसलिए अंग्रेज़ इतिहासकारो ने इस संपूर्ण घटना को आकस्मिक बताकर एक म्यूटिनी साबित करने की कोशिश की। सिर्फ दिल्ली में ही 25,000 लोगों को फांसी पर लटका दिया गया, ताकि लोग 1857 को याद न कर सकें।

अंग्रेज़ों ने खुद को अशोक, अकबर और मुग़लों के बाद भारत का सर्वमान्य शासक साबित करने की भरपूर कोशिश की। उनकी पूरी कोशिश थी कि किसी भी तरह उस विद्रोह की याद को एकदम मिटा दिया जाए। जिन इतिहाकारों ने अपनी पुस्तकों में उसे 'सिपाही विद्रोह' की संज्ञा दी, उनकी किताबों को जारी रहने दिया गया। हालांकि अंग्रेज़ इतिहासकारों के अलावा किसी ने इसे सिपाही विद्रोह की संज्ञा नहीं दी। यहाँ तक कि एरिक स्टोक्स ने भी अपनी पुस्तक 'द पेज़ेंट ऐंड द राज : स्टडीज़ इन एग्रेरियन सोसाइटी ऐंड पेज़ेंट रिबेलियन इन कोलोनियल इंडिया' में उस समय किसानों के असंतोष और उनके विद्रोह का ज़िक्र किया है। वे लिखते हैं कि ''उस आन्दोलन को जनविद्रोह भी कहा जा सकता है, क्योंकि अंग्रेज़ों की आर्थिक नीतियों से अगर किसी वर्ग को सबसे ज़्यादा नुकसान हुआ था, तो वे किसान और हस्तशिल्पी थे। इसलिए उन लोगों ने उस विद्रोह में अपनी व्यापक भागीदारी सुनिश्चित की थी।''

अक्सर एक सवाल पूछा जाता है कि क्या यह संग्राम पुरानी व्यवस्था को पुनर्जीवित करने के लिए था?अगर विद्रोह सफल हो जाता, तो क्या राजे–महाराजों का ही शासन वापस आता। माना कि वह सामंतवाद का दौर था, लेकिन उन राजाओं को कभी देश के निवासियों से अलग नहीं माना गया। वे रजवाड़े भी आख़िरकार विदेशी शासन के ख़िलाफ ही लड़ रहे थे।

कहा जाता है कि उस आन्दोलन ने छोटी–छोटी रियासतों में विभाजित देश को एकीकृत करने का काम किया था। पर सवाल यह है कि राजे–रजवाड़े क्या पहले नहीं थे? गुप्त और मुग़लकाल में भी राजे–रजवाड़े थे अतः यह कहना सही नहीं है कि 1857 के समय देश संगठित नहीं था। उस समय भी अलीवर्दी ख़ां से लेकर मराठों तक और अवध की बेगम से लेकर झांसी की रानी तक ने मुग़ल बादशाह के नाम पर विद्रोह किया और खुद को मुग़ल साम्राज्य का गवर्नर (राज्यपाल) बताया। मराठा राजा साहू ने भी कहा कि ''मैं मुग़लों का वायसराय हूँ''। हालांकि उस समय के राजे–रजवाड़े ज़्यादातर स्वायत्त थे, लेकिन फिर भी उन्होंने अंग्रेज़ों के विरुद्ध मुग़लों के नाम पर विद्रोह किया, क्योंकि अंग्रेज़ विदेशी सत्ता के प्रतीक थे। यद्यपि यह भी सच है कि देश के कई प्रान्तों के राजाओं ने अपने स्वार्थ हित में विद्रोहियों का साथ नहीं दिया।

बंगाल प्रेसीडेंसी का जो हिस्सा सीधे ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकार क्षेत्र में था, वहाँ के किसान कंपनी की लगान नीतियों से बड़े परेशान थे। वजह यह थी कि कंपनी विशुद्ध व्यापार के लिए यहाँ आई थी। पर न तो कंपनी के निदेशकों की भारतीय रियाया में कोई दिलचस्पी थी, न कंपनी के स्थानीय पदाधिकारी जन कल्याण का कोई कार्यक्रम चलाना चाहते थे। देसी ज्ञान–विज्ञान को उन्होंने मूल से नष्ट कर दिया। मदरसों और पाठशालाओं को मिलने वाले अनुदान पर रोक लगाकर यहाँ की शिक्षा व्यवस्था चौपट कर दी और स्वयं भी शिक्षा का कोई कार्यक्रम नहीं आरम्भ किया। पूरा मलमल कपड़ा उद्योग ध्वस्त कर दिया। लॉर्ड वेलेज़ली ने जूट, चाय और रबड़ तथा नील की खेती को बढ़ावा देकर किसानों को भुखमरी के कगार पर धकेल दिया। इसलिए बंगाल प्रेसीडेंसी का किसान कंपनी सरकार से इतना असंतुष्ट था कि उसे बस एक चिंगारी की ज़रुरत थी। वह चिंगारी मुहैया करा दी किसान परिवारों से आए सिपाहियों ने।

Background of the Uprising

To understand, therefore, the real nature of the rebellion, and to estimate its effects on subsequent Indian history-social, economic and political- it is essential that we investigate into the real causes, follow its course through blood and terror and study the role played by various classes.



The background of the uprising may be traced to the imperialist ambitions and exploitation of the Indian people. It would be well, therefore, to go back to the days of the founding of the East India Company. The stories of the fabulous profits being made by the Portuguese, the Dutch and the French companies trading with India tempted British merchants and adventurers to form a trading company for a similar purpose. In 1600, the East India Company obtained a Charter from Queen Elizabeth I to trade with India and the Spice Islands.



According to the terms of the original Charter, the East India Company was " not to exchange as far as possible the manufactured goods of England for the products of India but to carry the manufactures and commodities of India to Europe. It was a penal offence to wear wrought silk or printed or dyed calicoes from India, Persia and China. The penalty was up to $200.34.



In 1765, the East India Company acquired the Diwanee of Bengal, Bihar and Orissa from Mughal Ruler Shah Alam II. By then, it had ousted all other European competitors from the Indian market. The acquisition of the Diwanee and the virtual monopoly of the trade with India further increased the profits of the Company and its servants, while adding heavily to the misery and deprivation of the people of India.

Industrial Revolution in England resulted in progressive destruction of India's cottage industries. The Industrial Revolution in England completely transformed the character of her relations with India. The expansion of British manufacture overwhelmed and ultimately destroyed the primitive Indian industry and converted the country into a source for raw material. India became a major market for British goods. There was steady decline in the general condition of the uprooted artisans and craftsmen became miserable. Lord William Bentinck wrote to the Court of Directors that their "misery hardly finds a parallel in the history of commerce. The bones of the cotton weavers are bleaching the plains of India."





The seeds of this colossal human misery and recurring famine in certain parts of India particularly Orissa, Bengal and Bihar progressed with market economy and decay of rural crafts which obstructed traditional specialization and division of labour and prevention of technological improvements, basic requirements for any specialized field. Absence of interaction and successive insulation of our villages helped in the steady growth of poverty and pauperisation caused by progressive "deindustrialisation".

किसानों, सिपाहियों और पुराने सामंतों का यह असंतोष हिन्दी पट्टी में फैले लोकगीतों और किंवदंतियों में आज भी मौजूद है। भारतीय जनमानस में अंग्रेज़ों के प्रति आक्रोश और घृणा वास्तव में बहुत व्यापक थी। अंग्रेज़ों ने इस विद्रोह को कुचलने के लिए जो पशुता दिखाई, वह खुद मेटकाफ़ के परिश्रम से तैयार तर्कों का खंडन करने को क़ाफी है कि "यह क्रांति नहीं सिर्फ धर्मांध सिपाहियों की धार्मिक असहिष्णुता का विस्फोट भर था।"

उस क्रांति के बारे में कई भारतीय इतिहासकारों ने भी विचार व्यक्त किया है कि 1857 की क्रांति वास्तव में जेहाद था। उनके विचारों से सहमत नहीं हुआ जा सकता, क्योंकि उन दिनों धर्म और राजनीति अलग नहीं थे। अगर वह जेहाद था, तो फिर क्यों अंग्रेज़ों के खिलाफ सशस्त्र लड़ाई के दौरान उन्हीं चर्बी वाली कारतूसों का सिपाहियों ने प्रयोग किया, जिनके इस्तेमाल करने के ख़िलाफ उन्होंने अंग्रेज़ों के विरुद्ध हथियार उठा लिए थे?

इसमें कोई संशय नहीं कि भारतीय इतिहास की असंख्य महत्वपूर्ण घटनाओं में 1857 के विद्रोह का अलग ही महत्व है।

राज्यों का हड़पा जाना

अंग्रेज़ों ने क्रमशः देश की रियासतों को हड़पने की प्रक्रिया शुरु की ताकि कम्पनी शासन की जड़ें मज़बूत हो सकें।

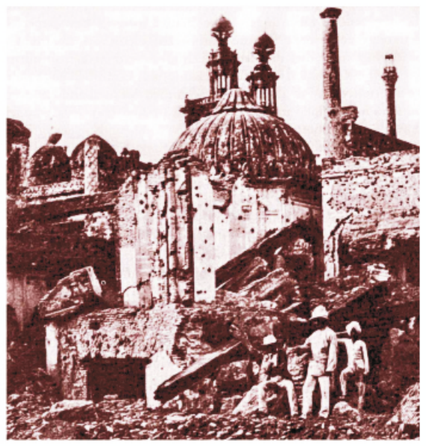
1849 में अंग्रेज़ों ने मुल्तान में हुए विद्रोह की सज़ा पंजाब का राज्य हड़प कर दी, जबकि पंजाब का बालक शासक किसी भी तरह से इस विद्रोह के लिए ज़िम्मेदार नहीं था। इसी तरह स्वाभाविक उत्तराधिकारी न होने के कारण सतारा, झांसी और तंजौर के राज्य भी हड़प लिये गए। 1856 में अवध राज्य के हड़पे जाने पर तो देशवासियों को पूरा विश्वास हो गया कि अंग्रेज़ इस देश में अत्याचार की, अन्याय की सभी सीमाओं को पार कर गए हैं।





कम्पनी के ख़जाने में राज्यों का शोषण करके दिनोंदिन–वृद्धि होती रही। प्लासी युद्ध से 1857 के विद्रोह के बीच कम्पनी ने 20 युद्ध किये और देश के विभिन्न हिस्सों में अपना अधिकार जमा लिया। इन सौ वर्षों में मैसूर, महाराष्ट्र, कर्नाटक, तंजौर, बुन्देलखण्ड, रोहिलखण्ड, हरियाणा, पंजाब तथा अवध पर कम्पनी का शासन हो गया। कश्मीर से कोचीन तक की रियासतें अंग्रेज़ी शासन के अधिकार क्षेत्र में आ गईं। अवध के छीने जाने पर कम्पनी सेना में तीव्र असन्तोष फैल गया क्योंकि इसमें तीन चौथाई हिस्सा इसी क्षेत्र से आता था।





अवध पर अंग्रेज़ी अधिकार से वहाँ की सेना के 70,000 सिपाही बेरोज़गार हो गए। इस समय ले. जनरल इन्स ने कहा "एक सिपाही का बेरोज़गार होना मतलब एक डाकू का तैयार होना था।"



Lord Dalhousie's Doctrine of Lapse and Annexation of Princely States

The wealth, which the Company derived from the exploitation of Bengal, Bihar and Orissa tempted it to expand its territory. The Company's armies fought twenty wars between the Battle of Plassey and the Great Rebellion. In one hundred years, Mysore, Maharashtra, Karnatak, Tanjore, Bundelkhand, Rohilkhand, Haryana, the Punjab(including pre-partition North Western Frontier Province) and Oudh were added to the Company's domain. All the former native states, from Kashmir down to Cochin, became the Company's protectorate.



The Punjab was annexed in 1849 though the boy Raja was in fact a ward of the East India Company and was not personally responsible for the Multan rising that finally led to the second Sikh War. The small states of Satara, Jhansi, and Tanjore were annexed because of the failure of natural heirs.
The principality of Satara was created, when the Peshwa's territories were annexed, with a view to offer a suitable outlet for Maratha ambition.



So far as the feudal elements were concerned, their major grievance was against the annexations under Lord Dalhousie's 'Doctrine of Lapse', which derecognised the adopted sons of the deceased princes as legal heirs and their kingdoms were annexed. In this way, Satara (1848), Nagpur, Sambalpur and Baghpat (1850), Udaipur (1852) and Jhansi (1853) were taken over in quick succession. This amounted to British interference in the traditional system of inheritance and created a group of disgruntled feudal lords who had every reason to join the ranks of the rebels. Finally, in February 1856, Awadh was annexed and the king was deported to Calcutta. The annexation did not merely affect the nawab and his family, but the entire aristocracy attached to the royal court. These deposed princes in many cases offered leadership to the rebels in their respective regions and thus provided legitimacy to the revolt. Thus, Nana Sahib, the adopted son of Peshwa Baji Rao II, assumed leadership in Kanpur, Begum Hazrat Mahal took control over Lucknow, Khan Bahadur Khan in Rohilkhand, and Rani Lakshmibai appeared as the leader of the sepoys in Jhansi, although earlier she was prepared to accept British hegemony if her adopted son was recognized as the legitimate heir to the throne. In other areas of central India, where there was no such dispossession, like Indore, Gwalior, Saugar or parts of Rajasthan, where the sepoys rebelled, the princes remained loyal to the British.



The other elements of rural society that joined the ranks of the rebels were the landed magnates or the taluqdars. The annexation of Awadh was followed by a summary settlement in 1856, which led to the dispossession of a number of powerful taluqdars. As a result, in Awadh the taluqdars lost about half of their estates; they were disarmed and their forts demolished, resulting in a considerable loss of status and power in local society. In the eyes of law they were now no different from the humblest of their tenants. Awadh, therefore, became the hotbed of discontent of the landed aristocrats.

If there was still a vestige of lingering faith in British fairness, the annexation of Oudh in 1856 completely removed it.



What most affected the Company's soldiers was the annexation of Oudh-"the fatherland of the bulk (three-fourths) of the Company's army" by Lord Dalhousie in 1855. (Oudh had, in fact, been managed by the company under a system of double-government since the middle of the 18th century.) "The Mussalmans, not only of Oudh, but of all upper India, were embittered and angered by the suppression of one of the few Muhammedan reigning houses which had been left in power", wrote Lieutenant General McLeods Innes. Thousands of traders who depended on the courts lost their livelihood.

The disbandment of the former King's army, which had swollen to 70,000 men, according to Resident Lowe's calculations, had thrown a horde of desperados upon Oudh "To discharge a sepoy was to create a bandit," remarked Lt. General Innes' There was not a family in Oudh, which did not have one member at least serving in the army. The region was, thus overrun by the disbanded soldiers who had found no place in the new Oudh Irregular Force and the military police. The disbandment resulted in forced unemployment peasant's home. To this military class, hitherto annexation of Oudh proved prejudicial also for home of the sepoys and the garden-plot of the longer exempted from taxes."





in almost every Oudh favoured, the another reason: "the pensioner were no

To justify the difficult, but the Board of share the responsibility approval to this the arguments of the the talukdars and acted without honour, and had been very hard on the Nawab."

annexation is probably not impossible or even Control and the Court of Directors should also with Dalhousie, for the majority accorded their unpopular measure after a careful consideration of dissenting minority. The annexation alienated all headmen who held that the Government " had

गोरा महानायक' सोया है पहाड़ों की रानी की गोद में

मसूरी, यानी पहाड़ों की रानी। गुज़रे वक्तों के राज़ अपनी वादियों में समेटे चुपचाप खड़ा है यह शहर। बीते ज़माने की धुंधली पड़ती यादों में से एक है यहां पर बनी एक कब्र। इस शहर के भी कम ही बाशिंदों को पता है कि वक्त के थपेड़े और इनसान की अनदेखी के निशान सजाए यह कब्र 'गोरा महानायक' जॉनलैंग की है। पहाड़ों की रानी की गोद में सोए इस शख्स ने कभी झांसी की रानी के हक़ के लिए आवाज उठाई थी। 1856 में लॉर्ड डलहौज़ी के 'दत्तकपुत्र अधिनियम' के ख़िलाफ आस्ट्रेलियाई पत्रकार जॉन लैंग ने झांसी की रानी का मुकदम लड़ा था।



वर्ष 1857 के विद्रोह के प्रमुख कारणों में लार्ड डलहौज़ी का चर्चित 'दत्तकपुत्र अधिनियम' भी था। अधिनियम में तय किए गए क़ायदों के अनुसार बिना वारिसों वाली कई रियासतें ईस्टइंडिया कंपनी के अधीन होती गईं। जब ऐसी ही स्थिति झांसी के सामने ऐसी आई, तो वहां की रानी लक्ष्मीबाई ने इसका विरोध किया। लक्ष्मी बाई ने लॉर्डडलहौज़ी के इस नियम के ख़िलाफ कानूनी लड़ाई भी लड़ी। इसी दौरान कलकत्ता के उच्चन्यायालय में 1856 में ब्रिटिश हुकूमत के आलोचक रहे ऑस्ट्रेलियाई पत्रकार और बैरिस्टर जॉनलैंग ने इस अधिनियम के खिलाफ अपील की और रानी लक्ष्मी बाई का मुकदमा अपने हाथ में लिया। लैंग भले ही यह मुकदमा हार गए, लेकिन अपने इस प्रयास के कारण 1857 के विद्रोह के 'गोरामहानायक' कहलाए।

18 जून 1858 को झांसी की रानी की शहादत के बाद जॉनलैंग पर्वतों की रानी मसूरी में आकर रहने लगे। करीब छः वर्ष उन्होंने मसूरी की शांत वादियों में बिताए। न्यायालय के बाहर भी जॉन लैंग ने अंग्रेजों के खिलाफ मोर्चा खोला था। उन्हें 'मफसलाइट' अखबार के संस्थापक के रुप में भी जाना जाता है, जिसे उन्होंने मसूरी, मेरठ समेत कई अन्य स्थानों से प्रकाशित किया। इस अख़बार में छपे कंपनी विरोधी लेखों ने उन्हें ब्रिटिश सरकार के आंखों की किरकिरी बनाया था।

20 अगस्त 1864 को ख़राब मौसम और भारी बरसात के बीच उन्होंने अंतिम सांस ली। उनकी मौत पर अंग्रेज़ी हुकूमत ने पार्टी का आयोजन किया। 21 अगस्त 1864 की पुलिस रिर्पोट के अनुसार जॉनलैंग की मौत अचानक ही हुई, लेकिन इतिहासकार मानते हैं कि संभवतः अंग्रेज़ी हुकूमत की आंखों में खटकने के कारण उनकी हत्या करवाई गई थी।

A Foreign Crusader for India 'rests' in Queen of Hills Mussoorie

Mussoorie, the Queen of Hills, stands silent with infinite tales of the British Raj hidden in her quiet splendour. One such reminder of the days of British supremacy is a neglected tomb of an Australian Journalist and barrister John Lang, whose role in the revolt of 1857 went unnoticed even by the local population. It was John Lang who fought the historic case of Rani Lakshmi Bai against the annexation of her Kingdom, Jhansi under the guise of the Doctrine of Lapse on account of her not having a biological heir.



1857 was the year in which Lord Dalhousie's atrocious policy of annexation of princely states was at its peak. Soon Jhansi also faced this as there was no biological heir to the kingdom, but Rani Lakshmi Bai contested this and lodged a case against the East India Company. In 1856 Australian Journalist and Barrister John Lang, who was very vocal against British rule in India had appealed in Calcutta High Court against the Doctrine of Lapse, and it was he who fought Rani Lakshmi Bai's case. Though he lost the case but he rose high in the esteem of Indians and was known as the 'Gora hero' of 1857.



After the martyrdom of Rani Lakshmi Bai on 18th June 1858, John Lang retired to Mussorrie where he lived till his death on 20th August 1864.

All his life he raised his voice against the wrong doings of the British in India, and did his best to support the Indians. He founded a 'Moffissulite' newspaper, which he published from Mussorrie, Meerut and many other places. His anti-British writings made him an eyesore for the British.

A grateful nation salutes this 'gora' for supporting the Indian cause in 1857.

1857 से पहले क्रांति पुंज

1806 में तमिलनाडु स्थित वेल्लोर के क़िले में भारतीय सिपाहियों ने विद्रोह का शंख नाद किया था।



वेल्लोर स्थित मद्रास आर्मी की 10 जुलाई 1806 की क्रांति के दो प्रमुख कारण थे। पहला कारण तो सेना का नया नियम था जिसमें सिपाही कोई भी धार्मिक चिह्न नहीं धारण कर सकते थे। हिन्दू सैनिकों को यह आदेश दिया गया कि वे अपनी जाति–धर्म से जुड़ी कोई पहचान न धारण करें तथा मुसलमान सिपाहियों को आदेश दिया गया कि वे अपनी दाढ़ी और मूंछे मुंडवा दे। इन सिपाहियों से ज़बरदस्ती इन आदेशों का पालन करवाया जाता था। टीपू सुल्तान के पुत्र भी इन सिपाहियों के संरक्षण में थे। सिपाही भी उनके पक्ष में हो गए थे और उन्हें टीपू के द्वितीय पुत्र फतेह हैदर को मैसूर राज्य का राजा घोषित करके किले पर झंडा फहरा दिया। इस विद्रोह को जल्दी ही दबा दिया गया क्योंकि एक अंग्रेज़ अफ़सर ने वहाँ से भाग कर अपने अधिकारियों को इस बारे में सतर्क कर दिया था। इसके बाद अंग्रेजों ने टीपू के परिवार को दूर कलकत्ता भेज कर नज़रबन्द कर दिया।



दक्षिण भारत में 1750 के बाद से हुए अंग्रेज़ों के ख़िलाफ अनेक छोटे–बड़े विद्रोहों में वेल्लोर के सिपाहियों का विद्रोह सब से सशक्त था।

यदि हम विश्लेषण करें तो पाएंगे कि वेल्लोर की क्रांति के वही मूलभूत कारण थे जिन्होंने 50 वर्ष बाद उत्तरी भारत में विद्रोह की आग फैला दी जैसे धार्मिक विश्वास पर आघात, राजा के प्रति वफ़ादारी, विद्रोहियों की सैन्य शक्ति अधिक मज़बूत न होना और शासक वर्ग की क्रूरता, लापरवाही तथा दमनचक्र। 1857 के महासमर में भी इन्हीं कारणों ने अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

Prelude to 1857

The fort at vellore in Tamil Nadu had witnessed a mutiny amongst Indian soldiers in 1806.

The mutiny of the Madras Army at Vellore on July 10, 1806, is usually ascribed to two factors. The first was that new army regulations forced the soldiers to eliminate all marks of religious identity. The Hindus were told to erase all caste marks; the Muslims were forced to shave their beards and moustaches. Furthermore, the soldiers had been guarding the sons of the Tiger of Mysore, Tipu Sultan. They are said to have won over the soldiers loyalty. In fact, Tipu's second son, FatehHyder, was proclaimed king, and the old Mysore flag raised over the fort. The mutiny was swiftly put down, as a British officer escaped, and alerted his superiors. In the aftermath, Tipu's family was sent off to far-away Calcutta, to live under the watchful eye of the Raj.

The Vellore mutiny was the largest and most violent of a series of insurrections against the British, which took place across southern India after 1750.

It is fascinating to see how the Vellore mutiny, in its most basic elements — from the anger amongst the soldiers at what they saw as an insult to their religious and cultural identity, to the use of readily-recognizable symbols such as former royalty, military ineptitude on the part of the rebels, and an amazing lack of interest and understanding in the rulers — presages the great storm which rose in northern India 50 years later.

कार्ल मार्क्स तथा 1857

आज जब देश 1857 के विद्रोह की 150वीं जयन्ती मना रहा है तो कार्लमार्क्स का स्मरण स्वाभाविक ही है जिन्होंने इसे स्वाधीनता संग्राम माना।

मार्क्स तथा एंगेल्स ने न्यूयॉर्क डेलीट्रिब्यून में नियमित रूप मे 1857 से 1859 तक के राष्ट्रीय विद्रोह पर लेख लिखे। इससे पहले 1853 में मार्क्स ने 'नोट्स ऑन इण्डियन हिस्ट्री' मे भी उस समय भारत की दुर्दशा का उल्लेख किया था।

1850 के दशक के आरम्भिक वर्षों से ही मार्क्स तथा एंगेल्स एशियाई देशों की परिस्थितियों में विशेष रूचि ले रहे थे विशेषतः भारत तथा चीन में उन्होंने विद्रोह की, अशान्ति की चिंगारियाँ महसूस कीं। मार्क्स के 1850 के दौर में लिखे लेखों में यह स्पष्ट आभास मिलता है कि भारत में किसी भी समय विद्रोह का विस्फोट सम्भव है।

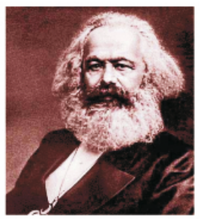
30 जून 1857 के उनके लिखे तथा 15 जुलाई 1857 के न्यूयॉर्क डेलीट्रिब्यून के मुख्य समाचार के रूप मे प्रकाशित लेख 'भारतीय सेना में विद्रोह' में उन्होंने भारत पर अंग्रेजी शासन के विभिन्न पहलुओं का विश्लेषण किया। उन्होंने ईस्ट इण्डिया कम्पनी को ब्रिटिश साम्राज्यवाद का वह हथियार बताया जिसके द्वारा अंग्रेज़ों ने भारत को अपने कब्ज़े में लेकर उसका हर प्रकार से क्रूर शोषण किया। अंग्रेज़ों ने सामन्तवादी व्यवस्था की कमियों का फायदा उठाते हुए देश में जाति, धर्म सम्प्रदाय के आधार पर फूट डाली तथा शासन किया।

मार्क्स लिखते हैं कि अंग्रेज़ों ने इस प्राचीन समृद्ध देश को हर प्रकार से शोषित किया, उसकी अर्थव्यवस्था का विनाश कर दिया, उसकी संस्कृति को नष्ट करने की कोशिश में कोई कसर नहीं छोड़ी। देश के कुटीर उद्योग, खेतीबाड़ी, हस्तशिल्प, वस्त्र उद्योग सभी कुछ उन्होंने विनाश की कगार पर पहुँचा दिया और देश की जनता गरीबी और भुखमरी की शिकार बन गई। ऐसी परिस्थिति में विद्रोह का भड़कना तो स्वाभाविक ही था।

क्रांतिकारी अंग्रेज़ों ने इसे ग़दर का नाम दिया परन्तु मार्क्स ने स्पष्टतः इसमें वह क्रान्तिकारी मन्थन देखा जो सदियों के क्रूर शोषण के प्रति विद्रोह की रणभेरी था और था आज़ादी की ओर बढ़ाया हुआ महत्वपूर्ण कदम ।

Marx and 1857

With the 150th anniversary of the 1857 uprising being celebrated in the country, it might be worth recalling what Karl Marx had to say on what he called the 'First Indian War of Independence'. It is another matter that historians in India, for good reasons, will not agree with his contention that the uprising of 1857 fired the first salvo of rebellion against the British rule in India; there had been sporadic movements against the British, such as the Vellore uprising in 1806.



Marx and Engels since the early 1850s wrote a number of incisive articles for the left-wing American newspaper, New York Daily Tribune, on the 1857-59 national revolt in India. Founded by Horace Greeley, a prominent American journalist and politician, it was the mouth piece of the left-wing of American whigs until the mid-1850s. Besides, Marx in his Notes on Indian History wrote in 1853 on the situation in India at that time.

Marx and Engels had evinced a keen interest in developments taking place in India and Asian countries, particularly China, and were sanguine that some sort of revolution would occur in India. In fact, since the early 1850s the two, and Marx separately, wrote a number of articles on the ferment taking place in India, both during the Sepoy Mutiny and prior to it.

In his article, Revolt in the Indian Army, which he wrote on June 30, 1857, and published in the New York Daily Tribune as the leading article on July 15, 1857, Marx analysed the conquest and subjugation of India and noted the variety of forms and methods of British colonial rule and exploitation. He described the East India Company as the tool of Indian conquest and stressed that the British seized Indian territories by taking advantage of the feudal strife between local princes and fanning racial, religious, tribal and caste antagonisms among the people.





Marx demonstrated that the colonial plunder of India — one of the principal sources of enrichment for the ruling oligarchy in Britain — caused the collapse of entire branches of the Indian economy and impoverishment of the people of the vast, wealthy and ancient country. The British, he noted, neglected public works and thus brought about the collapse of India's irrigated agriculture, which in turn doomed millions of Indians to starvation by breaking up local industries, notably hand-weaving and hand-spinning — these could not compete with British cotton fabrics flooding the Indian market.

Marx perceived that the events in India and China would snowball into dissolution of patriarchal and feudal relations and the gradual transition of these countries to capitalist development. This change was expected to influence the prospects of the impending European revolution. Although the English called it a mutiny and an isolated uprising, Marx described the churning of that time as an insurrection, which was just part of a general anti-colonial liberation struggle of oppressed nations unfolding in the 1850s in nearly all of Asia.

धार्मिक कारण



पूरे देश में यह भावना फैल गई थी कि धर्म ख़तरे में था। 1857 की क्रांति में धार्मिक भावनाओं की भी महत्वपूर्ण भूमिका थी। अंग्रेज़ इतिहासकारों ने यह जताने की कोशिश की कि यह देश रुढ़िवादी परम्पराओं और धर्मान्धता में जकड़ा हुआ था और इसीलिये यहां लोग प्रगतिशील अंग्रेज़ी शासन का विरोध कर रहे थे।

उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में अंग्रेज़ शासक सत्ता के नशे में इतने चूर हो गए थे कि इस प्राचीन धर्मपरायण देश की आस्था पर आघात करने लगे। देश के साधारण जन–मानस के मन में यह बात भी बैठने लगी कि अंग्रेज़ लोग उनसे ईसाई धर्म मनवाना चाहते थे। मैलेसन के अनुसार "चर्बी वाला कारतूस तो केवल एक बहाना मात्र था। यह तो वह चिंगारी थी जिसने बारुद के ढेर में आग लगा दी।" हमारे क्रान्तिकारी पूर्वजों ने धर्म को अपनी कमज़ोरी नहीं, शक्ति बनाया ताकि फिरंगी शत्रु का सामना कर सकें।

कम्पनी के सिपाहियों की एक वाजिब शिकायत यह भी थी कि कम्पनी भारतीय सिपाहियों की धार्मिक भावनाओं पर लगातर चोट करती थी। सती प्रथा तथा विधवा पुनर्विवाह के कानून भले ही प्रगतिशील रहे हों, उस दौर में भारतीयों को यह धर्म में दख़लअन्दाज़ी लगती थी।

कम्पनी सरकार ने देश की जनता में सुलगते आक्रोश को कभी समझा ही नहीं और जब ज्वालामुखी फट पड़ा तो उनकी सत्ता ही हिल गई ।



स्थानीय लोगों को मुख्यधारा से दूर रखना

भारतीय जनमानस में असन्तोष का एक अन्य प्रमुख कारण था योग्य स्थानीय लोगों को ऊँचे पदों से दूर रखना। एक भारतीय के लिये सबसे ऊँचा पद अधिक से अधिक डिप्टी कलक्टर और न्यायपालिका में सदर अमीन का हो सकता था। यही असन्तोष विद्रोह का एक कारण बना..... "शासकों की तरफ से .....ऊँचे पदों के लिये स्थानीय लोगों को अयोग्य समझना था।" ऐसा नहीं था कि भारतीयों में योग्यता की कोई कमी थी फिर भी अंग्रेज़ प्रशासनिक ढाँचे में उन्हें कोई प्रमुख स्थान नहीं देना चाहते थे।



महाजन वर्ग का संस्था के रुप में उदय

सहारनपुर के मजिस्ट्रेट रॉबर्टसन 1857 के उस उथल–पुथल भरे दौर में भारत के उत्तरी पश्चिमी क्षेत्रों में नियुक्त थे और उन्होंने लिखा है "इस देश के किसान वर्ग में हमारे शासन के प्रति घृणा का एक बहुत बड़ा कारण है हमारा महाजन वर्ग को सुविधाएं प्रदान करना। उनको ग़रीब, निर्धन किसानों को कर्ज़ देने के नाम पर शोषण करने की पूरी छूट देना। मैंने पाया कि छोटे किसानों के भीतर इन बनियों, महाजनों के प्रति घृणा भरी हुई है क्योंकि हमारी अदालतें भी इस पैसे वाले वर्ग का साथ देती हैं"।



थॉर्नहिल बताते हैं कि तालुकदार वर्ग, ज़मीदार वर्ग से लेकर किसान वर्ग तक महाजनों के शोषण की भयानक प्रक्रिया के कारण सब अन्दर ही अन्दर सुलग रहे थे।

ऐसी परिस्थिति में चर्बी वाले कारतूस ने चिन्गारी का काम कर दिया।

तत्कालिक कारण – निः सन्देह चर्बी वाले कारतूस

लॉर्ड विलियम बेन्टिन्क, लॉड एमहर्स्ट, लॉर्ड ऑकलैण्ड, लॉर्ड एलनबरो, लॉर्ड कॉर्नवालिस तथा लॉर्ड डलहौज़ी आदि सभी ने जाने अनजाने देश की जनता की धार्मिक भावनाओं को अनेकों बार चोट पहुँचाई। यह विदेशी शासन लोगों की वफादारी पर नहीं बल्कि अपने सैन्य बल पर टिका हुआ था। यही कारण था कि अंग्रेज़ शासकों ने इंग्लैण्ड के अन्य युद्धों में प्रयुक्त हथियारों की श्रेष्ठता को देखते हुए नई राइफलें बनवाई और 1856 में भारतीय सेना को दीं। इस राइफल के साथ इंग्लैण्ड से तो कारतूस आए पर बाकी कारतूस यहीं भारत में कलकत्ता, दमदम, मेरठ आदि में बनाए जाने लगे। दमदम, मेरठ, सियालकोट आदि छावनियों में कुछ सिपाहियों को चुनकर इसके प्रयोग के प्रशिक्षण के लिये भी भेजा गया। सब कुछ ठीक ही था जब अचानक एक लश्कर ने एक ब्राहमण सिपाही मंगल पान्डे को बताया कि इन कारतूसों में जानवरों की चर्बी का प्रयोग किया जा रहा है। जंगल की आग की तरह यह खबर हर जगह फैल गई और जल्द ही अंग्रेज़ अधिकारियों को इस विरोध की सूचना मिल गई।



22 जनवरी 1857 को ले. राइट ने दमदम हथियार डिपो के अधिकारी अफसर मेजर बॉनटीन को इस बात की रिर्पोट दी और मेजर बॉनटीन ने अपने उच्च अधिकारियों को यह सूचना दी कि "सभी सिपाहियों ने विनम्रता से इस नई राइफल के कारतूसों का प्रयोग करने से मना कर दिया है तथा अनुरोध किया है कि चर्बी के स्थान पर मोम तथा तेल का प्रयोग हो।" यह तो स्पष्ट है कि सिपाहियों की पहली प्रतिक्रिया धर्मभ्रष्ट होने का भय था, नाराज़गी नहीं। यहीं कम्पनी सरकार से चूक हुई कि सिपाहियों की भावना की अवमानना करते हुए वह इन्हीं कारतूसों के प्रयोग पर ज़ोर डालती रही। अब वास्तव में विस्फोट का समय आ गया था।

Another matter that touched the sepoys was the Company's alleged interference in their religious beliefs. The religious factor played a big part in the revolt of 1857. Acts such as the abolition of Sati, legalization of remarriage of Hindu widows, and prohibition of the killing of daughters, whether in themselves good or bad, were repugnant to Indian customs and traditions. They increased the suspicions of the Indians.

The Religious Factor



This is not all. Our rebel ancestors used religion to advance the revolutionary struggle. They did not let religion stupefy them. But they used religion to get the strength to fight Firinghis.

British statesmen and chroniclers exaggerated and deliberately misinterpreted the role played by this factor to prove their thesis that the 1857 uprising was reactionary, revivalist and directed against the progressive reforms that they were introducing in Indian society. By the beginning of the 19th century, British rulers had become so arrogant and power-drunk that in administrative methods they wilfully ignored and trampled under foot Indian customs and the mass of Indians concluded that all this was designed with a view to gradually convert them to Christianity. According to Malleson, "the greased cartridge was only an incident. It was merely the match that exploded the mine which was preparing long since".

Religion in danger was the common cry in the countryside and in the sepoy lines. The Company's government remained oblivious to these warnings.

Systematic Exclusion of the Natives

Not a little of the Indian discontent was caused by the systematic exclusion of the natives from official employment of a superior character. The highest office to which an Indian could aspire was that of a Deputy Collector in the executive, and of Sadr Amin in the judicial branch of the administration. One of the proximate causes of the Mutiny "some of which .... are inherent in the constitution of all military despotisms however beneficent, ...is the systematic exclusion of the natives from official employment of a superior character." Yet there was no lack of talent among the Indians.

Emergence of money-lenders as an institution

Even Robertson, Magistrate of Saharanpur, who was assigned District Duties during the revolt in the North Western provinces of India in 1857, observes: "There is nothing amongst the agriculture population that creates a greater hatred of our rule than the facilities offered to the most unprincipled class of money-lenders in the world in oppressing an ignorant and careless peasantry." "I found that no class seems to have acted with so vindictive a hate against us as the smaller class of landholders whom the bunyahs had dispossessed through the medium of our courts."

The talukdars, from whom the zamindars held, their power were deprived of most of their rights and granted a life annuity in lieu of the revenue they had hitherto been in receipt. Both the classes were hard hit. The zamindar's property was purchased by the bania and the talukdars were reduced by an act of expropriation, as Thornhill points out.

Immediate Causes

'Assuredly the greased cartridge'



Lord William Bentinck, Lord Amherst, Lord Auckland, Lord Ellenborough, Lord Cornwallis, and Lord Dalhousie had each by some act of omission or commission either alienated orthodox opinion in the country or interfered with ancient rights and privileges dearly cherished by the people. The alien government was based not on the loyalty of the people but upon its armed forces. An army must be equipped with up-to-date weapons. Until the middle of the nineteenth century the Brown Bess had been the favourite fire-arm of the sepoy. In 1852, experiments were made at Enfield under the orders of Viscount Hardinge, Master General of the Ordinance, and all the latest improvements were embodied in a new rifle. In 1853, the new rifle was tried in the Crimean war with good results and late in 1856 it was introduced in India. With the rifle came some greased cartridges from England and fresh ones were manufactured at Calcutta, Dum Dum, and Meerut for the use of troops serving in India. Selected sepoys were sent to three training centers- Dum Dum, Ambala, and Sialkot- to learn the use of the improved weapon. Nothing untoward happened until a high caste Brahman learnt from a laskar at Dum Dum that the grease used contained highly objectionable animal fat. The news spread like wild fire and caused no little consternation among the sepoys. The Dharma Sabha of Calcutta heard the story and spread the alarm and the English officers were not long in the dark about it.

On 22 January 1857, Lieutenant Wright brought the report to the notice of Major Bontein, commanding the Dum Dum Musketry Depot. The next day Major Bontein wrote to his senior officials: "....when called for any complaints that the men might wish to prefer.,.....In a manner perfectly respectful they very distinctly stated their objection to the present method of preparing cartridges for the new rifle musket, ...they begged to suggest the employment of wax and oil instead..." It is clear that the first reaction among the sepoys was one of fear of being defiled and not of anger. It was only when the British stubbornly refused to remove the greased cartridges from use that the situation erupted.

The greased cartridge was the culmination, the proverbial last straw.

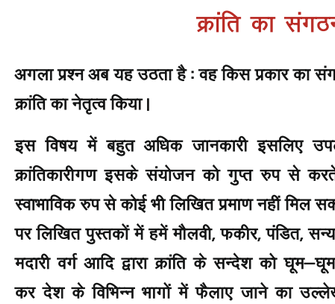
क्रांति का संगठन

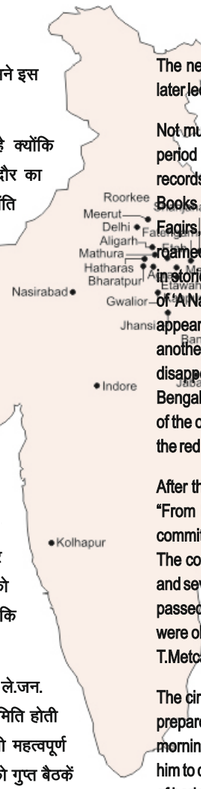
अगला प्रश्न अब यह उठता है : वह किस प्रकार का संगठन था जिसने इस क्रांति का नेतृत्व किया।

इस विषय में बहुत अधिक जानकारी इसलिए उपलब्ध नहीं है क्योंकि क्रांतिकारीगण इसके संयोजन को गुप्त रुप से करते थे। इस दौर का स्वाभाविक रुप से कोई भी लिखित प्रमाण नहीं मिल सकता। इस क्रांति पर लिखित पुस्तकों में हमें मौलवी, फकीर, पंडित, सन्यासी, मदारी वर्ग आदि द्वारा क्रांति के सन्देश को घूम–घूम कर देश के विभिन्न भागों में फैलाए जाने का उल्लेख अवश्य मिलता है। गांव–गांव में चपाती और लाल कमल के माध्यम से क्रांति सन्देश के फैलाए जाने का भी ज़िक्र हमें प्राप्त होता है। इस क्रांति पर पुस्तक लिखने वाले एक लेखक का कहना है – "एक व्यक्ति लाल कमल लेकर आया और रेजिमेन्ट के चीफ को दिया जिसने उस कमल को आगे बढ़ाया और रेजिमेन्ट के सभी सिपाहियों के हाथों से होता हुआ अगली छावनी तक पहुंचाया गया। ऐसा लगता है कि बंगाल की शायद कोई सैन्य छावनी ऐसी नहीं थी जिसमें लाल कमल का क्रांति सन्देश न पहुँचा हो।" सर जॉर्ज ट्रेवेल्यान लिखते हैं कि "लाल कमल ने सभी सिपाहियों को एकता के सूत्र में बांध दिया था और सब इसकी सौगन्ध उठाते थे कि क्रांति आरम्भ होते ही सब एक दूसरे का साथ देंगे।"

इसके बाद हर रेजिमेन्ट अपनी एक गुप्त संगठन शाखा बनाती थी। ले.जन. टी.एफ. विल्सन लिखते है "हर रेजिमेन्ट में तीन सदस्यीय गुप्त समिति होती थी जो क्रांति से जुड़े हर पहलू को देखती थी ....यह समिति सभी महत्वपूर्ण योजनाएं बनाती थी, पत्राचार करती थी..... । सिपाही रात को गुप्त बैठकें करते थे और सभी महत्वपूर्ण निर्णयों का अनुशासन से पालन किया जाता था।" अनेक अंग्रेज़ इतिहासकारों जैसे सर जॉन विलियम के, तथा सर टी. मेटकाफ़ आदि ने क्रांति की तैयारियों पर विस्तार से लिखा है।

चपातियों का वितरण, सम्भवतः क्रांति की पूर्वसूचना के रुप में प्रयुक्त होता था। नवाब मोईनुद्दीन लिखते हैं कि "किस प्रकार फरवरी की एक भोर में सराय फरुख़्ख़ान का चौकीदार उनके पास जौ और आटे की बनी एक चपाती लाया और उनसे कहा कि वे इसी तरह की पांच रोटियां बनवा कर बटवाएं। इन चपातियों का आकार एक पुरुष की हथेली जितना बड़ा होता था और वज़न दो तोले का।" क्रॉफर्ड विल्सन ने "भौखिक जानकारी तथा छानबीन के अनुसार तथ्यों को इकट्ठा करके" यह पाया कि रविवार 31 मई 1857 वह तारीख थी जिस दिन बंगाल में सेना ने विद्रोह आरम्भ करना तय किया। यह एक अद्भुत तथ्य ही है कि विद्रोहियों ने गंगा–यमुना के बीच में विस्तृत देश के समूचे क्षेत्र को विद्रोह के लिये तैयार करके इस बात को प्रमाणित किया कि उनकी संगठन क्षमता तथा नेतृत्व कितना मज़बूत था।





The Organization

The next question now arises is: What kind of organization was it that organized and later led the rebellion?

Not much is known about the organization of the rebels especially in the pre-rebellion period for very obvious reasons. The rebels worked illegally, and therefore kept no records about the nature, the functions and the structure of their secret organization. Books on the revolt are replete, no doubt, with the accounts of itinerant Moulavis and Fagirs, Pandits and sanyasis, the volunteer begging parties and the Madaris who roamed from place to place and spread the message of revolt. Such books abound also in stories about the red lotuses and chapatis passing from village to village. The author of 'A Narrative of the Indian Revolt' has described the passing of the lotus thus: "A man appeared with a lotus flower and handed it to the chief of the regiment. He handed it on to another-every man took it and passed it on and when it came to the last, he suddenly disappeared to the next station. There was not, it appears, a detachment, not a station in Bengal through which the lotus flower was not circulated." Sir George Otto Trevelyan is of the opinion that the red lotus united all the sepoys, Each one was made to swear over the red lotus that he would act with the others when the call came.

After this ceremony every regiment created its own secret branch of the organization. "From the available evidence...," writes Lt. Gen. T.F. Wilson, "every regiment had a committee of three members and this used to do everything connected with this Mutiny... The committee had to decide on all important schemes, to do all the correspondence, and several other things." The sepoys used to meet secretly at night. All resolutions were passed in the general meetings, and all the decisions that were taken in the inner circles were obeyed strictly. Several English historians including Sir John William Kaye and Sir T.Metcalfe have left behind a detailed account of the preparations of the uprising.

The circulation of chapatis on the eve of the outbreak was, in all probability, a signal to prepare the people for the coming upheaval. Nawab Moinuddin describes how early one morning in February, the watchman of Serai Farukh Khan brought a chapati and asked him to cook five similar chapatis for distribution in the same way. Each chapati was made of barley and wheat flour. It was about the size of a man's palm, and weighed two tolas. Crawford Wilson after "carefully collating oral information with facts as they occurred' felt convinced that Sunday, 31 May 1857, had been the day fixed for rebellion to commence throughout the Bengal army.

The fact that the rebels could organize an uprising, which covered the country between the Ganges and the Jamuna speaks volumes of conspiratorial arrangement and also of the organizational ability of the leaders of the revolt. That the building of the organization had not progressed sufficiently far is however, evident from the absence of any unified plan of campaign and of an over-all command. The rebels had indeed, built up an "organization' in the pre-rebellion days, though it was still in an embryonic stage at the time of the outbreak of the rebellion.

राजनैतिक संगठन

बहादुरशाह ज़फर को 11 मई 1857 को शहँशाह–ए–हिन्द घोषित किया गया। वास्तविकता तो यह थी कि जुलाई के प्रथम सप्ताह तक जो विद्रोह का पहला दौर था, वे केवल नाम के ही शासक माने जा रहे थे और दिल्ली की सत्ता विद्रोहियों के हाथ में थी। उन्होंने एक परवाना जारी किया जिसके अनुसार नए राज्य का प्रारुप तैयार किया गया। जनरल बख़्त ख़ान को इसकी देखरेख का भार दिया गया। बहादुरशाह देश के बादशाह तो थे मगर असली अधिकार प्रशासनिक कोर्ट के पास थे जिसे राज्य की सारी देखरेख तथा सुरक्षा करनी थी। इसके लिए बादशाह का आश्वासन भी उनके पास था कि इस काम में कोई शाही दख़लअन्दाज़ी नहीं की जाएगी।



8 अगस्त 1857 को जारी किया गया एक परवाना जो ऐतिहासिक दस्तावेज़ों में मिला है, हमें बताता है कि प्रशासनिक कोर्ट का कार्य किस प्रकार से संचालित किया जाता था।

प्रशासनिक कोर्ट के दस सदस्य थे – 6 सेना से तथा 4 अन्य नागरिक क्षेत्रों से। सेना के सभी अंगों से बराबर प्रतिनिधित्व था। इन सदस्यों का उनकी योग्यता के आधार पर चयन किया गया था।

कोर्ट के एक सदस्य को सदर–ए–जलसा (प्रमुख) तथा एक सदस्य को उप–प्रमुख चुना जाता था तथा प्रत्येक विभाग में कुशल कार्य संचालन के लिये समिति सचिव होते थे।



बादशाह को सभी बैठकों में शामिल होने का अधिकार था तथा कोर्ट का कोई भी निर्णय शाहीदस्तख़त के बिना लागू नहीं किया जा सकता था। बैठकों की गुप्तता बनाए रखने में भी बहुत सावधानी बरती जाती थी और किसी भी प्रकार की सूचना का बाहर पहुंचना मना था। कोई सदस्य यदि ऐसा करता था तो उसे दण्डित किया जाता था।

प्रशासनिक कोर्ट न्यायपालिका के साथ आर्थिक मामलों में भी सर्वोपरि थी जिसे लगान, कर आदि एकत्रित करने का भी अधिकार था तथा राज्य प्रशासन के लिये वे महाजनों से पैसा भी उधार इकट्ठा कर सकते थे।

Political Organization

Bahadur Shah was declared Shahenshah-e-Hind on 11 May 1857. But in truth he was reduced to a mere nonentity in the first week of July—that is, towards the close of the first phase of the revolt. The rebels of Delhi issued a Parwanah, after the arrival of General Bakht Khan, outlining the structure of the new state. Bahadur Shah was again formally proclaimed the Emperor of India, but the real executive power was vested in the Court of Administration. The Court was to administer the state, maintain peace and order, collect land revenue from the sub-divisions and raise loans from the Mahajans, defend the realm and prosecute wars. The emperor had promised the court that "in reference to you no representation of any party whatever will be heeded; and in all such orders as may emanate from your Court, none of the servants of the State, nor the Princes royal, will in any way interfere."

The Court of Administration was to consist of ten members; six from the army and four from the civilian departments. The representation of the army was equally distributed among its three branches—infantry, cavalry and artillery. Members were to be elected by a majority vote from amongst "intelligent, wise, capable and experienced men who had also to their credit a record of past faithful service." The last condition is not wholly intelligible in view of the fact that only a few of the rebels had any claims on past services. Perhaps, and one cannot be certain about this, it was for this reason precisely that this condition was not made absolute. For, it was specifically provided that this condition could be waived in the case of very capable and intelligent persons. The civilian members of the Court were to be selected in the same manner by their respective departments.

One out of the ten members of the Court was to be elected President (Sadr-e-Jalsa) and another Vice President of the Court. Each member of the Court was in charge of the department of the state from which he had been elected. He was assisted by a Committee, consisting of four members of the Court. Each Committee could have as many secretaries attached to it as were required. Proposals passed by a majority vote in a Committee were forwarded to the Court approval through the member-in-charge.

Emperor Bahadur Shah had the right to attend the session of the Court. No decision of the Court was enforceable in the State without the signature of the Emperor.

To maintain secrecy, the *Parwanah* ordained that the meetings of the Court would be in *camera*. Any disclosure, implicit or explicit, of its proceedings by any of the members was punishable by his removal from the Court. The same punishment was prescribed for any sort of deception towards the state, or for showing partiality towards a person or a body of persons. A *Parwanah*, dated 8 August 1857, the only one of its kind available, gives us a clue to the nature of business transacted by the Court.

Not only was the nature and extent of authority exercised by the Court wide and comprehensive; the Court was also not prepared to tolerate any encroachment upon its authority by extraneous influences. In military matters, for instance, neither the Emperor nor the royal princes had any effective voice. In a letter dated June 26, 1857, the Emperor complained about this to his son, Mirza Mughal.

The Court of Administration was also the highest judicial authority. In the sphere of finance, too, the Court was supreme. The revenue officials were appointed and could be removed by it alone. It also enjoyed authority to collect land revenue and other taxes and levies. None except the Court could raise loans on behalf of the state.

विप्लव के पुरोधा : मंगल पांडे

आठ अप्रैल 1857 को मंगल पांडे को फांसी दी गई थी। हालांकि पहले यह तारीख 18 अप्रैल मुकर्रर की गई थी, लेकिन अंग्रेज़ों को लगता था कि मंगल की फांसी में जितनी देर होगी, देसी सिपाहियों में उतनी ही उत्तेजना फैलेगी। इसलिए उन्होंने 10 दिन पहले ही मंगल को फांसी दे दी। 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम का यह पहला नायक भले ही बड़ी ही गुमनामी के साथ फांसी पर चढ़ा दिया गया, लेकिन उसका बलिदान व्यर्थ नहीं गया। उसे फांसी पर चढ़ाने के मात्र 32 दिन बाद ही एक ऐसी क्रांति की शुरुआत हुई, जिसने ईस्ट इंडिया कंपनी की जड़ें हिला दीं। उपनिवेशवादी शासक आज भी उस बग़ावत की टीस को भुला नहीं पाए हैं। वे बार–बार उस बग़ावत को सिर्फ पुराने सामंतों, धर्मांध–ब्राह्मणों और डूबते मुग़ल दरबार का गठजोड़ करार देते हैं। आज तक उन हालात को जानने की कोशिश नहीं की गई, जिनके कारण इस विप्लव की नींव पड़ी।





29 मार्च, 1857 को रविवार था। कोलकाता के पास बैरकपुर छावनी के सार्जेंट मेज़र ह्युसन को पता चला कि 34वीं बंगाल नेटिव इंफैंट्री से मंगल पांडे नाम का एक सिपाही अपनी बंदूक लेकर लाइन से बाहर निकल आया है। ह्युसन ने इसकी सूचना अपने एड्जुटेंट लेफ्टीनेंट एच बाफ को दी। दोनों बाहर आकर देखने आए तो मंगल ने गोली चलाकर बाफ के घोड़े को मार गिराया। उसके बाद मंगल ने तलवार लेकर बाफ और उनके साथी ह्युसन पर वार किया। वह इन पर भारी पड़ रहा था। जनरल जान हियर्से यह दृश्य देखकर भौंचक्के रह गए और उन्होंने ज़मादार ईश्वरी प्रसाद को हुक्म दिया कि मंगल को गिरफ्तार किया जाए। मंगल को गिरफ्तार करने के बाद उनका कोर्ट मार्शल हुआ और अंग्रेज़ों ने उन्हें 6 अप्रैल को फैसला सुना दिया कि मंगल को 18 अप्रैल को फांसी पर चढ़ा दिया जाए। बाद में यह तारीख आठ अप्रैल कर दी गई। अंग्रेज़ों को लगा था कि अगर मंगल को फांसी देने में देर की, तो कहीं और सिपाही भी मंगल की राह पर न चल पड़ें। लेकिन अंग्रेज़ों की सारी चेष्टा बेकार गई। मंगल के साथ फूटी विद्रोह की यह चिंगारी आख़िरकार ज्वाला बन ही गई। 10 मई 1857 को मेरठ में बगावत की आग ने समूचे हिन्दुस्तान को अपनी चपेट में ले लिया और कंपनी सरकार को पहली बार लगा कि हिन्दुस्तान में राज करना आसान नहीं है। इसीलिए 1865 में हिन्दुस्तान से ईस्ट इंडिया कंपनी की सरकार उठा ली गई और हिन्दुस्तान ब्रिटेन की महारानी क्वीन विक्टोरिया के साम्राज्य का हिस्सा बन गया। आज इस महाविद्रोह की डेढ़ सौवीं सालगिरह पर इस जनक्रांति और इसके नायकों के जीवन के पुनरावलोकन की ज़रुरत है।

Mangal Pandey : The First Martyr

In 1857, the Bengal army had 10 regiments of Indian cavalry and 74 of infantry and they all at some point or the other mutinied. On March 29 at Barrackpore Latbagan, Mangal Pandey of the 34th Bengal Native Infantry suddenly burst out and attacked the adjutant, Lt Baugh with a sword. But failing in the attempt he fired at him, which, unfortunately, did not hit him but his horse.

Prior to that, on February 26, the 19th BNI regiment, comprising both Hindus and Muslims, refused to use the cartridges in the newly introduced Pattern 1853 Enfield rifles which had been greased with lard (pork fat) and tallow (beef fat): both taboos to the Hindus and the Muslims, respectively. The Enfield rifle was the substitute to the old smoothbore Brown Bess rifle, which was less accurate and less powerful.

Gen. John Hearsey saw a frenzied Mangal Pandey attacking Lt Baugh and he ordered forthwith Jamadar Iswari Prasad to arrest Mangal Pandey but he refused. The whole regiment, excepting a soldier called Shaikh Paltu, also drew itself back. But still they did not dare to go for direct action against the company's troops as desired by Mangal Pandey.



Pandey then in an attempt to end his life, placed a musket on his chest and pulled the trigger with his toe. But his attempt failed. On April 6 he was court-martialled and on April 8 he was hanged to death.



Jamadar Ishwari Prasad, who had refused to arrest Mangal Pandey, was also hanged to death subsequently on April 22 and the whole regiment was disbanded. The sepoys were unarmed and their uniforms stripped off.

Mangal Pandey died but his sacrifice, courage and valour had been an inspiration and encouragement to the sepoys under the bondage. And soon, waves of revolts and resistance by the sepoys against the British army spread to other places, which led to the ending of the company rule in India.

शहीद नाहर सिंह

बल्लभगढ़ राज्य के राजा नाहर सिंह 1857 के विद्रोह के एक तेजस्वी युवा सेनानी थे जिन्होंने देश की आन पर अपने प्राण निछावर कर दिये। क्रांति के दण्डस्वरूप 34 वर्षीय इस युवा को 9 जनवरी 1858 को फांसी की सजा दे दी गई।



नाहर सिंह बहुत कच्ची उम्र में शासक बने थे। उनके साहस और युद्ध कौशलके कारण अन्तिम मुगल बादशाह ज़फर ने उन्हें दिल्ली के अन्तरिम प्रशासक के पद पर नियुक्त किया।

राजा नाहर सिंह अंग्रेज़ों के कट्टर शत्रु बन गए जब उन्होंने मेवात और आसपास के क्षेत्रों में अंग्रेज़ों के आकमण का विरोध किया। राजा नाहर सिंह के साथ उनके क्षेत्र के हिन्दू–मुसलमान सभी थे जिन्होंने अंग्रेजों द्वारा किये आकमण में राजा का साथ दिया। यद्यपि धोखे से नाहर सिंह को पकड़ लिया गया फिर भी उन्होंने अंग्रेजों से माफी मांगने से इन्कार कर दिया।



फरीदकोट राज्य ने, जहां उनकी बेटी ब्याही गई थी, उनकी सहायता करनी चाही, परन्तु स्वाभिमानी राजा ने सहर्ष दण्ड स्वीकार किया और चान्दनी चौक क्षेत्र जेल में फांसी दी गई।

झज्जर तथा फर्रूखनगर के नवाबों को भी अंग्रेज़ों के खिलाफ विद्रोह के लिए फांसी दी गई। अंग्रेजों ने नाहर सिंह के राज्य में बहुत तोड़ फोड़ की परन्तु उनके साहस को कोई नहीं भुला सकता। कृतज्ञ राष्ट्र अपने इन शहीदों को शत्–शत् प्रणाम करता है।

Martyr Nahar Singh

Raja Nahar Singh of the erstwhile Ballabgarh state was among a few young fiery rulers who laid his life fighting the mighty British power in the First War of Independence. The 34-years-old ruler was hanged to death on January 9, 1858.

Nahar Singh became the king of Ballabgarh at a tender age. His valour and fighting abilities led him to be appointed as Internal Administrator of Delhi by the last Moghul Emperor Bahadur Shah Zafar, when he was sent to exile in Burma.

Nahar Singh became an enemy for the Britishers after he challenged their invasion of Mewat and surrounding areas. Nahar Singh who had support of both Hindus and Muslims of the area pushed back the enemy valiantly when his state was attacked. While he was captured in a fraudulent manner, he declined to tender apology demanded by the enemy.

The kingdom of Faridkot, where his only daughter was married away, had also tried to intervene in the matter, but brave Nahar Singh told them that he would not bow before the foreign oppressors and thus went to gallows at Chandni Chowk in Delhi.

Nawab of Jhajjar and ruler of Farrukhnagar near Gurgaon were also hanged for revolting against the British rule. The Britishers, who had nearly captured the heart of the country at that time , razed down the buildings and palace of Nahar Singh to desist the people from revolting.

राव तुलाराम प्रचंड क्रांतिकारी

राव तुलाराम हरियाणा के रेवाड़ी के एक छोटे से ठिकाने के सरदार थे। उनके काम से प्रसन्न होकर बादशाह बहादुरशाह ने उन्हें रेवाड़ी के 477 गांवों की जागीर दी। राव ने जागीर को अच्छी तरह प्रशासित किया। दिल्ली में लड़ रही विद्रोही सेना की धन, अन्न और अन्य वस्तुओं से मदद की। एक वर्ष तक अंग्रेज़ों से लोहा लिया। तौंत्या टोपे के साथ मिलकर एक वर्ष लड़े। फिर ईरान, अफगानिस्तान गए, और रूस के ज़ार से संबंध बनाया। इन शक्तियों की मदद से वे हिन्दुस्तान को स्वतंत्र करवाने की चेष्टा कर रहे थे। लेकिन इसी समय 1863 में अचानक काबुल में उनका देहांत हो गया। कृतज्ञ राष्ट्र उनकी स्मृति को नमन करता है।

The great Revolutionary Rao Tularam



He was the head of state of Rewari in Haryana. Pleased with his efficiency, the Mughal Emperor had presented him with a Jagir of 477 villages. Rao Tularam was a very good administrator. He helped the Delhi rebel army with money, food and other requirements. He himself fought with the British for one year. He also joined forces with Tatya Tope to fight the British. He went to Iran, Afghanistan, and also met the Czar of Russia to garner support for India's freedom from British rule. Unfortunately he died in 1863 in Kabul but his legacy remains and the country remembers its brave son gratefully.

तौंत्या टोपे



1857 के क्रान्तिकारी नेताओं में तौंत्या टोपे निःसन्देह सर्वाधिक योग्य, साहसी नेता थे, साथ ही गुरिल्ला युद्ध तकनीक में तो उनका कोई मुकाबला ही नहीं था। दुर्भाग्यवश देश के किसी भी इतिहासकार ने इस असाधारण व्यक्तित्व के सैन्य जीवन का विशद वर्णन नहीं किया है, न ही उनके गुरिल्ला युद्ध के पहलुओं को उभारा है। ब्रिटिश इतिहासकारों ने तौंत्या के अद्भुत सैन्य पराक्रम का विस्तृत विवरण हमें दिया है। परन्तु देश के ही इतिहासकारों से यह चूक हुई है कि 1857 की क्रान्ति के इस महानायक के सैन्य पराक्रम की, राजनैतिक अभियान की कोई विस्तृत जानकारी उन्होंने इतिहास के पन्नों में दर्ज नहीं की। मई 1857 से अप्रैल 1859 तक की अवधि में इस ऐतिहासक संग्राम में तौंत्या की भूमिका अविस्मरणीय है। समकालीन नेतृत्व की चमक–दमक में जैसे रानी लक्ष्मीबाई की शौर्यगाथा, नाना साहब, मंगल पाण्डे, बाबू कुंवर सिंह आदि के महान् कारनामों में मानो तौंत्या के असीम साहस का वर्णन अधूरा सा रह गया। अन्य वीरों के समान, देश का जनमानस तौंत्या टोपे के पराक्रम की गाथा से अपरिचित सा रह गया है।

युद्ध स्थल में पाई हर विजय का श्रेय तौंत्या ने स्वयं न लेकर अपने स्वामी नाना साहब तथा अन्य प्रसिद्ध क्रान्तिकारियों के नाम कर दिया। स्वभावतः शान्त तथा विनम्र होने के नाते उनकी असाधारण वीरता की जानकारी कभी देश की जनता को मिली ही नहीं। ग्वालियर के क़िले पर विजय यद्यपि तौंत्या की असाधारण वीरता की ही उपलब्धि थी फिर भी इसका श्रेय झांसी की रानी को ही अधिक मिला, तौंत्या को नहीं।



राजा मानसिंह की गद्दारी के कारण अन्ततः ब्रिटिश सैनिकों ने तौंत्या को गिरफ्तार कर ही लिया। ब्रिटिश सरकार ने उनका कोर्ट मार्शल किया तथा 18 अप्रैल 1859 को सिपरी में उन्हें फांसी की सज़ा दी गई। पर क्या तौंत्या जैसे पराक्रमी योद्धा कभी मरते है ? वे तो अमर हो जाते है क्रान्ति के इतिहास के पन्नों में और युगों तक पीढ़ियों को प्रेरित करते हैं।

Tatya Tope

During the days of the revolt of 1857, Tatya Tope was undoubtedly the most capable military leader, most courageous hero and a remarkably tactful guerilla fighter. Unfortunately no ardent scholar of our country has yet thoroughly chronicled the details of his military career, particularly the most adventurous activities of his guerilla warfare. Many reputed British historians, particularly veteran war experts reckoned Tatya Tope as one of the most wonderful guerilla fighters of the world. No serious and systematic effort has yet been made to highlight clearly and specifically the vital revolt Tatya Tope had played as a planner of military operation as well a political campaigner from May 1857 to April 1859. Moreover, the spirit of Tatya Tope as a great national hero is really not widely known to the common people of our country. Though the heroic Rani Luxmi Bai of Jhansi was an equally brilliant product of the days of the revolt of 1857, the remarkable glamour of the Rani as an outstanding military strategist of unbelievable capabilities and finally the bold spirit of the Rani to wrest Mother India from the yoke of the British rule have certainly overshadowed the importance of Tatya Tope to a great extent. The common people of India have been so much vocal, so deeply full throated in admiration for the courageous Rani,–the Rani of Jhansi also deemed as an incarnate of the Goddess Chandi of the Hindu mythology killing Mahishasura—that much of attention has not been focussed on another equally brilliant contemporary of the Rani, Tatya Tope.

There was another reason too for Tatya not coming into the limelight. Whichever military operation Tatya had launched, whatever he gained in the battle fields, Tatya's modesty, Tatya's loyalty to his master, Nana Saheb stood in the way of getting himself pushed into the forefront. Tatya's capture of the fort of Gwalior from the Maharajah of Sindhia was indeed a master stroke of his military policy and tact, but even for that glorious achievement full credit was not attributed to Tatya Tope. The Rani of Jhansi, Rao Saheb and others got the credit more for the capture of the fort of Gwalior, while Tatya Tope remained very much behind the scene.

The great leader was finally captured by the British army because of the betrayal by Raja Man Singh. He was, then court-martialled and hanged by the British Government on April 18, 1859 at Sipree. But was the real Tatya Tope hanged? Tatya could not be hanged. How could the British rulers withhold a born revolutionary yet unparalleled in the history of rebellion of our country.

बिठूर के नाना साहब

लखनऊ निवासियों के उबलते क्रोध को ईस्ट इण्डिया कम्पनी से लड़ने का सशक्त साधन बनाने के लिये बिठूर के क्रान्तिकारी नेता नाना साहब अपने सचिव–सलाहकार अज़ीमुल्ला खान के साथ 18 फरवरी 1857 को लखनऊ पहुँचे। वहाँ उन्होंने वाजिद अलीशाह की बेगम हज़रत महल से सलाह मशवरा किया। मुग़ल बादशाह बहादुरशाह ज़फर के पोते मिर्ज़ा बहादुर बख़्त ने भी लखनऊ आकर नाना साहब से भेंट की।









नाना साहब 1857 के स्वाधीनता संग्राम के प्रमुख क्रांतिकारियों में से थे जिन्होंने विद्रोह में सुलगते देश को प्रेरणादायी नेतृत्व दिया।

Nana Saheb of Bithur

To channelise the simmering anger of the people of Lucknow and organise them into a force to fight against the East India Company Nana Saheb of Bithur accompanied by his secretary and adviser Azim-ullah Khan reached Lucknow on 18 April 1857 to consult Begum Hazrat Mahal, one of the queens of the deposed king Wajid Ali Shah. Mirza Bahadur Bakht, the grandson of the Mughal emperor Bahadur Shah Zafar also arrived at Lucknow and contacted Nana Saheb.



Nana Saheb was one of the key characters of the 1857 uprising and provided great leadership to the country, up in revolt against foreign rule.





वीर कुँवर सिंह

1857 ई. के 'मुक्ति–संग्राम' के महान् योद्धा वीर कुँवर सिंह का अद्वितीय व्यक्तित्व व कृतित्व एक देदीप्यमान मशाल की तरह है। सवाल उठता है कि वे इस मुक्ति–संग्राम में क्यों कूद पड़े ? क्या इसलिए कि उनकी जागीर छीन ली गई थी? क्या उनमें देशभक्ति या राष्ट्रीयता की भावना काम कर रही थी ?

कुँवर सिंह का जन्म शाहाबाद जिले के जगदीशपुर नामक ग्राम में हुआ था। उनके पिता का नाम साहेबजादा और माता का नाम पंचरत्न कुंवरी था। उनके पूर्वज प्रख्यात परमार क्षत्रिय वंश के थे। 1827 ई. में साहेबजादा के निधनोपरांत कुँवर सिंह सत्तासीन हुए। उनकी रियासत की वार्षिक आय तीन लाख रूपये की थी। वे ईस्ट इंडिया कंपनी को एक लाख अट्ठावन हजार रूपये का वार्षिक कर देते थे। पटना के तत्कालीन आयुक्त टेलर ने उन्हें 'प्रतिष्ठित', 'शूर' एवं 'वफादार' कहा है। किसी कारणवश कंपनी को दिए जाने वाले कर का बोझ बढ़ता चला गया। यह इतना बढ़ गया कि 1857–58 ई. में बंगाल सरकार ने उनकी रियासत की देखभाल का दायित्व शाहाबाद के कलक्टर के माध्यम से अपने ऊपर ले लिया। टेलर ने कुँवर सिंह को फंसाने के उद्देश्य से बुलावा भेजा, परंतु अस्वस्थता और वृद्धावस्था का बहाना कर वे टेलर से नहीं मिले। क्योंकि टेलर को मालूम था कि कुँवर सिंह अंग्रेज़ों के खिलाफ असंतोष और अविश्वास का प्रचार कर रहे हैं।

जगदीशपुर के जंगलों में रहने वाले एक सिद्ध महात्मा 'बसुरिया बाबा' ने कुँवर सिंह में देशभक्ति की भावना उत्पन्न की थी। बाबा भारत माता को स्वतंत्र देखना चाहते थे। कुँवर सिंह और उनके अनुज अमर सिंह 'बाबा' के पास बहुधा जाया करते थे तथा उनके साथ घंटों वार्तालाप करते थे। उन्हें फिरंगियों को निकाल–बाहर करने का गुरुमंत्र प्राप्त हो गया।

1845–46 ई. में ही सोनपुर मेले में कुँवर सिंह समान धर्म लोगों से आपस में मंत्रणा करके मुक्ति–संग्राम की एक योजना बना चुके थे। इसमें उन्हें समकालीन शलाका पुरुष नाना साहेब का वरदहस्त प्राप्त था। तीर्थ के बहाने वे पश्चिम भारत का भी भ्रमण कर आए थे? उन्हें फिरंगियों को आदेश स्वीकार नहीं था उन्हें इस देश से निकाल–बाहर करने का मन बना लिया था। प्राप्त अभिलेखों के अनुसार वे गिरफ्तार कर लिए जाते, किंतु बंगाल सरकार ने इसकी अनुमति नहीं दी क्योंकि उन्हें गिरफ्तार करने से विद्रोह फैलने की संभावना थी।

1857 ई. में यह चिर प्रतीक्षित विद्रोहाग्नि फूट पड़ी। बिहार में रोहिणी (देवघर) में पहले–पहल 12 जून, 1857 ई. को विद्रोह करने वाले तीन देशी सैनिकों को फांसी की सज़ा दी गई। 3 जुलाई को पटना में विद्रोह हुआ। 4 जुलाई को पीर अली खां सहित सोलह बागियों को फांसी दी गई। फांसी चढ़ने वालों के चेहरों पर शहादत की मौन आभा थी। गिरफ्तारी के समय पीर अली ने कहा था, "आप मुझ जैसे सैकड़ों और लोगों को भी फांसी दे दें पर उससे आपका मतलब पूरा न होगा। एक–एक शहीद के बदले सौ–सौ शहीद उठ खड़े होंगे।"

कुँवर सिंह के प्रतिनिधि हरिकिशन सिंह और रणदल सिंह दानापुर छावनी गए। देशी पलटन के जवानों से खुफिया बातें की। सुगबुगाहट हुई। अंग्रेज़ी अधिकारियों का विश्वास देशी सिपाहियों से उठ गया। उन्हें निःशस्त्र करने का निर्णय हुआ। 25 जुलाई, 1857 ई. में प्रातःकाल छावनी मैदान में ज्योंही शस्त्र जमा करने का आदेश हुआ त्योंही उन्होंने खुला विद्रोह कर दिया। मुक्ति वाहिनी जगदीशपुर की ओर चल पड़ी। उसने 26 जुलाई को आरा पहुंचकर ख़जाने पर कब्ज़ा कर लिया तथा जेल खोलकर बंदियों को मुक्त किया। बहादुर बाग़ियों की संख्या लगभग तीन–चार हज़ार थी, जो शीघ्र ही बढ़कर दस हज़ार हो गई। मुक्तिवाहिनी ने जगदीशपुर पहुंचकर कुँवर सिंह को सलामी दी और उन्हें अपना नेता कबूल कर लिया। बाग़ियों को दबाने के लिए दानापुर में डनबर के नेतृत्व में जो फौज चली उससे गांगी नाला पर मुक्तिवाहिनी सेना से मुठभेड़ हुई। डनबर मारा गया और उसकी लगभग पूरी फौज नष्ट हो गई। कुँवर सिंह शासक घोषित हुए। इसी बीच अंग्रेज़ सेनापति आयर ने उन्हें पराजित किया और जगदीशपुर पर अधिकार कर लिया।

वीर कुँवर सिंह पराजित हुए, लेकिन पस्त नहीं हुए। अब तक आरा की घटनाओं की खबर दूर–दराज तक पहुंच चुकी थी। प्रायः संपूर्ण बिहार मुक्ति–संघर्ष की चपेट मे आ गया। सभी की निगाहें कुँवर सिंह की ओर लगी हुई थीं तथा वे सभी की आशाओं–आकांक्षाओं के केंद्र बिंदु बन चुके थे। जगदीशपुर छोड़ने के बाद वे नोखा पहुंचे। संपूर्ण सासाराम उनके साथ हो गया। इसी बीच रामगढ़ फौजी छावनी से सेना की दो विद्रोही टुकड़ियां भी उनके साथ मिल गईं। अब वे उत्तर प्रदेश की ओर चल पड़े। 26 अगस्त, 1857 ई. को वे मिर्जापुर के निकट विजयगढ़ पहुंच गए। उनके वहां आगमन से अंग्रेज़ों में दशहत पैदा हो गई। रामगढ़, राबर्ट्सगंज, रींवा, बांदा इत्यादि स्थानों पर मुक्ति–संग्राम का झंडा फहराते हुए कुँवर सिंह कालपी पहुंचे जहां ग्वालियर के सैन्य दल ने सम्मिलित रूप से अंग्रेज़ी सेना का कानपुर में मुकाबला किया। किंतु, उन्हें सफलता नहीं मिली। कुँवर सिंह लखनऊ पहुंच गए। वहां अवध के नवाब ने दस हज़ार रुपये दिए और आज़मगढ़ रियासत का फरमान भी दिया। 22 मार्च, 1857 ई. को कुँवर सिंह ने अतरौलिया में अंग्रेज़ी फौज को पराजित किया। आज़मगढ़ पर भी उनका अधिकार हो गया। अब वे बनारस की ओर बढ़े और लॉर्ड मार्क को पराजित किया। इसी बीच अंग्रेज़ सेनाध्यक्ष कैम्पबेल के आदेशानुसार सेनापति लगर्ड के नेतृत्व में लखनऊ से एक बड़ी सेना मार्क की सहायता के लिए आजमगढ़ की ओर बढ़ी। इसका पता लगते ही 13 अप्रैल को आज़मगढ़ छोड़ने का निर्णय कुँवर सिंह की महान् कूटनीति एवं चातुर्य का परिचायक है। उन्होंने दो हज़ार सैनिकों को निशान सिंह के अधीन छोड़कर स्वयं गाज़ीपुर की ओर प्रस्थान किया। लगर्ड की सेना तानू नदी के पुल को पारकर आजमगढ़ आने वाली थी। कुँवर सिंह ने अपनी सेना का एक दल इस पुल पर लगर्ड की फौज का मुकाबला करने के लिए भेज दिया। वे शेष सेना सहित गाज़ीपुर की ओर बढ़े। लगर्ड ने इस सैन्य दल का बारह मील तक पीछा किया। 17 अप्रैल, 1858 ई. को नघई नामक ग्राम में डगलस और कुँवर सिंह की सेनाओं का मुकाबला हुआ। पराजित डगलस को और पीछे जाना पड़ा। अब कुँवर सिंह नागरा और सिकंदरपुर गए जहां राजा रेखा सिंह अपनी सेना लेकर उनकी मदद को आए। यहां से होते हुए कुंवर सिंह ने घाघरा पार की तथा गाज़ीपुर के मनोहर गांव में पहुंचकर वहां थोड़ी देर के लिए रात्रि में विश्राम किया। डगलस ने सवेरे कुँवर सिंह की सेना पर अचानक धावा बोल दिया। कुँवर सिंह को कुछ हाथियों, बारूद तथा सरद का सामान छोड़कर पीछे हट जाना पड़ा। उनकी सेना बलिया से दस मील नीचे शिवपुर घाट पार कर रही थी, ब्रिटिश फौज वहां भी पहुंच गई। इस समय तक कुँवर सिंह किसी किश्ती में थे। जब उनकी किश्ती बीच धार में थी, उसी समय किसी अंग्रेज़ सैनिक की गोली उनके दाहिने हाथ में लगी। संपूर्ण शरीर में विष न फैल जाए, अतएव कुँवर सिंह ने अपने दाहिने हाथ को तलवार से काट कर गंगा मईया को भेंट कर दिया। घाव पर कपड़ा लपेट कर उन्होंने गंगा पार की। 22 अप्रैल को वे जगदीशपुर पहुंच गए। यहां कप्तान ली ग्रैंड पराजित हुआ और मारा गया। उसके अधिकांश सैनिक भी मारे गए तथा उनमें से कुछ ही सैनिक किसी तरह जान बचाकर आरा पहुंचे। कालजयी विजयी कुँवर सिंह ने 23 अप्रैल, 1858 ई. को स्वतंत्रता की हरी पताका को जगदीशपुर पर फहरा दिया। इसी बीच 26 अप्रैल, 1858 ई. को उनका देहांत हो गया।

वीर कुँवर सिंह की पुण्यतिथि को आज भी जगदीशपुर में विजयोत्सव के रुप में मनाया जाता है।

Veer Kunwar Singh

"When the history of the Rebellion of 1857 is written," wrote a British chronicler of the time, the name of Jagdishpur would be especially remembered for having given the stiffest resistance to British forces. He wasn't exaggerating — Jagdishpur, located in present day Bihar, has gone down in the annals of 1857 history for having witnessed some of the severest battles fought during the period. So much so, that two of the five Victoria Crosses ever awarded by the British to civilians — for showing exemplary valour in the face of the enemy, were awarded for battles fought in Jagdishpur.



The man who gave the British such sleepless nights here was Kunwar Singh — the zamindar of the region and leader of the rebels. Most historians are not surprised that it was Kunwar Singh who became the rallying point for the rebels of the area, although he was almost 80 years old at that time. Rebellion, they say, was in Kunwar Singh's blood. His ancestors had, at successive times, rebelled against various Mughal emperors, from Babur to Shah Jahan and the family had a reputation for being fiercely independent. However, on the eve of the rising in 1857, Kunwar Singh was in heavy debt, amounting to almost Rs 20 lakh.

In fact, Kunwar Singh was known to be generous to a fault. He was also a brilliant military strategist. "There is no other person in military history, who took to guerilla warfare at that age and fought so successfully against all odds".



Proof of this came, when on July 25, 1857, the rebellion erupted in Bihar. The sepoys of the 7th, 8th and 40th regiments of the Native Bengal Infantry stationed in Danapur, near Patna, revolted and joined Kunwar Singh's forces in Jagdishpur. On July 27, the rebels decided to lay siege to Ara, a town with a big British cantonment, almost 25 kms away from Jagdishpur. "It was here that Kunwar Singh displayed his tacit military intelligence and shrewd fighting skills".



"Kunwar Singh anticipated that the British would soon send a relieving company to the besieged garrison in Ara. Therefore, he laid an ambush for the relieving British column, which soon arrived from Danapur. The British forces were taken by surprise and they suffered a crushing defeat. Their leader, Captain Dunbar, was killed and of the 500 men under his command, only 50 managed to escape alive and reach back to Danapur".

This victory raised the rebels' morale. However, it was short-lived. Kunwar Singh was soon forced to retreat from Jagdishpur and for the next one year, he was on the run, marching with his forces, first to Rohtas and then onto Rewah, Banda, Lucknow and, then onwards to Azamgarh, which he soon brought under his control. The British, however, were hot on his pursuit and Kunwar Singh had to leave Azamgarh. On April 21, 1858, the British forces, under the command of Brigadier Douglas, carried out a surprise attack on Kunwar Singh and his men, some distance away from Azamgarh.



In the fighting that ensued, Kunwar Singh was severely wounded in the arm. The wound was so deep, that Kunwar Singh decided to cut off his arm and fling it into the Ganga as an offering to the river. He reached Jagdishpur, exhausted and wounded on April 22 but the next day was ready to fight the British again. Kunwar Singh's forces met the British led by Captain Le Grand at Dullaur, near Jagdishpur, on April 23, 1858. In the resulting battle, the British were completely routed. The heavy fighting also took its toll on Kunwar Singh, who died three days later.



The day of his death, is still celebrated every year as Vijayotsav (Victory Day) in Jagdishpur, which is today a small town in the Bhojpur district of Bihar.

झांसी की रानी लक्ष्मी बाई

झांसी के राजा गंगाधर राव की 1853 में मौत के बाद अंग्रेज़ों ने उनके दत्तक पुत्र दामोदार राव को उत्तराधिकारी मानने से इनकार कर दिया। 1857 में झांसी में भी क्रांति हुई अनेक अंग्रेज़ मारे गए और गंगाधर राव की विधवा लक्ष्मीबाई ने खुद को शासक घोषित कर दिया। 1858 में अंग्रेज़ी सेना ने झांसी पर धावा बोल दिया। 1400 सैनिकों के साथ लक्ष्मीबाई दत्तक पुत्र को कंधे पर बांध लड़ाई में कूद पड़ी। दो हफ्ते तक भयंकर युद्ध चला और 3 अप्रैल 1858 को सर रोज ने झांसी पर कब्जा कर लिया अंग्रेज़ लक्ष्मीबाई को नहीं पकड़ पाए। लक्ष्मीबाई ग्वालियर के पास कालपी जा पहुंची जहां उन्हें तात्या टोपे मिले। दोनों ने ग्वालियर कूच किया। ह्यूज रोज़ भी बढ़ा और उसने जून 1858 में ग्वालियर पर कब्जा कर लिया।



बाई साहब (रानी लक्ष्मी बाई) ने जैसे ही हकीकत को समझा वैसे ही सहस्त्र बिच्छुओं के डंक मारने के समान उन्हें दुःख हुआ। पन्द्रह सौ विलायती अर्थात मुसलमान अरब, जो बहुत दिनों से उनके यहां नौकर थे, उन्हें लेकर तलवार खींचकर वे तुरन्त ही किले से नीचे उतरीं और बड़े दरवाजे से दक्षिण की ओर चल दीं। गोरे शहर में आ गए थे। उनकी तलवारें भी म्यानों से बाहर निकल आई थीं। सबके पीछे से चलते हुए बाई साहब सेना के मध्य से होकर तलवार लिए आगे बढ़ रही थीं। गोरे और विलायती लोगों की तलवारों में गांठ पड़ते ही चारों ओर भीषण दृश्य उपस्थित हो गया कि उसकी उपमा केवल महाभारत के युद्ध से ही दी जा सकती है। सौ तक गिनती गिनने में देर लगेगी, परन्तु जोश में भरे हुए, विलायतियों (मुसलमान अरब) को सैकड़ों गोरे मारने में उतनी भी देर न लगी। बाकी जो बचे थे, वे शहर में इधर–उधर भागकर घरों और पेड़ों की आड़ से बन्दूकें तानने लगे। पीछे से गोरे लोग आ रहे थे, उन्होंने भी तलवार न चलाकर दूर से ही गोलियां मारनी शुरू कीं। उस समय बाई साहब के साथ एक 75 वर्ष का वृद्ध और पुराना सरदार था। वह आगे आकर बाई साहब का हाथ रोक कर कहने लगा, 'महाराज, इस समय आपको आगे जाकर गोली का शिकार होना व्यर्थ है। गोरे लोग इमारतों की आड़ लेकर गोलियां चला रहे हैं। सैकड़ों गोरे शहर के अन्दर आ गए हैं। इसलिए शहर के सब फाटक उन्होंने खोल दिए हैं। इस समय लड़ने से कुछ हासिल नहीं। आप किले में जाकर दरवाजा बन्द करके फिर कोई युक्ति सोचें। हमें समय को फिर से लौटा लाना है।'

इधर बाई साहब रात के बारह बजे सब तैयारी करके किले के बाहर निकलीं। मोरोपन्त ताम्बे आदि जितने सगे–सम्बन्धी थे, वे सब भी हथियारबन्द होकर घोड़े पर सवार होकर साथ हो गए। हरेक की कमर में मोहरें बंधी थीं। खजाने में जो कुछ अर्थ था उसे हाथी पर लदा कर ले गए। साथ में दो सौ पुराने और जान पर खेल जाने वाले सरदार थे। इसके अलावा सवेरे अंग्रेज़ों के छक्के छुड़ाने वाले एक हज़ार दो सौ विलायती बहादुर भी चल रहे थे। बाई साहब पाजामा, बूट पहने पुरूष वेष धारण किए हुए थीं और हरबे–हथियार से पूरी तरह लैस थीं। बाई साहब जिस घोड़े पर सवार थीं वह एकदम सफेद था। ढाई हजार रूपए में खरीदा गया था और राजरत्न के समान ही उसका आदर था। उस घोड़े पर बैठकर पीछे से रेशमी दुपट्टे से अपने बारह वर्ष के दत्तक पुत्र को बांधकर और साथ में केवल एक रूपये की रेज़गारी लेकर महारानी बाहर निकलीं। उस वीरांगना का साहस सराहनीय है।



रानी लक्ष्मीबाई बहादुरी से लड़ते हुए शहीद हो गईं और इतिहास में अमर हो गईं।

In Jhansi, a heroic legacy endures

Jhansi, nestled in the southwestern tip of Uttar Pradesh, is perhaps one of the few places in today's India, that still identifies closely with events that took place almost 150 years ago. The reason isn't hard to guess. When Jhansi's Rani Lakshmi Bai, after fighting the British, laid down her life in June 1858, she not only became one of the most enduring symbols of the Indian War of Independence, she also catapulted Jhansi into popular imagination. Ever since, Jhansi's name has been synonymous with Lakshmi Bai, so much so that it's difficult to think of Jhansi without also thinking of its brave queen.





After the death of Lakshmi Bai's husband, Maharaja Gangadhar Rao in 1854, the British refused to accept the Rani's claims to recognize Damaodar Rao—her adopted son – as the rightful heir to the throne. Instead, they annexed Jhansi under the newly formed Doctrine of Lapse. The Rani was allotted a yearly pension of Rs.60,000 and sent off to live at a building known as the Rani Mahal.



Gwailor, incidentally was where the Rani met her end, after escaping from her fort when the British forces laid siege to it in the summer of 1858. Memories of that siege are, in fact, liberally scattered inside the Jhansi fort – an imposing structure, which lies a short walk away from the Government museum.

Lakshmi Bai will always remain an iconic figure, about whom balladeers will forever continue to sing – *"Khoob lari mardani woh toh Jhansi wali Rani thi".*

बेगम ज़ीनत महल

मुग़ल बादशाह बहादुरशाह ज़फ़र की प्रिय रानी थीं बेगम ज़ीनत महल जिन्होंने बहादुरी के साथ उस दौर को जीया, अंग्रेज़ों द्वारा पुत्रों की हत्या होते देखी, पति के साथ खुशी से देश निकाला स्वीकार किया और रंगून में बन्दी अवस्था में पति के साथ रहीं।

1857 में विद्रोही सिपाहियों ने बादशाह को अपना सम्राट माना तो स्वाभाविकरुप से बेगम ज़ीनत महल देश की साम्राज्ञी हुईं और इस रुतबे को उन्होंने बख़ूबी निभाया।



बहादुरशाह ज़फर

Begum Zeenat Mahal



She was the favourite queen of the Mughal Emperor Bahadurshah Zafar. She, along with her husband become a symbol of India's unity and independence when the rebels declared the old Emperor of Delhi as their ruler in 1857.

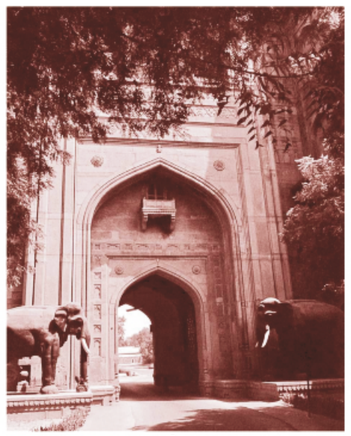


She witnessed the tumultuous phase with great dignity, saw the British kill her sons and grandson, went to Rangoon to exile with Bahadurshah Zafar.

A brave lady, she was a greatly respected character of the uprising of 1857.



लाल किला



खूनी दरवारा



बेगम ज़ीनत महल वन्दी अवस्था में



बहादुरशाह ज़फर



बहादुरशाह ज़फर के पुत्र

बेगम हज़रत महल जिन्हें गुलामी रास न आई

1857 के विप्लव में अंग्रेज़ों से ज़ोरदार टक्कर लेनेवाली झांसी की रानी लक्ष्मीबाई के अलावा एक और वीरांगना थी – बेगम हज़रत महल। उत्तर प्रदेश में लखनऊ के नवाब वाजिद अली शाह की पत्नी बेगम हज़रत महल को 'अवध की बेगम" नाम से जाना जाता था। वह फैज़ाबाद के एक गरीब परिवार में जन्मी थीं। निकाह के समय नवाब वाजिद अली शाह ने उन्हें 'इफ्तिखार'–उन– निसा' (स्त्रियों का गौरव) की पदवी दी। इकलौते पुत्र बिरजिस कद्र के जन्म के बाद नवाब ने उन्हें 'हज़रत महल' की उपाधि दी। नवाब को अंग्रेज़ों द्वारा कोलकाता निष्कासित किए जाने के बाद हज़रत महल ने अपने बेटे बिरजिस को नवाब घोषित कर गद्दी पर बैठाया और बतौर संरक्षिका शासन की जिम्मेदारी संभाली। गौर करने वाली बात यह है कि उनसे पहले दूसरी बेगमों से अपने पुत्रों को शासक घोषित करने का निवेदन किया गया था, मगर अंग्रेज़ों के डर से कोई बेग़म इसके लिए तैयार नहीं हुई। बतौर शासक हज़रत महल का असली कौशल 1857 के विद्रोह में दिखाई दिया। सिपाहियों द्वारा शुरू किए गए संग्राम को उन्होंने किसानों व जमींदारों की मदद से आगे बढ़ाया और ब्रिटिश शासन के खिलाफ एक संयोजित लड़ाई छेड़ दी। हज़रत महल ने अपने नेतृत्व में लखनऊ में ब्रिटिश रेज़ीडेंसी पर कब्जा किया और अंग्रेज़ों को बाहर खदेड़ दिया। छह महीने तक बेगम ने अपने साथियों के साथ मिलकर बनाई संयुक्त सरकार के ज़रिए लखनऊ को अपने नियंत्रण में रखा। उन्होंने ब्रिटिश सेना के खिलाफ लड़ाई के लिए आम जनता, जमींदारों और तालुकदारों को अपने बेटे की शाही मुहर के ज़रिए फरमान जारी किए।







अंग्रेज़ों के दिलकुशा बाग पर कब्ज़ा करने के बाद भी लखनऊ की रक्षा के लिए बेगम और उनके सिपाही लड़ते रहे। हज़रत बेगम के नेतृत्व में मार्च 1858 तक मूसाबाग को क्रांतिकारियों ने अपने कब्ज़े में रखा। अहमद शाह को साथ लेकर बेगम फिर रूहेलखंड की ओर बढ़ीं, मगर वह ब्रिटिश सेना को वहां से खदेड़ने में कामयाब न हो सकी। उन्हें आखिरकार अपने साथियों के साथ नेपाल में शरण लेनी पड़ी। वहीं 1879 में उन्होंने मृत्यु को गले लगाया।

Begum Hazrat Mahal

The 1857 revolt brought to the forefront another lady of great courage. She was Begum Hazrat Mahal, the wife of Awadh Nawab Wajid Ali Shah. She was better known as Begum of Awadh. Born in a poor family in Faizabad, she was married to Wajid Ali Shah and he bestowed upon her the title of Iftikhar-un-nisa (Pride of women). After the birth of their son Birjis Qadr, she was given the title of Hazrat Mahal by her husband when Wajid Ali Shah was dethroned unfairly by the British and exiled to Calcutta, she declared her son the nawab of Oudh and since he was a minor,she took the reins of administration in her own hands.



The real merit of her rule became evident during the 1857 revolt when she led the revolt with the sepoys, farmers and the landlords. She launched a very systematic war against the British. She succeeded with the help of sepoys, in the siege of the Residency and drove the British out of Lucknow. For six months, Lucknow was under her governance with the help of revolting masses and sepoys. She issued royal firmans in her son's name to the masses, landlords, taluqdars and others to join in the fight against British rule.





Even after the British captured Dilkusha Bagh, the Begum and her soldiers continued fighting under her leadership. Musabagh was under the control of the rebels till March 1858. The Begum was defeated by the British in Ruhelkhand and took refuge in Nepal, with her associates. It was here that this brave lady died in 1879. The nation salutes the spirit of women-Stree Shakti.





1857 के महाविद्रोह से जुड़े कुछ महत्वपूर्ण स्थान

बंगाल

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अत्याचारी शासन के विरुद्ध 1857 में विद्रोह का पहला बिगुल बंगाल रेजिमेन्ट के सिपाहियों ने बजाया।

वर्ष 1757 में प्लासी के युद्ध में लार्ड क्लाइव की बंगाल पर विजय से भारत में दो शताब्दियों के अंग्रेज़ी शासन की शुरुआत हुई।

अंग्रेज़ों ने बंगाल की दिवानी 1757 में और बक्सर युद्ध के बाद 1864 में वहां की निज़ामत भी हासिल कर ली। इस विजय के बाद उन्होंने देश के अन्य भागों में अपनी पकड़ मज़बूत करनी शुरु की।



देश के स्वाधीनता प्रिय लोगों को, कम्पनी के सिपाहियों को अंग्रेज़ों के फैलते शिकंजे से बहुत तकलीफ हो रही थी क्योंकि इसका कुप्रभाव देश के राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक तथा सैन्य क्षेत्र पर स्पष्ट महसूस हो रहा था। देश के निर्धन किसानों के अलावा कम्पनी के सिपाही और जवान भी शोषण का शिकार थे और सेना में भारतीय सिपाहियों के साथ भेदभाव का बर्ताव किया जाता था।



Bengal

The rebellion of 1857 was an uprising by the Bengal regiments of East India Company against prolonged oppression and subjugation and the inhuman treatment by the British Army.



The company under Lord Clive got the power of dewani of Bengal after winning the battle of Plassey in Murshidabad in 1757 which saw the beginning of the colonial rule in India that lasted nearly two centuries at a stretch.

In 1764 after the victory in the battle of Buxar, the company won the nizamat of Bengal and subsequently, following the permanent settlement of Bengal, the company continued to extend vigorously its control in the rest of the country.

But the freedom-loving people of the country and the sepoys were not happy and there were diverse political, economic, military, religious and social causes of unrest. Like the poor people, the sepoys and the jawans very often had been treated like bonded labour. They also had their own list of grievances against the company Raj — mainly caused by the gulf between the British officers and the Indian troops.

बैरकपुर

आज से 150 साल पहले जिस विद्रोह से अंग्रेज़ी शासन की नींव हिल गई थी उसका केन्द्र था कलकत्ता से 25 कि.मी. की दूरी पर बसी बैरकपुर छावनी जहां 34 वीं बंगाल नेटिव इन्फैन्ट्री के जवान मंगल पाण्डे ने विरोध की पहली आवाज़ उठाई। बैरकपुर के लाटबागान में इस निडर सिपाही को वीरगति प्राप्त हुई और 1857 के पहले शहीद का दरजा भी।

अंग्रेज़ छावनियों के कारण इस स्थान का नाम बैरकपुर पड़ा जहां बंगाल प्रेज़िडेन्सी की सेना का मुख्यालय था। यह छावनी कलकत्ता के फोर्ट विलियम के काफ़ी नज़दीक थी। लाटबागान में आज भी छावनी सैनिक बोर्ड के कार्यालय तथा राज्य सैन्य बल की छावनी है। 1857 में इसी छावनी में 34 वीं बंगाल नेटिव इन्फैन्ट्री के सिपाही रहते थे।



अधिकांश इतिहासकार यह मानते हैं कि विद्रोह के बीज सबसे पहले इन्हीं छावनियों में पनपे जहां मंगल पाण्डे ने अंग्रज़ों के विरुद्ध हथियार उठाया। स्थानीय लोगों के अनुसार आज भी वह पेड़ वहीं खड़ा है जिस पर मंगल पाण्डे को फांसी दी गई थी। कुछ ही दूरी पर धोबीघाट पर मंगल पाण्डे की स्मारिका है।

यद्यपि बैरकपुर मंगल पाण्डे से जुड़ा हुआ है, विद्रोह फरवरी 1857 में दमदम छावनी में आरम्भ हुआ था परन्तु शीघ्र ही दबा दिया गया। मंगल पाण्डे इसलिये हमारी स्मृतियों में अमर हैं क्योंकि बिना किसी सुनवाई के उन्हें फांसी की सजा दे दी गई। इस ब्राह्मण सिपाही के बलिदान ने देशभर में क्रांति की ज्वाला को और सुलगा दिया।



Barrackpore

The epicentre of the events that shook Delhi on 11 May 150 years back was in the cantonment town of Barrackpore, 25 km north of Calcutta. The trigger for the events of 1857 was a Brahmin sepoy from 34th Bengal Native Infantry, who fired the first salvo. And it was in Latbagan, a locality by the Hooghly in Barrackpore, where Pandey fought and died.

"Deriving its name from the British barracks, Barrackpore was the British imperial army's headquarters for the Bengal Presidency, and was the cantonment closest to Fort William in Calcutta." Latbagan still remains a defence installation, with the offices of the Cantonment Sainik Board and the barracks of the state armed police. In these same barracks once lived the sepoys of the 34th Bengal Native Infantry.

Most historians believe that the seed of the uprising was sowed in these barracks, as Mangal Pandey took up arms against the British. According to locals, the tree where Pandey was hanged still stands, although its tendrils have spread far from the root. A few furlongs away, at Dhobighat stands Pandey's memorial.

Though Barrackpore has come to be associated with Mangal Pandey, the rebellion actually started from the cantonment at Dumdum. "Even before Pandey, the 19th Bengal Native Infantry at Behrampore revolted in February 1857, but were defeated and demobilised after being brought down to Barrackpore. Pandey, however, has remained large in public memory because he was the first one to be hanged without fair trial,". That is how the Brahmin soldier's act inspired the revolutionaries of 1857.

1857 का कलकत्ता

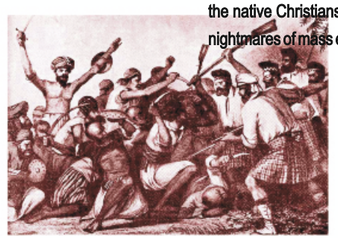
1857 के घटनाक्रम ने कलकत्ता पर क्या प्रभाव डाला था ? इतिहासकार, भारतीय तथा अंग्रेज़ दोनो ही स्वीकार करते हैं कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी की राजधानी तो इस क्रांति से अछूती नहीं रह सकती थी। मगर जहां दिल्ली की बग़ावत, कानपुर के हत्याकाण्ड, आदि का ज़िक्र होता है वहीं कलकत्ता के बारे में यही तथ्य सामने आता है कि यहां अंग्रेज़ों में भयभीत बौखलाहट भर गई थी। यह स्थिति तब थी जब कि यहां किसी प्रकार का कोई भी युद्ध नहीं हुआ था।

सरकारी भवनों में काम करते अंग्रेज़ों से लेकर स्थानीय लोगों तक में यह डर बैठ गया था कि कहीं कलकत्ता सिपाहियों के कब्ज़े में न चला जाए। कम्पनी राज में एक प्रकार से कलकत्ता के हर निवासी की साझेदारी थी, चाहे वह यूरोपियन, भारतीय, चीनी अथवा अमेरिकी ही क्यों न हो। हरेक व्यक्ति की यह धारणा थी वह शहर जो एशिया में यूरोपियन नगर का पर्याय बन गया था, जिसमें बैंक, कानून, व्यापार आदि के उच्चस्तरीय कार्यालय थे जिसमें जनवरी में ही विश्वविद्यालय की स्थापना हुई थी, कहीं, क्रांति के परिणामस्वरुप मध्ययुग में न लौट जाए।

कलकत्ता में शासक और शासित वर्ग में एक अद्भुत तालमेल बैठ गया था क्योंकि यहां के शिक्षित वर्ग के अनुसार अंग्रेज़ी शासन में स्थिरता, विकास तथा आधुनिकता थी। कलकत्ता पर लगभग 100 वर्ष पहले 1756 में भी सिराजुद्दौला के नेतृत्व में सिपाहियों ने कब्ज़ा कर लिया था थोड़े समय के लिये अंग्रेज़ों को और शोभाबाज़ार के बाबू सम्प्रदाय को, सभी को यही डर था कि फिर से अस्थिरता का वातावरण न बन जाए। बंगाल की पुनर्जागृति की उपलब्धियां कहीं नष्ट न हो जाएं।

तत्कालीन गवर्नर जनल लॉर्ड कैनिंग ने, जिनकी नियुक्ति भारत में दो वर्ष पहले हुई थी, इस परिस्थिति को बहुत सोच–समझ कर सुलझाने का प्रयास किया। इस कार्य में उनकी पत्नी का भी सहयोग उन्हें मिला ताकि वातावरण में फैले तनाव को दूर किया जा सके। सबसे अधिक जो वर्ग डरा हुआ था वह था भारतीय ईसाई वर्ग। उस समय के अख़बारों 'बंगाल कैथोलिक हेराल्ड' 'इन्क्वायरर' आदि में छपे लेखों से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय ईसाई सिपाहियों द्वारा मार डाले जाने का डर से घबराए हुए थे क्योंकि सिपाहियों में इस 'नए' धर्म के प्रति बहुत नाराज़गी थी।

राजभवन में लॉर्ड तथा लेडी कैनिंग ने स्थानीय लोगों को निर्भय रहने का आश्वासन दिया।



Calcutta in the Summer of 1857

How was Calcutta affected by the events of 1857? Historians, whether British or Indian, are unanimous that as the capital city of the East India Company it could not escape impact. But while everyone talks in terms of "uprising in Delhi" or "massacre in Kanpur", for 'British Calcutta' the only description deemed apt is "panic". Despite the fact that no fighting took place in Calcutta.

From the denizens of Government House to the natives who lived beyond the Mahratta Ditch, everybody trembled with fear at the thought of Calcutta falling to the sepoys. For, by 1857, Calcuttans of all hues had developed a stake in Company *raj*. Whether European or native, Chinese indigenous or American itinerant, there was genuine concern that a city that had become an outpost of Europe in Asia, with institutions in banking, law, education - a proper university was established in January that year - was in danger of slipping back to medievalism.

In Calcutta a strange equilibrium had been reached in the relationship between the ruler and the ruled. British administration symbolised stability, growth and a modern outlook. Once earlier in its history, Calcutta had been taken over by the rebels. In 1756, troops from Murshidabad, under Siraj-ud-Daulah, had stormed the city and occupied it briefly. To the British, the Mutiny revived the imagery of the Black Hole myth. For the *baboo* of Sovabazar, on the other hand, another blast from old India would have meant two things: a return to chaos, and destruction of the achievements of the first phase of the Bengal Renaissance.

Lord Canning, the Governor-General who had arrived two years earlier, and his charming wife Charlotte were quick to discern the tension. The section most stricken by fear was the native Christians. It is possible to glean, from the pages of the *Bengal Catholic Herald* and the *Enquirer*, how the ordinary Goan, Bengali and Eurasian community had nightmares of mass execution because the sepoys, whether Hindu or Muslim, made little secret of their antipathy towards the "new" religion.





मेरठ छावनी में क्रांति की ख़बर पाते ही लॉर्ड कैनिंग ने फारस भेजी गई सेना को तुरन्त वापस बुलवाया, मद्रास के गवर्नर को दो यूरोपियन सेना दल भेजने के लिये तैयार रखने को कहलवाया, पेगू, बर्मा में उन्होंने स्टीमर भेज कर सैन्य दल बुलवाया तथा पंजाब में जॉन लॉरेन्स को आदेश दिया कि दिल्ली में सैन्यदल भेजे तथा लन्दन को पत्र लिखा कि भारत के लिये तीन अतिरिक्त सैन्य दल भेजे जाएं। अपनी दूरदर्शिता से लॉर्ड कैनिंग ने कलकत्ता को विद्रोहियों के हाथ से बचाने में सफलता पाई।



24 मई को महारानी विक्टोरिया का जन्मदिन था तथा लॉर्ड कैनिंग ने यह निश्चय किया कि समारोह स्थगित नहीं किया जाएगा। आख़िर यह भी तो साबित किया जाना था कि यह क्रांति उनके लिए कोई विशेष महत्वपूर्ण घटना नहीं थी, मगर समारोह के लिये सेना के इंतज़ाम इस तथ्य को झुठला रहे थे।

"आक्रमण" की अफवाहें चारों ओर फैल रही थीं। अवध के निष्कासित नवाब के "गार्डनरीच महल" को षडयंत्र स्थल माना जा रहा था। स्थानीय नौकरों के बाग़ी तेवरों की सच्ची झूठी कहानियां लोगों को और हड़बड़ा रही थीं। लॉर्ड कैनिंग को डर था कि यहां शायद हर व्यक्ति के पास हथियार हैं। उन्होंने एक पत्र में स्वीकार किया कि वे अंग्रेज़ों के भारतीयों के साथ दूरी बनाने के लिये शर्मिन्दगी महसूस करते थे।

भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अन्तिम गर्वनर जनरल तथा ब्रिटिश साम्राज्य के प्रथम वाइसरॉय लॉर्ड कैनिंग को इतिहास में सदा ऐसे नेतृत्व के लिये याद किया जाएगा जिसमें शत्रु को तो युद्ध में हराना था मगर साथ ही शान्ति की भी बहाली करनी थी। उन्होंने पेशेवर सिपाहियों तक ही गतिविधियां सीमित रखी तथा विभिन्न स्थानीय दलों जैसे कलकत्ता मेसॉनिक फ्रैटर्निटी, यूरोपीयन व्यापारी संगठन, आर्मेनियाई तथा यहूदी व्यापारियों के सेना तैयार करने के अनुरोध को ठुकरा दिया।

ग्वालियर के अंग्रेज़ समर्थक राजा जयाजिराव सिंधिया का उन्होंने कलकत्ता आने पर सितम्बर 1857 में भव्य राजकीय स्वागत किया ताकि देश की रियासतों को यह स्पष्ट हो सके कि कम्पनी को अब यह स्वीकार था कि राज्यों को हड़पने की उसकी नीति गलत थी। लॉर्ड कैनिंग के प्रयासों से यह कहा जा सकता है कि 1857 की क्रांति की भौगोलिक सीमाएं सीमित की जा सकी थीं।

मेरठ

परेड मैदान :



24 अप्रैल 1857 को तीसरी बंगाल लाइट केवेलरी के 85 सिपाहियों ने 'गाय और सूअर' की चर्बी से युक्त कारतूसों का प्रयोग करने से मना कर दिया। 9 मई को इसी मैदान में इन सिपाहियों को हथकड़ियों और बेड़ियों में जकड़ कर कर्नल कारमाइकल स्मिथ के नेतृत्व में कोर्टमार्शल किया गया। 10 मई, 1857 को बंगाल सेना की 11 वीं तथा 20 वीं नेटिव कैवेलरी मेरठ में एकत्रित हुई और अपने अंग्रेज़ अधिकारियों पर हमला किया। वर्ष 2004 में छावनी बोर्ड ने लोगों को इस महत्वपूर्ण स्थान की याद दिलाई, मगर आज यह ऐतिहासिक स्थान शोचनीय दशा में है।

सेन्ट जॉन गिरजाघर

परेड मैदान के पास ही 1819 में बनाया गया सेन्ट जॉन गिरजाघर है जहां मई 1857 में हिन्दुस्तानी सिपाहियों ने हमला बोला था। यहां के रिकॉर्ड बताते हैं कि इस हमले के बाद ज़िले तथा देश की स्थिति को देखते हुए इसकी गतिविधियां बन्द कर दी गई थी। यह भी एक मूक साक्षी है विद्रोह के ऐतिहासिक दौर का।

सेन्ट जॉन क़ब्रगाह

1857 की एक और भूली बिसरी निशानी है सेन्ट जॉन क़ब्रगाह जहां विद्रोह में मारे गए लगभग नौ अंग्रेज़ दफ़न हैं जिनमें जनरल डेविड ऑक्टरलोनी की क़ब्र भी है। यहां के संरक्षक के अनुसार कई अंग्रेज़ यहां आते हैं पर उनके लिये अपने पूर्वजों की क़ब्र पहचाननी मुश्किल होती है।

काली पल्टन मन्दिर

काली पल्टन मन्दिर में 1857 की क्रांति का पत्ते के आकार का संगमरमर का बना स्मारक है, साथ ही छावनी बोर्ड ने इन्फैन्ट्री और केवेलरी लाइन्स के स्थानों को भी निशान चिह्न दिये हैं जो उस विद्रोह के प्रतीक हैं।

Meerut

Parade Ground:

On April 24, 1857, 85 soldiers of the 3rd Bengal Light Cavalry refused to use the "cow and pig fat" cartridges. On May 9, they were court martialled by Col. Carmichael Smyth at the Parade Ground, handcuffed and "leg ironed" to humiliate them. On May 10, the 11th and 20th Native Cavalry of the Bengal Army assembled in Meerut and attacked their commanding officers. It wasn't till 2004, when the Cantonment Board put up a plaque listing its historical worth, that people even knew about the incident. Not that it would have mattered. Encroached upon by a locality of government officials, nothing much remains of the grounds except weeds and a garbage dump.

St. John's Church:

Not far from the parade ground is St. John's Church, which was built in 1819 and preserves its records of services and burials in 1857. The services were suspended from May 10-24 when Indian soldiers stormed the church. "The services in the Church, Soldiers Chapel & Drummer's School were consequently abandoned from that date: it being considered no longer safe to occupy those places, during the very disturbed conditions of the station & district, "say the records. In a dark corner of the church, lies a marble plaque commemorating the family of a soldier named William who fought in the battle. "Many curious Britishers have been here recently. Obviously, the church has great historical value".

St. John's Cemetery:

Another forgotten reminder of the mutiny is St. John's cemetery, where at least nine Britishers who died in the Mutiny are buried. General David Ochterloney, the first British chitizen of Delhi who also boasts a monument in Kolkata, rests here surrounded by weeds and opium. The oldest grave dates back to 1810. "Many Britishers come looking for their ancestors' graves and ask me to identify, but the cemetry is so old that many graves have been destroyed", says the caretaker of the place.

Kali Paltan Mandir:

The temple just happens to house the memorial of the mutiny, a leaf-shaped marble structure that lies hidden behind the sanctum sanctorum. "A small inscription on the memorial explains its presence, but not many people come here to see just this". The Cantonment Board too has marked several areas and put up plaques on Infantry and Cavalry Lines where the native infantry mess existed and the theatre where the bodies of British soldiers were brought. Not many people know or care about it.

So the first couple at Government House took it upon themselves to reassure the locals. Lady Canning made it a point to continue with her practice of short rides along the river front with a small escort.

The day, news of the rising at Meerut reached Calcutta, Canning, who didn't lose his head through the crisis, ordered the immediate return of troops sent to Persia and asked the Governor of Madras to have two European regiments ready for embarkation. He, then sent a steamer to Pegu, in Burma, to fetch a regiment. John Lawrence in Punjab was directed to send every available man to Delhi. Finally, Canning wrote to London seeking three additional regiments for service in India.

May 24 was Queen Victoria's birthday. Lord Canning thought it fit not to cancel the annual ball held to celebrate the event. After all, the diplomatic community of the city, which included an American presence since 1792, had to be persuaded that the British were not taking the uprising too seriously. But the military bandobast made it clear that Calcutta was in a state of high alert.

Rumours flew about "imminent attacks". The Garden Reach palace of the deposed Nawab of Awadh was considered a hotbed of conspiracy. Acts of "insolence" by native servants, both real and imagined, drove people crazy. Lord Canning was worried that everybody carried guns. He admitted in a letter that he was "ashamed" by the role of Englishmen in deepening the divide with Indians.

The last Governor-General of the East India Company, later to become the first viceroy of India, goes down in history as a leader who sought to not just defeat an enemy at war, but win the peace as well. He restricted action to professional soldiers. To offers from the Calcutta Masonic Fraternity, the European Traders' Association and sundry federations of Armenian and Jewish merchants to raise not only money but also armies, Lord Canning's reply was a firm' no'.

Canning rolled out the red carpet for Jayaji Rao Scindia, the pro-British ruler of Gwalior, and hosted a state reception for the potentate when he visited Calcutta in September 1857. This sent out a message to the Indian princes that the Company was willing to accept the Doctrine of Lapse as a mistake. This helped contain the geographical extent of the rebellion.

Meerut: On way to Delhi

The pride of the Indian soldier is palpable all around Meerut Cantonment.

Trailing the history of 150 years on West End Road, now known as School Road, the first destination is the residence of Colonel Carmichael Smyth. Smyth was the Commandant of the 3rd Light Cavalry regiment who had ordered carbineers (shooters) of his regiment to use the disputed cartridges.





A half-an-hour walk from there takes one to the Parade Ground of the 3rd Light Cavalry. On one side of the historic ground stands the military dairy, while most of the ground itself is overrun by filth. It is hard to believe this is a landmark where India took its first breath of freedom on April 24, 1857, when 85 men of the 3rd Light Cavalry refused to use the greased cartridges.



The 85 sepoys were taken into custody and confined to a hospital during their court martial. For punishment, on May 9, they were taken to the Parade Ground, where they were stripped of their uniforms and fitted with leg irons. Then they were marched 3 km to the new jail, which is known as Victoria Park today. This playground of the Meerut College has witnessed another tragedy — the fire of April 10, 2006. A majestic banyan tree in one corner of the ground behind St John`s Church, stands witness to the uprising". The alleys of the crowded Sadar Bazaar area also tell their own tales. The prostitutes of this market taunted the Indian soldiers for failing to save their 85 comrades from humiliation. That added strength to a rumour that the British forces were going to disarm the 'native troops', and that sparked an uproar. Indian soldiers started attacking Englishman.



The next destination is the Race Club, where Colonel John Finnis, Commandant of the 11th Native Infantry, was shot dead by the men of the 20th Indian Infantry. "Colonel Finnis came to control the violent regiment, but became the first British officer to lose his life in the Mutiny." In all, 31 British men and their family members were killed; their houses were set afire. The graves of nine of those victims are there in the southwest section of St Johns' Cemetery.



"Rebels attacked the new jail and released their 85 shackled comrades. They gathered at the Parade Ground to collect their arms before setting out for Delhi." The torch moved on to the future capital of India.

लखनऊ

रेसीडेन्सी

यह भवन गोमती के किनारे आज भी 1857 के उन क्रांतिकारी दिनों का स्मरण दिलाता





है। इसमें ब्रिटिश रेसिडेन्ट तथा अन्य उच्च अधिकारी रहते थे। विद्रोहियों ने रेसिडेन्सी को घेर लिया और रेसिडेन्ट हेनरी लॉरेन्स को मार दिया। जुलाई 1857 में भारतीय सिपाहियों ने अन्दर रहने वाले 2,994 लोगों को घेरा डालकर बन्दी बना लिया जिनमें स्त्री तथा बच्चे भी शामिल थे। 86 दिनों तक यहां विद्रोहियों का कब्ज़ा रहा और केवल 979 बन्दी जीवित बच सके। आज भी इसके खण्डहर उन तूफ़ानी दिनों की गाथा सुनाते हैं।

आलमबाग़ दरवाज़ा



1858 में ब्रिगेडियर नील ने रेसिडेन्सी के घेराव का बदला लेना शुरु किया। जो भी भारतीय दिखता था उसे इस दरवाज़े पर फांसी दे दी जाती थी, कुछ को गोली भी मारी जाती थी। इस दरवाज़े पर बरसों तक खून के निशान थे। इसी दरवाज़े के पास रेसिडेन्सी को बचाने आए जनरल हेनरी हेवलॉक की क़ब्र है।



दिलकुशा महल



छावनी में स्थित दिलकुशा महल अवध के नवाब की शिकारगाह था। जनरल हेवलॉक इसी भवन में अपनी मृत्यु तक रहे थे। इसी के पास क़ब्रगाह में अनेक अंग्रेज़ अफसर दफन है। छावनी बोर्ड ने इस सुन्दर महल में बग़ीचा भी बनवाया है।

मोती महल, शाहनज़फ इमामबाड़ा और सिकन्दर बाग़ दरवाजा

1857 की क्रांति में यही तीनों स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। हिन्दुस्तानी सिपाहियों ने गोमती के किनारे बसे मोती महल और शाहनज़फ इमामबाड़े में जमा होकर सिकन्दर बाग़ दरवाज़े पर डटकर अंग्रेज़ी फौज का सामना किया। दिनभर की लड़ाई के बाद अंग्रेज़ों ने हिन्दुस्तानी सिपाहियों को क़ाबू कर लिया। कहा जाता है कि एक अनजान भारतीय सिपाही ने पेड़ पर छुपकर अनेक अंग्रेज़ सिपाहियों को मारा



था और बाद में पता चला था कि वह एक बहादुर स्त्री थी। वर्षों तक अनाम इस वीर योद्धा स्त्री की प्रतिमा को कुछ वर्ष पहले नाम मिला उदा देवी पासी का जिनकी इस युद्ध में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका थी।



Lucknow

The Residency Company:





Situated near the banks of the Gomti river, the Residency is a prominent site related to the 1857 war. The house of the British resident and other important officials, the Residency campus was captured by the Indian soldiers and resident Henry Lawrence shot on July 2, 1857. Though treated at Dr. Frayer's house, which is still on the campus, he died on July 4. Soon after, the Indian soldiers seized the Residency and locked up 2, 994 people, including the wives and children of British officials. Only 979 managed to survive after a 86-day siege. These included 50 students of the La Martiniere College, who tried to defend the Residency by locking the small gate near the Beli guard gate.

The Alambagh Gate:



In 1858, Brig. Neil returned to avenge the Residency killings. He had every Indian in sight hanged at this gate, and even shot a few, with the gate carrying the blood stains for a long time. Near the gate is the grave of General Henry Havelock, who came to help the soldiers at the Residency.

Dilkush Palace:

The Dilkusha Palace at the Cantonment was the hunting lodge for the nawabs of Awadh. Just before the mutiny, Havelock arrived here and stayed till his death in 1857. The cemetery near the palace is also significant as it houses the grave of Keith Dashwood, one of the youngest British officers killed during the mutiny. He was just 19. The palace is still beautiful and the Cantonment board has constructed a garden here.

Moti Mahal, Shahnazaf Imambara and Sikandrabagh Gate:

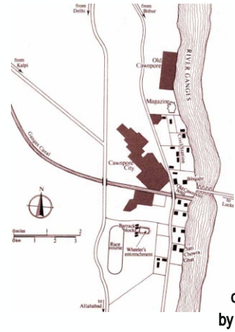


The three sites form an important milestone in the war of 1857. During the outbreak of mutiny in Lucknow, the Indian force reached Moti Mahal and Shanazaf Imamabara on the banks of the Gomti River from all over the city. They met the British forces at the Sikandrabagh gate, and after a daylong clash, were overpowered. It is said that an unknown warrior shot dead many British soldiers by hiding in a tree and was later found to be a woman. Some years ago, the statue of the unknown woman warrior was renamed Uda Devi Pasi, and every year, the Pasi community holds a function here. "A dreadful battle between the British and Indians was fought here in which Uda Devi Pasi played a sterling role."



कानपुर

व्हीलर एन्ट्रेन्चमेन्ट



6 जून 1857 को नाना साहब के नेतृत्व में कानपुर ने स्वतंत्रता की घोषणा कर दी। मेज़र जनरल ह्यू व्हीलर के नेतृत्व में अंग्रेज़ों ने जिस स्थान पर शरण ली, उसका नाम बाद में व्हीलर एन्ट्रेन्चमेन्ट पड़ा। इस स्थान पर तीन फीट ऊँचा खम्भा है जिसपर 'व्हीलर एन्ट्रेन्चमेन्ट 1857' खुदा हुआ है। यह स्थान चर्च के भीतर है अतः अनेक लोगों को इसके बारे में पता नहीं है।

सती चौरा घाट



भोजन और जल के अभाव में एन्ट्रेन्चमेन्ट में छुपे अंग्रेज़ आत्मसम्पर्ण के लिए तैयार हो गए। उन्हें यह आश्वासन दिया गया कि सती चौरा घाट से वे नावों द्वारा इलाहाबाद के लिए रवाना हो सकेंगे। जैसे ही अंग्रेज़ नावों पर स्वार हुए उन पर गोलीबारी की जाने लगी और अनेक अंग्रेज़ मारे गए। जो जीवित बच गए उन्हें कैद करके बीबीघर में रखा गया। इस घाट को बाद में नाना राव घाट के नाम से भी जाना गया।

बीबीघर

जब विद्रोही सिपाहियों को पता चला कि जनरल हेनरी हेवलॉक बड़ी सेना लेकर कानपुर को वापस जीतने आ रहे है तो उन्होंने 15 जून 1857 को बन्दी अंग्रेज़ों को मार कर बीबीघर के बाहर बने कुंए में



फेंक दिया। अंग्रेज़ों ने कानपुर वापस छीन लिया, बीबीघर तोड़ दिया और कुंए के पास स्मारक बनवाया। आज इस कुंए को ईंटों से पाट दिया गया है और उस पर नाना साहब के अमर सेनापति वीर तांत्या टोपे की प्रतिमा स्थापित कर दी गई है।



ऑल सोल्स चर्च

इसे कानपुर मेमोरियल चर्च भी कहा जाता है। छावनी के भीतर बसे इस चर्च की अवस्था सबसे ठीक है। इसमें व्हीलर एन्ट्रेन्चमेन्ट, स्मारक रेलिंग तथा क्रॉस, विद्रोह में मारे गए लगभग 1000 ब्रिटिश सैन्य अधिकारियों के नाम सहित उनकी क़ब्रें, स्थित हैं। इस गिरजाघर में प्रवेश के लिए अनुमति लेनी होती है।



Kanpur

Wheeler's Entrenchment:

The people of Cawnpore (now Kanpur), under Nana Sahib, declared independence from British rule on June 6, 1857. The British, under Major General Hugh Wheeler, retreated into a trench, which later came to be known as Wheeler's Entrenchment. Though a major portion of the entrenchment is covered, it is represented by a 3-ft pillar, with "Wheeler's Entrenchment 1857' inscribed on it. As the site is inside the church, not many people visit or know about it.





Sati Chaura Ghat:

The Britishers who took refuge in the entrenchment agreed to surrender due to shortage of food and water. They did so on the promise that they would be given safe passage to Allahabad via Suttee Chaura Ghat (Sati Chaura) on boats. When the Britishers boarded the boats, they were fired at and hundreds of them died. Those alive were taken hostage and captured at Bibighar (House of Ladies). The Ghat was later known as Massacre or Nana Rao Ghat.

Bibighar:

When the Indians found out the General Henry Havelock was arriving with heavy forces to reoccupy Kanpur, they executed the captives and dumped their bodies in the well outside Bibighar on June 15, 1857. Havelock arrived on July 18 but Nana Sahib had disappeared. The British occupied Kanpur, dismantled Bibighar, and raised a memorial railing and cross near the well. The well is covered with bricks and the statue of Tantiya Tope, commander-in-chief of Nana Sahib has been installed over it.

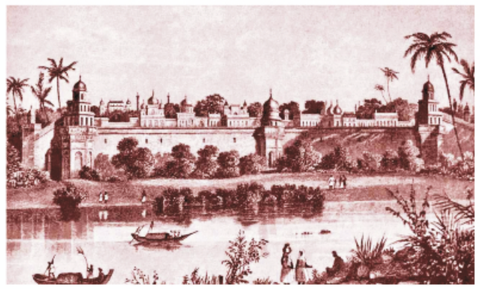
All Souls Church:

The Kanpur Memorial Chruch or the All Souls Cathedral in the Cantonment area is the best preserved. It includes Wheeler's Entrenchment, memorial railing and cross, graves of British officials and marble tablets with the names of 1,000 Britishers who died in the revolt. As permission is required to enter the church, the site doesn't have too many visitors. However, to commemorate the 150th year of the revolt, some British tourists came here recently to pay homage to the dead.

आगरा

आगरे का किला

अंग्रेज़ों ने 1803 में इस किले को अस्त्रागार में बदल दिया। दीवाने–आम में उत्तर–पश्चिमी क्षेत्र के लेफ्टिनेंट गवर्नर जॉन रसल कॉलविन की क़ब्र है जिनकी मृत्यु 1857 में हुई। इस किले ने आगरे का युद्ध और 6,000 अंग्रेज़ रेसिडेन्टों की क़ैद देखी है।



सोमेश्वर मन्दिर

गोकुलपुरा के संगमरमर बाज़ार की गलियों में स्थित इस गुजराती मन्दिर में 1857 की क्रांति के अग्रणी नायक वीर तौंत्या टोपे ने शरण ली थी। आज इस स्थान पर केवल दो अंधेरे कमरे और एक स्मृति चिह्न है जो हमें यह बताता है। बाक़ी स्थान तो पत्तों से घिरा और बन्दरों के हवाले है।

आगरा कॉलेज पुस्तकालय

1830 में बने इस कॉलेज के पुस्तकालय को अंग्रेज़ी शासन का प्रतीक मानकर 5 जुलाई 1857 को विद्रोहियों ने जला दिया था। कुछ किताबें बचाई जा सकीं थीं जिन्हें पुस्तकालय के पुनः बन जाने पर वापस लाया गया।

Agra

Agra Fort:

In 1803, the Britishers garrisoned the fort and converted it into an arsenal. The Diwan-e-aam holds the grave of John Russel Colvin, Lt, Governor of the North-West Province of India, who died in 1857. Agra Fort was the scene of self-inflicted incarceration of 6,000 British residents in 1857 and the battle of Agra.



Someshwar Mandir:

Given that this Gujarati temple in the marble market of Gokulpura can be approached only through the narrowest of alleys, it covets attention because it was said to have sheltered Tantiya Tope, one of the heroes of the 1857 mutiny, when he went underground. Never mind that two dark cabins and a plaque are all that it has to prove the point. The rest is shrouded in leaves and is at the mercy of monkeys.

Agra College Library:

The library of one of the oldest colleges in India—it was built in 1830—was burnt down on July 5, 1857 as it was owned by the British Government. "Some of the books were saved and taken to Naubasta. They were brought back when the library was reconstructed".

दिल्ली

ब्रिटिश मैगज़ीन

कश्मीरी गेट तथा लोथियान रोड के मध्य में स्थित पोस्ट–ऑफिस के सामने ब्रिटिश मैगज़ीन एक किलाबद्ध इमारत थी जिसमें ब्रिटिश सेना का अस्त्रागार था। भारतीय विद्रोही सिपाहियों ने 11 मई 1857 को इस पर लगभग कब्ज़ा कर ही लिया था। इस अस्त्रागार के प्रमुख लेफ्टिनेंट जरनल डॉबसन विलोबी और उनके सिपाहियों ने इसे बचाने के लिये चार घण्टे तक विद्रोहियों के साथ घमासान युद्ध किया और अन्ततः इस अस्त्रागार को ही नष्ट कर दिया ताकि विद्रोही सिपाही इन हथियारों का प्रयोग न कर सकें। इस धमाके में 400 भारतीय सिपाही मारे गए। आज यह भवन अपराधियों और नशाखोरों का अड्डा बन चुका है।



जनरल पोस्ट ऑफिस

टेलीग्राफ का आविष्कार 11 मई 1857 को अंग्रेज़ों के बहुत काम आया। इसी दिन अस्त्रागार को उड़ा दिया गया था और मृत्यु से पहले अंग्रेज़ सिपाहियों ने अम्बाला छावनी में टेलीग्राफ द्वारा सन्देश भेज दिया था। आज भी इस स्थान पर अंग्रेज़ों द्वारा बनाया गया टेलीग्राफ स्मारक मौजूद है मृत अंग्रेज़ सिपाहियों के स्मारक स्वरुप।



फ्लैगस्टाफ टावर

यह दिल्ली विश्वविद्यालय के निकट कमला नेहरु रिज पर स्थित है और अंग्रेज़ सैनिकों ने यहाँ से भागकर करनाल में शरण ली जहाँ का नवाब अंग्रेज़ वफादार था और उनकी सहायता करने को तैयार था।



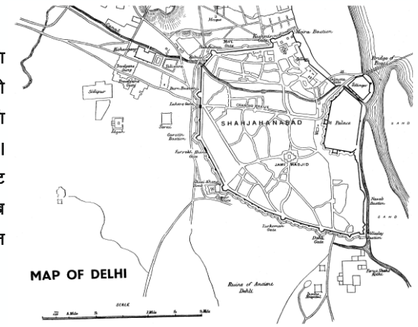
आज यह टावर रिज पर उन दिनों की याद स्वरुप खड़ा है, और जो संचार माध्यम के महत्वपूर्ण स्तंभ थे आज निःशब्द है।

बादली की सराय

इस स्थान पर विद्रोहियों तथा अंग्रेज़ों में घमासान युद्ध हुआ जिसमें अनेक अंग्रेज़ सिपाही मारे गए थे। यह स्थान भी देश की पहली आज़ादी की लड़ाई का अमर स्मारक है।

आज़ादपुर मेमोरियल

आज़ादपुर सब्ज़ी मण्डी में शायद 1857 के दौर का सबसे उपेक्षित स्मारक है। बादली की सराय की लड़ाई में मारे गए अंग्रेज़ सिपाहियों का स्मारक यहां गोबर के उपलों के ढेर के ऊपर बना हुआ है। नज़दीक ही 8 जून 1857 को मारे गए लेफ्टिनेन्ट अल्फ्रेड हैरिसन तथा 16 सिपाहियों की सामूहिक कब्र है। इस इलाके का इस्तेमाल कभी–कभी सामान चढ़ाने उतारने के लिये किया जाता है।



बेल ऑफ आर्म्स

बादली की सराय पर कब्ज़ा करने के बाद, अंग्रेज़ों ने उत्तरी रिज पर घण्टे के आकार की दो इमारतों पर अपना एक बेस कैम्प बनाया। इन इमारतों को बेल ऑफ आर्म्स कहा जाता है। सितम्बर 1857 को दिल्ली पर पुनः कब्ज़ा करने से पहले अंग्रेज़ सैन्य अधिकारियों ने यहां अत्यन्त महत्वपूर्ण बैठक भी की थी।



Delhi

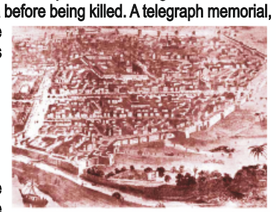
British Magazine:

Located in the middle of Lothian Road in front of the post office are two structures called the British Magazine. It was a fortified building used to store the ammunition for the British troops. On May 11, 1857. Lt. Gen. Dobson Willoughby, the officer in charge, and his men defended it for four hours, but eventually blew it up to prevent the mutineers from using the ammunition. The blast killed 400 Indian soldiers and three Victoria Crosses were awarded to officers who escaped. Today, the building is notorious as much for the criminals and drug addicts it harbours as for the many murders that have taken place here.



General Post Office:

Telegraphy, whose introduction is also said to have triggered the mutiny, came to the Britishers' aid on May 11, the day of the Magazine blast. The holed up soldiers managed to send out a message to Ambala before being killed. A telegraph memorial, erected by the British to honour its dead, stands here.



Flagstaff Tower:

When the dead soldiers were brought to the Flagstaff Tower at the Kamla Nehru ridge near the Delhi University, the Britishers knew that they had to flee, and left for Karnal. "The Nawab of Karnal was a Free Mason, and as per protocol, helped them". Today, the tower serves, as a clearing in the ridge, and the poles that were probably critical for communication, stand bare.



Badli Ki Sarai:

The rebels and the British officers fought a terrible battle here, in which a large number of British officers were killed by the sepoys. It is a reminder of those times when this great nation rose against its oppressors, and fought valiantly to free itself.



Azadpur Memorial:

At the Azadpur Mandi lies the most unkempt of monuments. Located high on a mound of cow-dung patties is the memorial for the British soldiers who died in the battle of *Badli Ki Sarai*. Close to it is the mass grave of Lt Alfred Harrison and 16 soldiers who died on June 8, 1857. "This area is rarely used except for de-boarding consignments.



Bell of Arms:

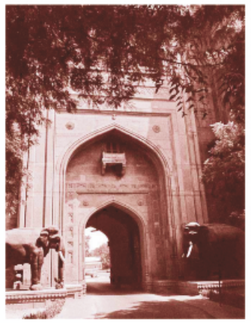
After capturing Badli ki Sarai, the Britishers set up base at the Northern Ridge in twin bell-shaped structures called, what else, the Bell of Arms. A British soldier Tytler, who was also a photographer, has written his memoirs on the mutiny. Here also, the top officers of the British Army held a meeting before the final attack on September 14, 1857.



बाड़ा हिन्दू राव

रानी झांसी रोड पर स्थित वर्तमान अस्पताल का वास्तविक नाम हिन्दू राव हाउस था जो 1857 में अंग्रेज़ सेना का मुख्यालय था। विलियम फ्रेज़र द्वारा बनवाए गए इस भवन को बाद में एक मराठा हिन्दू राव ने खरीद लिया था। अंग्रेज़ी सेना के लिये पीने का पानी इसमें स्थित एक बावली में जमा रहता था। विद्रोही सिपाही कहीं इस पानी में ज़हर न मिला दें, इसके लिये एक अधिकारी मेजर केरिन्स ने स्थायी रुप से बावली में एक गार्ड की नियुक्ति कर दी थी।

ख़ूनी दरवाज़ा



दिल्ली गेट से आईटीओ की ओर जाने वाली सड़क के बीचो बीच स्थित इस दरवाजे को ख़ूनी दरवाज़े के नाम से पुकारा जाता है। अंग्रेज़ अफसर हडसन ने अंग्रेज़ी हुकूमत के ख़िलाफ बग़ावत करने व कई अफसरों की हत्या का दोषी मानते हुए 22 सितंबर 1857 को इस दरवाज़े के पास बहादुर शाह ज़फर के दो पुत्रों व एक पोते को गोलीमार कर मौत के घाट उतार दिया था। इसके पहले भी यहां मुग़लशासन काल में कई लोगों को एक साथ फांसी दी गई थी। इससे इसका नाम ख़ूनी दरवाजा पड़ गया। आज तक इसकी पथरीली दीवारों पर खून के धब्बे दिखाई देते हैं। उस समय यह दरवाजा नगर के बाहर बना हुआ था। नगर की सीमा दिल्ली गेट से शुरु होती थी।

ज़फर महल



"कितना है बदनसीब ज़फर दफ्न के लिये, दो ग़ज़ ज़मीं भी न मिली, कू–ए–यार में" यह पंक्तियाँ आख़िरी मुग़लबादशाह बहादुरशाह ज़फर की अमर रचना है जो उनके आखिरी दिनों के दर्द को दर्शाती हैं। महरौली में स्थित ज़फर महल जो बहादुरशाह ज़फर और उनकी प्रियरानी ज़ीनत महल की आरामगाह था, वहीं बादशाह ने अपने लिये कब्र की जगह तय कर रखी थी। मगर बादशाह की इस इच्छा की पूर्ति न हो सकी। 1857 के विद्रोह के नेतृत्व की सज़ा अंग्रेज़ों ने इस वृद्ध बादशाह को देश निकाला देकर दी। बर्मा की जेल में बादशाह ने अपनी आखिरी साँसे ली और वहीं दफनाए गए। अनेक इतिहासकारों ने यह अनुरोध रखा है कि भारत सरकार बर्मा से बादशाह ज़फर के अवशेष भारत मंगवाए और उन्हें सम्मान से यहाँ दफनाएं परन्तु अभी तक इस दिशा में कोई विशेष प्रयास नहीं किये गए हैं।

आज लगभग खण्डहर में तब्दील इस महल को मुग़ल स्थापत्य कला की एक भव्य मिसाल माना जाता था। सुन्दर मुख्यद्वार, ख़ास महल, संगमरमर और लाल पत्थरों से सजी यह इमारत मानो आज भी अपने बीते दिनों की वैभव गाथा का बयान करती है।

इस महल के भीतर तीन गुम्बदों वाली सफेद संगमरमर से बनी सुन्दर मोती मस्जिद भी है। इस महल का निर्माण अकबर द्वितीय ने करवाया था तथा भव्य प्रवेश द्वार उनके पुत्र बहादुरशाह ज़फर द्वारा बनवाया गया था।

आज यह महल मूक साक्षी है मुग़ल वैभव और भव्यता के उन बीते दिनों का जो कभी लौट कर नहीं आए।

जीत गढ़

बाड़ा हिन्दूराव से दिल्ली विश्वविद्यालय के मार्ग में जीतगढ़ स्थित है जो अंग्रेज़ों ने 1863 में, 1857 में मारे गए अपने सैनिकों की स्मृति में बनवाया था।

कुदसिया बाग़

कश्मीरी गेट के उत्तर में रिज के निचले इलाके में बना है कुदसिया बाग। 1857 की क्रांति में जब शाही सैनिकों के साथ हज़ारों दिल्ली वासियों ने अंग्रेज़ों को दौड़ा दौड़ा कर मारना शुरु किया तो जान बचाकर अंग्रेज़ अफसर इसी जंगल में छुप गए थे। बाद में जब अंग्रेज़ी फौज यहां पहुंची तब अंग्रेज़ों ने यहीं पर तोप लगाकर कश्मीरी गेट का निशाना साधा था।

इस बाग़ का निर्माण 1748 में हुआ था। नवाब कुदसिया बेगम ने इसे 1748 में यमुना के किनारे इस बाग का निर्माण कराया था। मुहम्मदशाह की बेगम होने के पहले कुदसिया एक नर्तकी थी। इस बगीचे में पहले महल होते थे यहां पर प्रवेश द्वार इस बात का पुष्टि करता है। इस द्वार को हाथी गेट के नाम से जाना जाता है। द्वार के पूर्व में एक मस्जिद बनी हुई है। बहादुर शाह द्वितीय ने 1833–34 में इस मस्जिद का जीर्णोद्धार कराया था। मस्जिद और हाथी गेट पर 1857 में शाही सेना व अंग्रेज़ों के बीच हुए युद्ध के निशान मौजूद हैं।

पीर ग़ायब

सिविल लाइन के जंगल में बनी इस खंडहर नुमा इमारत का नाम है पीर ग़ायब। इसका निर्माण फिरोज़शाह तुग़लक ने कराया था। कहते हैं कि इस जगह पर पहले एक बाबा रहते थे। एक दिन अचानक वह ग़ायब हो गए, तब से इस जगह का नाम पीर ग़ायब पड़ गया। इस इमारत के ऊपर वाले भाग में एक मज़ार है। कहते हैं कि यही पीर बाबा का मज़ार है। फिलहाल 1857 की क्रांति में जब अंग्रेज़ों को खदेड़ा गया तो कई अंग्रेज़ परिवारों ने इसी मज़ार पर आकर शरण ली और दो महीने तक यही छिपे रहे। जून के अंत में जब अंग्रेज़ों की मदद के लिए सेनाएं आ गई तो ये परिवार भी बाहर आ गए। कहते हैं कि इस खंडहर के नीचे एक कमरा है जिसका रास्ता आगरा तक जाता है। मौजूदा समय में उस रास्ते का कोई अता–पता नहीं है। कमरे का दूसरा रास्ता पीर गायब से लगभग 500 मीटर की दूरी पर बनी बावड़ी में खुलता है। इस समय इस रास्ते को खोज लिया गया है और जीर्णोद्धार का काम शुरु कर दिया गया है।

मेटकॉफ हाउस



कश्मीरी गेट बस अड्डे और मालरोड के बीच शामनाथ मार्ग व रिंगरोड के बीच चंदगीराम के अखाड़े के सामने बने इस मेटकॉफ हाउस की इमारत अंग्रेज़ी शासन में दिल्ली के विभिन्न पदों पर रहने वाले अधिकारी मेटकॉफ की है। मेटकॉफ के परिवार ने इस बंगले में लंबा वक्त गुज़ारा था। आज यहां रक्षा से जुड़े डी आरडीओ का दफ्तर है। 1857 में हुए जंग के दौरान अंग्रेज़ों ने इस इमारत पर मोर्चा बनाकर लालकिले व सलीमगढ़ के किले व यमुना पर बने एक मात्र नावों के पुल व शहर के अन्य ठिकानों पर गोलाबारी की थी। इसके पहले यह इलाका बहादुरशाह ज़फर की शाही सेना के कब्ज़े में था।

सेंट जेम्स चर्च

इस चर्च का निर्माण कर्नल स्किनर नाम के एक फौजी अफसर ने करवाया था। उस समय इस चर्च के निर्माण में लगभग एक लाख का ख़र्च आया था। इस चर्च में कर्नल स्किनर और उसके परिवार के सदस्यों की कब्रें भी बनी हुई हैं। 1857 में अंग्रेज़ी और शाही फौजी के बीच सबसे भंयकर लड़ाई इसी चर्च के पास हुई थी। उस लड़ाई के निशान अभी भी चर्च परिसर में मौजूद हैं। उस समय चर्च के सामने घनी आबादी और आसपास बाज़ार थे। शाही फौजों ने यहां सैकड़ों अंग्रेज़ों को मार गिराया। लंबे समय तक इस जगह पर हुई लड़ाई में हज़ारों लोग मारे गए। इस क्षेत्र में रहने वाले लोगों को भारी कीमत चुकानी पड़ी। इन बाज़ारों और बस्तियों में ऐसा कोई घर व दुकान नहीं बची थी, जिसे 1857 में अंग्रेज़ों व उनके मददगार राजाओं व नवाबों के फौजियों ने लूटा या जलाया न हो।

Bara Hindu Rao:

The hospital on the Rani Jhansi road was originally called the Hindu Rao House, the British Army headquarters during the Mutiny. Built by William Fraser, the house was later bought by a Maratha, Hindu Rao. A Baoli (water body) here was the only source of drinking water for the British forces. Afraid that the sepoys might poison the water, an officer Major Kerrines ordered a guard to be posted here permanently.

Nicholson's Fall:

The British troops entered the city but were tired by the time they reached the Kabul Gate. To enthuse his men, Nicholson turned and raised an arm to beckon them, but was shot by an Indian sepoy from above. Surprisingly, there's the odd tourist wanting to visit the grave. "I've come looking for some graves after reading William Dalrymple's White Mughals," says Peter Ervin from Scotland. He's lucky to have found it.



Khooni Darwaza:

A monument on the Bahadur Shah Zafar Marg is the place where the sons of the last Mughal King, Bahadur Shah Zafar, were killed by the British Intelligence Officer William Hodson. The King was in Nizamuddin, from where he was captured and exiled to Rangoon.

Jeetgrah:

On the road from the Bara Hindu Roa Hospital to Delhi University exists Jeetgrah. The memorial was built in 1863 by the Britishers "in the memory of the soldiers of the Delhi Field Force who were killed in 1857".

Kudesia Bagh

It is located in the north of Kashmere Gate in the lower ridge area. When the rebels of 1857 went on a killing spree it was here that many British officers took refuge to escape the wrath of the masses, later when the British army reached Delhi, they fired cannons at Kashmere Gate from here only.



Nawab Kudesia Begum, wife of Muhammadshah, built this garden in 1748. It also houses a palace inside it as is evident by the entry gate, which is known as Hathi Gate. A mosque is also there to the east of the gate. Bahadurshah II renovated this bagh in 1833-34. The mosque and the Hathi Gate here, still bear the scars of battle between the royal forces and the British army in 1857.

Pir Ghayab

A ruined building near the jungle at Civil Lines is known as Pir Ghayab, the abode of a Pir, a muslim saint. It was built by Ferozeshah Tuglaq and it is said that the Pir used to live here. One day he disappeared suddenly and ever since the building is known as Pir Ghayab meaning the Saint Vanishes. There is a tomb in the upper portion of the



building, said to be the mazaar of Pir Baba. During the war of 1857, when the British were running helter-skelter for their lives, many British families took refuge in this building for almost two months. It was only when the British troops arrived in Delhi, that these families came out of hiding. It is said that this building had a room in the basement through which there was a secret passage going up to Agra. But today there is no trace of that room. There is another road leading from Pir Ghayab to a water storage tank, Bawadi about 500 metres from the building. At present renovation and rebuilding work has been taken up at Pir Ghayab.

MetCalfe House

It is situated in the middle of Shamnath Marg and Ring Road opposite the Chandgiram Akhada. It was the residence of T.T. Metcalfe who served under many posts in the British administration of Delhi. The Metcalfe family resided in the bunglow for a long period. Today it houses the DRDO office of the Defence Ministry. During the war of 1857, the British used this building as a front to attack Red Fort, Salimgarh Fort, the boat bridge over Yamuna and other bastions of the city.



Earlier, this entire area was under the army of the Mughal emperor Bahadurshah Zafar.

St. James Church

This Church was built by a British army officer Colonel Skinner. In those times the expenses had been around 1 lakh rupees. This Church houses the graves of Colonel Skinner and his family. It was near this Church that the most fierce battle took place between the rebel soldiers and the British army. The Church complex still has the battle scars. At that time the Church was surrounded by highly populated areas and markets and many Europeans were killed here during this period. But the native people of this area had to pay a very heavy price once Delhi was re-captured by the British and they killed thousands of people as revenge and burnt and looted the houses and shops of the area.



दिल्ली पर विजय

दिल्ली पर विजय ने इस आन्दोलन को एक अति महत्वपूर्ण राजनैतिक आधार दिया, अन्यथा इसे केवल एक स्थानीय विद्रोह का दर्जा ही मिल पाता। अंग्रेज़ इतिहासकारों ने भी यह स्वीकार किया है कि विद्रोहियों ने दिल्ली को केन्द्र बनाकर वास्तव में ''संचालन का एक महान् केन्द्र, जिसमें युद्ध की सभी सामग्री मौजूद थी, एक मज़बूत किलाबन्द शहर, एक समृद्ध, लाजवाब शहर, अंग्रेज़ ख़ज़ाना तथा शक्तिशाली बारुदी अस्त्रागार से युक्त जगह चुनी थी जहां से वे देशभर में विद्रोह का संचालन कर सकते थे।'' हर तरह से दिल्ली पर विद्रोहियों की विजय इस क्रांति का एक बहुत महत्वपूर्ण पक्ष था जिसने वास्तव में अंग्रेज़ों पर बहुत दबाव डाल दिया था।



Conquest of Delhi

Its conquest imparted a political significance to a movement which might otherwise have been regarded as little more than a local outburst. Even the British historians admitted that the rebels had selected "a grand center of operation, well stored with every munition of war, a first class arsenal; a city fortified, rich in native wealth, and splendour, containing one of the largest treasuries of the British and powder magazine of enormous magnitude... (and an) inimical Mohammedan population." Strategically also, the seizure of Delhi was a masterstroke. Here the relieving English forces would be hemmed in and cut off from their base and would have to disappear, handicapped as they were by the sheer absence of means of replacing the losses. It thus fixed the vital struggle at a site where the large body of English troops in India could be most easily dealt with.

विद्रोह की पहुंच तथा नेतृत्व

विद्रोह जो 10 मई 1857 में मेरठ छावनी से आरम्भ हुआ, जंगल की आग की तरह फैल गया। बग़ावत के पहले सप्ताह में ही भारत के ऊपरी क्षेत्र में विदेशी साम्राज्य लगभग समाप्त हो गया। बंगाल और पंजाब की सीमाओं के बीच के क्षेत्रों में अंग्रेज़ी आधिपत्य केवल आगरा तथा गिनी चुनी जगहों पर ही बच गया था। लोवे लिखते हैं ''इस समय भारत में रहना ज्वालामुखी के कगार पर रहने के समान था जहां हमारे पैरों के नीचे से ज़मीन खिसक रही थी और गरम लावा हमें निगलने को तैयार था।'' भारत के अनेक क्षेत्रों में हल तलवारों का रुप ले रहे थे।



कर्नल जी.बी. मैलेसन के अनुसार फैज़ाबाद के मौलवी अहमदुल्ला शाह ''निश्चय ही विद्रोह के एक नेता थे'' और यह तो तय ही है कि नानासाहब तथा अन्य अनेक भी इस विद्रोह के आरम्भिक संगठन दौर से ही इसका नेतृत्व कर रहे थे। इनके अतिरिक्त इस ऐतिहासिक विद्रोह के महत्वपूर्ण नेता थे बिहार के कुंवर सिंह, बख़्त ख़ान, अली नकी ख़ान, रंगो बापूजी, तौंत्या टोपे, तथा झांसी की रानी लक्ष्मीबाई।



मेरठ से विद्रोही जत्था दिल्ली पहुंचा और बिना किसी बाधा के दिल्ली गेट से प्रवेश कर शहर पर कब्ज़ा स्थापित करके, मुग़ल सम्राट बहादुरशाह जफ़र को शहंशाह–ए–हिन्दुस्तान घोषित कर दिया।

अवध का प्रशासन इस बाग़ी आंधी में ताश के पत्तों की तरह ढह गया। रॉबिन्स लिखते हैं ''अंग्रेज़ी शासन केवल क्षेत्रीय राजधानी और आसपास के कुछ क्षेत्रों में रह गया था।''



रुहेलखण्ड में पूरा क्षेत्र ही बग़ावत पर उतर आया और ख़ान बहादुर ख़ान ने स्वयं को बादशाह का वाइसरॉय घोषित कर दिया।

समूचे बुन्देलखण्ड ने विदेशी शासन के विरुद्ध हथियार उठा लिये थे। दोआब क्षेत्र विद्रोह की आग में सुलग रहा था। मैकलियड इन्स लिखते हैं –''भारत के ऊपरी क्षेत्र में मानों अंग्रेज़ी शासन रहा ही नहीं, दोआब क्षेत्र में पूरा नागरिक प्रशासन हाथ से निकल चुका था, बंगाल में भी यही स्थिति थी।'' मध्य भारत के लिये लॉर्ड–कैनिंग ने लिखा: ''मेरे विचार से मध्य भारत हमारे हाथ से जा चुका है; इसे फिर से जीतना है।''



कानपुर में नाना साहब ने विद्रोहियों का 'नेतृत्व' किया। आस–पास के ग्रामीण क्षेत्रों में मराठा पंडित लोग नाना की तरफ से विद्रोह के स्वर फैला रहे थे और ग्रामवासी उनका साथ दे रहे थे। हर मन में एक ही बात थी ''यही वह समय है जब फिरंगियों के अत्याचारी शासन को उखाड़ फेंकना है।''

झांसी में वीरांगना रानी लक्ष्मीबाई ने बग़ावत की बागडोर संभाली और निर्भीकता से अंगेज़ों का सामना किया।



पटना में वहाबियों तथा बनारस में ब्राह्मणों ने विद्रोह की ज्वाला को भड़काने का काम किया।

अनाज के बढ़ते दाम और बढ़ती ग़रीबी के लिये अंग्रेज़ शासन के विरुद्ध इलाहाबाद भी खड़ा हो गया।

बिहार में तो कॉर्नवालिस का परमानेन्ट सेटलमेन्ट मानो अदृश्य ही हो गया।

इस क्रांति में अधिकतर तो यह हुआ कि सिपाहियों के विद्रोह के बाद ही या कहें तो साथ साथ देश का जनमानस भी उठ खड़ा होता था, परन्तु कई स्थानों में ऐसा भी हुआ कि लोगों ने सिपाहियों से पहले विद्रोह छेड़ दिया। मार्क थनहिल विद्रोह के विषय में लिखते हैं ''जब भी बग़ावत शुरु होती थी सरकारी ख़ज़ाने लूट लिये जाते थे, अस्त्रागार से हथियार ले लिये जाते थे, छावनी और कचहरियां जला दी जाती थीं, कारावास के दरवाज़े खोल दिये जाते थे। सरकारी रिकार्ड भी बनियों की किताबों की तरह नष्ट कर दिये जाते थे क्योंकि वे शोषण के प्रतीक थे। लोगों के लिये यही सब वह साधन थे जिनसे हम उनपर भारी–भरकम कर लगाते थे। उनपर शासन करते थे। ज़मीन से बेदख़ल ज़मींदार वर्ग भी विद्रोह में उठ खड़े हुए क्योंकि उनकी पैतृक सम्पत्ति छीनकर मुख़बिरों और अंग्रेज़ भक्तों में बांट दी गई थी। निर्धन किसानों ने शोषण करने वाले बनियों को घेर कर मार डाला, क्योंकि यह सब अत्याचारी शासक वर्ग के प्रतिनिधि थे। व्यापारियों को भी अपने प्राण और सामान बचाने के लिये विद्रोहियों का साथ देना पड़ता था।''

The Extent and the Leaders of the Uprising

The revolt, which began in Meerut on 10 May 1857, spread like wildfire. Within a week of the breaking out of the rebellion the English empire in upper India had all but disappeared. Between the frontiers of Bengal and Punjab, English authority was acknowledged only for a few miles around Agra, and in some other isolated spots where there happened to be English regiments. "To live in India now," wrote Lowe, "was like standing on the verge of volcanic craters, the sides of which were fast crumbling away from our feet, while the boiling lava was ready to erupt and consume us." Every ploughshare in upper India was being turned into a sword.



According to Colonel G.B. Malleson, Moulavi Ahmadullah Shah of Fyzabad was "undoubtedly a leader of the conspiracy' and this cannot be denied. But it cannot also be denied that Nana Sahib and many others were leaders too. About Nana Sahib, Kaye remarked that "there is nothing in my mind more substantiated than the complicity of Nana Sahib in widespread intrigues before the outbreak of the Mutiny. The concurrent testimony of witnesses examined in parts of the country, widely distinct from each other, takes his story altogether out of conjectural." Besides, Kunwar Singh of Bihar, Azimullah, Bakht Khan, Ali Naqi Khan, Rango Bapuji, Tatya Tope, and Rani Lakshmi Bai of Jhansi were acknowledged leaders of the rebels.

The Meerut rebels rushed to Delhi, the age-old capital of India. They entered it through Delhi Gate, without any serious opposition, besieged the last Moghul, Bahadur Shah "Zafar" and proclaimed him the Shahenshah-e-Hindustan. The administration of Oudh fell like a house of cards. British authority was merely confined to the provincial capital and its neighbourhood, writes Gubbins. In Rohilkhand, the whole countryside was in rebellion. Khan Bahadur Khan proclaimed himself the Viceroy of the Emperor of India. Nearly all Bundelkhand was up in arms against the British. The entire Doab was in the throes of revolution. McLeod Innes observed that "there was forthwith a cessation of Pax Britannica, and the entire disorganization of the civil administration in the upper provinces, i.e., the plains watered by the Ganges and the Jamuna, down to the Bengal proper." Of Central India, Canning wrote, "I look upon Central India as gone; and to be reconquered.'

In Kanpur, Nana Sahib "led" the rebels. The villagers of the neighborhood, exhorted by the Mahratta Pundits, who were preaching a crusade on behalf of the Nana, were arrayed with rebels. A single thought ran through every mind in the area—"now or never was the time to shake off the oppression of the strangers." In Jhansi, Lakshmi Bai "raised the banner of revolt." The fanatical influence of the Wahabis in Patna and of the Brahmins in Banaras made these two cities formidable. The high price of food grains and other provisions, which was always attributed to British rule, came in handy as justification and propaganda to the rebels of Allahabad. In Bihar, the Permanent Settlement vanished like a dream.

Generally, the revolt of the sepoys was followed or accompanied by a rebellion in the city and the countryside. But in several places the people rose in revolt before the sepoys. Mark Thurnhill in his account of the uprising records that "Wherever revolt broke out, the government treasury was plundered, the magazine was sacked, barracks and court houses were burnt and prison gates were flung open. The rebels "everywhere displayed towards the government records the same animosity as they did to the account books of the Bannias and for a similar reason. They regarded them as machinery by which we enforced our severe taxation and maintained that disciplined order which had become so distasteful to them." They, therefore, destroyed the government's records and condemned the bannias' account books to the same fate. "Dispossessed landowners, clutching at the opportunity for which they had long awaited, gathered their tenants together, hunted out the purse-proud upstarts, who had bought up their estates, and triumphantly established themselves in their ancestral homes. Insolent debtors mobbed and slaughtered... the Bannias, whose extortions they would have punished before but for the dread of the strong arm of law." Traders were forced to help the rebels to save themselves.



क्रांति का विस्तार क्षेत्र

कहां तक फैली थी यह क्रांति? अनेक अंग्रेज़ इतिहासकारों के लेखों में हमें इसकी व्यापकता का पता चलता है। रेवरेन्ड एलक्ज़ेन्डर डफ, चार्ल्स बेल तथा कर्नल जी.बी. मैलेसन ने भी इस विद्रोह पर विस्तार से लिखा है। केय स्वीकार करते है कि गंगा–जमुनी दोआब क्षेत्र में ''दोनों धर्मों का शायद ही कोई व्यक्ति था जो हमारे ख़िलाफ नहीं खड़ा था।''

मैलेसन यह भी बताते हैं कि अवध, रुहेलखण्ड, बुन्देलखण्ड, सागर और नर्मदा के उत्तरी ज़िलों में ''अधिकतर लोग अंग्रेज़ी शासन के विरुद्ध उठ खड़े हुए थे।''

Spread of the uprising

How widespread was the revolt? There are generous accounts left behind by the Reverend Alexander Duff, Charles Ball, and even Sir John William Kaye and Colonel G.B. Malleson, who otherwise termed it a "sepoy mutiny". Kaye admits that in the areas between the rivers Ganges and Jamuna " there was scarcely a man of either faith who was not arrayed against us."

Malleson also states that in four northern provinces-Oudh, Rohilhkhand, Bundelkhand, and Saugar and Narbada-"the great bulk of the people rose against the British rule."



हरियाणा में बग़ावत

उस समय अंबाला बहुत बड़ी सैनिक छावनी था। मेरठ से नौ घंटे पूर्व अंबाला के सिपाहियों ने मई 1857 को खुला विद्रोह कर दिया था। अंग्रेज़ अफसर समझाने गए, तो सिपाहियों ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया लेकिन ज्योंही वे अपनी मंजिल की तरफ बढ़े भेदिए की 'कृपा' से उन्होंने अपने आपको चारों तरफ से प्रबल अंग्रेज़ी सेना से घिरा पाया। फलतः बग़ावत का पहला कदम रूक गया। लेकिन दूसरा कदम नहीं रूका। 13 मई को दिल्ली से कुछ सिपाही गुड़गांव पहुंचे। देखते ही देखते सब तरफ विद्रोह की आग भड़क उठी। लोगों ने डिप्टी कमिश्नर फोर्ड और उसके संगी–साथी व सैनिक दस्तों को पीटकर भगा दिया। गुड़गांव के आसपास के सभी राजा–नवाब –फरूखनगर, पटौदी, बल्लभगढ़ आदि–भी विद्रोह पर उतर आए। खाड़ी के राव तुलाराम के नेतृत्व में आहीरवाल कहलाने वाला पूरा क्षेत्र खड़ा हो गया। उधर, सोहन– नूह–फिरोज़पुर का मेवात कहलाने वाला इलाका धधक उठा। बहादुर मेव (मेवात के बाशिंदे) सिर पर कफन बांधकर हज़ारों की तादाद में युद्ध के मैदान में कूद पड़े यहां राजा–नवाब नहीं थे। स्थानीय 'सरदारों' ने लोगों का नेतृत्व किया। इन सरदारों में सरफुद्दीन मेवाती सबसे कद्दावर था। गुड़गांव के सहायक कमिश्नर कलिफर्ड ने यहां बड़े जुल्म किए थें। उसका रायसीना के पास कत्ल कर दिया गया। इसकी गूंज अब तक लोकगीत में सुनाई देती हैं, 'रायसीना के मेव को बड़ो जगायो दिन, गौरा मारे डेढ़ सौ कुर्सी खाली कर दिन।' रोहतक और हिसार जिले में क्रांति का संदेश जंगल की आग की तरह फैल गया। लोगों ने देखते ही देखते अंग्रेज़ी राज के चिह्न मिटा डाले। हिसार और हांसी में हरियाणा लाइट इंफेंटरी के सैनिकों ने आम जनता से मिलकर अंग्रेज़ों का कत्ल कर दिया। सिरसा में कुछ 'भलेमानस' अंग्रेज़ थे, उनकी जान बख्श दी गई। मुहम्मद अज़िम ने वहां लोगों का नेतृत्व किया।



1857 Revolt in Haryana

Ambala was a very big army cantonment during this period. The soldiers at Ambala had rebelled almost nine hours prior to the revolt at Meerut but were betrayed by their own people and the first phase of their revolt was suppressed by the British army, but the spirit of the revolt had spread like wildfire all over the region. On May 13, some soldiers from Delhi reached Gurgaon and the revolt broke out once again in the entire area. Ford, the Deputy Commissioner of the area and his people, the army units were all beaten up by the angry mob and forced to flee from there. All the Rajahs and Nawabs of nearby regions. Farrukhnagar, Pataudi, Ballabhgarh etc. rebelled against the British. The entire Ahirwal region under Rao Tularam rose in revolt and the British were hounded out of these areas. The brave Mewats jumped into the revolt fearlessly led by local chieftains as these armies had no rulers in this Sohan-nooh-Ferozepur region as Mewati. Among the local chief Sarfuddin Mewat was the strongest, who led his people against the British bravely. The Assistant Commissioner of Gurgaon was a very cruel officer and he was killed near Raisina by the rebels. The folk music of the region till today celebrates this brave act – "The brave Mewatis killed one hundred and fifty Britishers and vacated their chairs". The districts of Rohtak and Hissar saw fierce fighting between the British and the rebels in which the rebels destroyed almost all the symbols of British rule. The soldiers of Hissar and Hansi's Haryana light infantry, along with the local people massacred many Britishers. In Sirsa – there were some good Englilshmen whose lives were spared. Muhammad Azim was the leader of this area.



हडसन की विफलता

दिल्ली के इतने समीप प्रचंड आग को बुझाना आवश्यक समझकर अगस्त के महीने में दिल्ली का घेरा डाले अंग्रेज़ सैन्य अधिकारियों ने अपने सबसे चुस्त और ज़ालिम अफसर कप्तान हडसन को इन जिलों को ठीक करने के लिए भेजा। हडसन ने सबसे पहले रोहतक पर आक्रमण किया। स्थानीय लोग बड़ी बहादुरी से लड़े। हडसन न तो शहर में घुस पाया और न ही शहर के चारों तरफ विद्रोहियों के घूमते फिरते दस्तों को खत्म कर सका। वह नाकाम होकर दिल्ली लौट आया।



The failure of Hudson

The British officers realized the danger of this violent situation so near Delhi and sent their most cruel and efficient officer Captain Hudson to enforce law and order in these Haryana districts. Hudson attacked Rohtak first, but the local people fought so bravely that he could neither enter Rohtak nor control the mobs of rebels roaming around the entire region. Failing in his mission, he returned to Delhi.



महान् जन विद्रोह

पंजाब की आम जनता ने विद्रोह में पूरा हिस्सा लिया। कई जगह जहां सेना नहीं थी वहां वे अकेले ही खड़े हो गए। गोगिरा का जन विद्रोह इस मामले में एक शानदार मिसाल था। उत्तर पश्चिम के पहाड़ी कबीलों का यह जिला बड़े क्रांतिकारी भावों से ओतप्रोत था। यहां के भोले–भाले लोगों को यह पता भी नहीं था कि वे दिल्ली के बादशाह के झंडे के नीचे खड़े होकर फिरंगी से भिड़ गए। जॉन लारेंस लिखते है कि इनकी संख्या कोई सवा लाख के करीब होगी। इनका युद्ध तब शुरू हुआ, जब दिल्ली गिर चुकी थी। फिर भी ये लंबे अर्से तक लड़ते रहे। अंग्रेज़ लेखक कहते हैं कि ये अजीब लोग थे। हमारी तोपों के गोले पड़ रहे थे और ये ढोल बजाकर नाचते हुए गिरते, पड़ते मरते आगे बढ़ते जाते थे। और लोगों की तरह ये लोग भी अंततः हार गए, पर दुनिया के बहादुर क्रांतिकारियों की सूची में अपना नाम अंकित करवा गए।



A great rebellion by People

The common people of Punjab participated with all their strength in the great uprising of 1857. In many places, even though there was no army in the region, the people faced the British might fearlessly. The Gogira region revolt was a unique example of such bravery of the common people. This district located in the north-west-hilly region was inhabited by simple tribals of great bravery. These fearless tribals continued to fight the British long after Delhi was recaptured by the British. English historians say while writing about them that "they were strange people, even while facing our cannons, they used to fight valiantly, die valiantly." Like other they too were over - powered by the British, but wrote their names in golden letters in the list of brave revolutionaries.



ठिकाने और भी थे

पानीपत और करनाल जिले में बहादुर रांघड़, गूजर जाट आदि खूब लड़े। अंग्रेज़ी राज के सब चिह्न मिटाकर इन लोगो ने अपनी हुकूमत कायम कर ली। पानीपत की मशहूर बुअली शाह कलंदर की दरगाह के इमाम ने इनका खूब उत्साह बढ़ाया। पंजाब गवर्नमेंट रिकार्ड्स में ताजुद्दीन नाम के एक आदमी के साक्ष्य के अनुसार ब्रिटिश प्रधान सेनापति जनरल ऐंसन को करनाल में बाग़ियों ने मार दिया था,। सरकारी विज्ञप्ति में उनकी मौत का कारण हैजा बताया जाता है। एक–एक गांव ने वहां अंग्रेज़ी सेनाओं का डटकर मुकाबला किया। थानेसर और अंबाला में भी विद्रोह हुए, परंतु पटियाला, नाभा और जींद की सेनाओं की मदद से उन्हें दबा दिया गया। रोपड़ के एक सरदार मो हर सिंह ने खूब लड़ाई लड़ी। लेकिन अंग्रेज़ी लाव–लश्कर के सामने वह नहीं टिक पाया, पकड़ा गया और फांसी पर चढ़ा दिया गया। कमिश्नर फोरसिथ लिखते हैं कि 'उत्तर भारत में फांसी पाने वाला यह पहला सिख आदमी था।





Other places of revolt in Haryana

The Panipat and Karnal region also saw lot of activity on the part of the rebels. The Gujars, Jats fought the British bravely and destroyed all symbols of British rule from these areas. The Imam of Panipat's famous dargah encouraged the rebels all along. The British commander-in-chief of the army general Enson was killed by the rebels in Karnal, but the Punjab Government records show cholera as the reason of his death. Each and every village of the region fought fiercely with the British army. Thanesar and Ambala revolts were suppressed by the help of the forces of the princely states of Patiala, Nabha and Jind. In Ropar Sirdar Mohar Singh fought the British bravely but was captured and hanged by the British. Commissioner Forsyth records that "he was the first Sikh to be hanged in the northern part of India."

The British recaptured Delhi on 20 September 1857, but this had no particular effect on the nearby regions of Haryana. The British had to try very hard to suppress the revolt in Haryana, and the people fought valiantly against the British armies. About 80 villages in the region were destroyed. Gradually the British succeeded in subjugating Haryana but history will always remember the brave people of Haryana who gave the British a very hard time during the great uprising of 1857.

स्वाधीनता की लड़ाई

हर धर्म, हर वर्ग, हर जाति के लोग इस तरह अपनी जान की परवाह किए बिना तभी लड़ पाते हैं जब उनका उद्देश्य बहुत बड़ा हो। क्या उद्देश्य था हमारे इन जुझारू लोगों का ? ए.एच.लिंड नाम के एक स्वीडिश अफसर जो 1857 में अंग्रेज़ों के लिए लड़े थे, उन्होंने देखा कि अंग्रेज़ 1857 की कहानी बड़ी ही बेईमानी के साथ कह रहे हैं, तो उन्होंने सत्य को उजागर करने के लिए लिखा है कि "यह गलत है कि हिंदुस्तानी तुच्छ स्वार्थों के लिए लड़ रहे थे। वे सर्वोच्च मूल्यों के लिए लड़ रहे थे और वे मूल्य थे अपने देश के प्रति प्रेम व स्वतंत्रता की भावना।"



The War of Independence



People from all religions, caste and creed fight fearlessly and selflessly only when their cause is very strong, what was the cause, which united our dauntless countrymen? A Swedish officer A.H. Lind, who was fighting for the British in 1857, saw that the British were suppressing the facts regarding 1857 events and he went on record to bring out the truth that "it is wrong to say that the Indians were fighting for selfish motives. In fact they were fighting for the highest values of love and independence of their country."

Some myths about Sikh participation in 1857

Some people question the Sikh participation in the great uprising and a lot of misconceptions regarding this abound that the Sikhs sided with the British. It is true that some Sikh princely states did side with the alien rulers, but not the ordinary Sikh. He was the staunch enemy of the British and fought valiantly with them wherever possible.

पंजाब में भी चली तलवारें

इतिहासकारों में सबसे बड़ी गलतफहमी पंजाब को लेकर है। क्रांति के दौरान पंजाब का चीफ कमिश्नर जॉन लारेंस था। उसने 1849 से 1857 के बीच वहाँ के लोगो के हित में रत्ती भर भी काम नहीं किया। उसका सारा ध्यान अपने साम्राज्यिक स्वार्थो को साधने पर था। इस समय लोगों पर भारी जुल्म हुए, आर्थिक शोषण हुआ, सांस्कृतिक पतन के घिनौने अध्याय लिखे गऐ और ऊपर से घोषणा यह होती रही कि 'पंजाब भारत का सबसे अच्छा प्रशासित प्रदेश है। यहां के लोग सरकार से बेहद खुश हैं। यहां सब तरफ अमन–चैन है।' जॉन लारेंस ने दुनिया का सबसे बड़ा 'मिथक' गढ़ डाला –'कृतज्ञ पंजाबी, ख़ासकर सिख बग़ावत के दौरान हमारे साथ रहा पंजाब शांत था।' अंग्रेज़ अधिकारी लारेंस के झूठे प्रचार से 1857 में बख़ूबी वाकिफ थे। लार्ड डलहौज़ी वस्तुस्थिति जानता था और वह सदैव अपने सेनापति जनरल नेपियर को चेतावनी देता रहता था, पंजाब को देखते रहो कभी भी बग़ावत हो सकती है।' नेपियर भी अपने आका को आश्वस्त करता रहता था, 'घबराएं नहीं मैने पंजाब में, खासकर माझा (जहां सिखों की अधिक बस्तियां हैं) के चारों तरफ खूब फौजें डाल रखी हैं। ये फौजें दो बेहतरीन जनरलों के तहत हैं।'



1857 में पंजाब में बंगाल आर्मी की सेना 45 प्रतिशत से ऊपर थी। यूरोपीय सेना की 60 प्रतिशत मौजूदगी यहां थी। सिख युद्धों के बाद सिखों के सब जाने–माने नेता या तो जेलों में थे या पंजाब से बाहर। आम जनता को निःशस्त्र कर दिया गया था। मुसलमानों पर खासकर उत्तर पश्चिमी क्षेत्र में, विशेष पैनी नजर रखी जाती थी। हर पुल, सड़कों के नाकों, नदियों के घाटों आदि पर चौकस पहरा रहता था। लेकिन ज्योंही बगावत का पहला झोंका पंजाब में पहुंचा, उनके बचाव के सब हथियार विफल हो गऐ। सब तरफ हलचल मच गई। इतिहासकार जे.डब्ल्यु. के मानते हैं, 'हमारी दशा बड़ी ही चिंताजनक थी।'

फिरोज़पुर, जालंधर, अंबाला, फिल्लौर, झेलम, सियालकोट, लाहौर, पेशावर, होती, मर्दान और मियांवाली में बगावत फूट पड़ी।(इनमें से कुछ स्थान अब पाकिस्तान में हैं) अंग्रेज़ी राज के सब चिह्न मिटा दिए गए। लेकिन क्या यह सब पुरबिये सिपाहियों द्वारा हुआ ? नहीं। इन विद्रोहों में सब शामिल थे –पुरबिये व पंजाबी और हिंदू, मुसलमान व सिख। सबका ध्येय एक था –फिरंगी को भगाओ और दीन, धर्म व देश बचाओ। इन विद्रोहों में एक और बात नज़र आती है। सिपाही हर जगह स्थानीय आम जनता को साथ लेकर बगावत करते हैं। यदि कहीं कोई ऐसा नहीं करता, तो वह विफल रहता हैं। अंबाला लाहौर और गोविंदगढ़ में ऐसा हुआ। वहां विद्रोह असफल रहा। जहां ऐसा नहीं हुआ, वहां विद्रोह सफल रहे। इससे यह आम धारणा भी गलत साबित होती है कि यह विद्रोह 'सिपाही' विद्रोह था। कम से कम पंजाब में तो ऐसा नहीं था। जहां भी विद्रोह हुए उसमें हर धर्म व वर्ग ने बराबर हिस्सा लिया। यहां तक कि छोटी जाति के कहे जाने वाले गरीब 'तिरस्कृत लोगों ने भी इस यज्ञ में अपनी आहुति डाली। जब दिल्ली को पुनः फतह करने के लिए पंजाब से चली अंग्रेज़ी 'सीज ट्रेन' जगरांव पहुंची तो यहां के सांसी, हरमी, बावरिया आदि जातियों के लोग पुलिस की रोक के बावजूद भागकर दिल्ली गए और बागियों को सीज ट्रेन में कितनी तोपें हैं, क्या असलहा है, यह जानकारी दी। बहुत जगह तो वह वर्ग भी विद्रोह में शामिल हुए या विद्रोहियों के प्रति सहानुभूति दिखाई, जो अंग्रेज़ी शासन से फायदा उठा रहे थे।



Punjab in 1857

Historians suffer from a lot of misconceptions about Punjab in 1857. According to this it was a quiet region during this period but it is far from truth. The Chief Commissioner of Punjab between 1849 to 1857 was John Lawrence and his tenure saw great economic exploitation, cultural degeneration of the region along with the spreading of false information about 'Punjab being a well-administered and loyal state where there is peace and prosperity due to British rule.' He also created the biggest myth that the "grateful Punjabi, particularly the Sikh community is with us during the revolt and Punjab is quiet and unaffected by 1857 events."



The British officers, nevertheless, were wary of John Lawerence's antics and kept warning their Commander General that the revolt could erupt at anytime in Punjab. Napier kept on assuring the authorities that the region of Punjab was well protected with the army under two very efficient generals.



The Bengal Army's 45 percent and 60 percent of the European army was stationed in Punjab in 1857. All the known Sikh leaders of the region were either imprisoned or in exile. The common man was rendered armless; the muslim population especially in the north-western regions was under scrutiny; the roads, bridges and the river banks had very high security around them. But the moment the revolt erupted, British security system went haywire. The entire region became turbulent. Historian J.W. Kaye admits that "Our situation was highly critical."



Ferozepur, Jalandhar, Ambala, Jhelum, Sialkot, Lahore, Peshawar, Mardan, Mianwali and many other places in Punjab erupted in flames of rebellion against British rule. People of all religions Hindu, Muslims, Sikh were together in this battle and shared the common aim of "driving away the Firangi and save our religion and country". Another important aspect of rebellion was the coming together of the soldiers and the common man to fight the enemy. Wherever it did not happen, the revolt failed, like in Ambala, Lahore and Govindgarh. People from all sections of the society joined hands in the rebellion of 1857. Even the lower caste tribes of Sansi, Harmi, Bawarias gave the rebels in Delhi the information about the siege trains of British forces. In many places rebels were supported by even the classes of people who were beneficiaries of the British rule. The spirit of revolt brought the nation together and laid the foundations of India's independence.



1857 की क्रांति में ऐतिहासिक गांव मालचा भी शामिल था

1857 में बहादुरशाह ज़फर के राज में अंग्रेज़ों के द्वारा लाल किला घेरा जा रहा था, तब मालचा गांव समूह ने ही बहादुरशाह ज़फर को पगड़ी बांधी थी कि हम 360 गांवों की पंचायत आपको सभी तरह के संघर्ष में सहयोग देंगे।

मई – जून 1857 में गांव मालचा की महिलाओं द्वारा ही सौंझी–रोटी की रसोई लुक–छुप कर रात को बनाई व खिलाई जाती थी विद्रोहियों को। समस्त बिरादरी की महिलाओ ने ही बख़ूबी रसोई की जिम्मेदारियाँ निभाई। विद्रोह में सहयोग के कारण अंग्रेज़ों द्वारा गांव के पुरूषों और संघर्षशील महिलाओं तक को वृक्ष पर टांग कर फांसी दी गई थी।

मोदीनगर : जान दे दी पर नहीं झुके फिरंगियों के आगे

1857 के गदर में मोदीनगर तहसील के आधा दर्जन से भी अधिक गांवों ने बढ़–चढ़कर हिस्सा लिया। फलस्वरुप अंग्रेज़ों ने इन गांवों को बाग़ी करार देकर अनेक लोगों को पेड़ से लटकाकर फांसी दे दी पर गांव के लोग नहीं झुके।

सरकारी दस्तावेज़ इस बात के गवाह हैं कि भनैडा, कुम्हैडा, खिपोंडा, ग्यासपुर, सुहाना तथा सीकरी खुर्द गांवों के लोगों ने जंग–ए–आज़ादी में भारतीय सैनिकों की हरसंभव मदद की। इन गांवों के अनेक युवा 10 मई 1857 को भारतीय फौजियों के साथ दिल्ली के लिए कूच कर गए। अंग्रेज़ों ने जब इस जनक्रांति को कुचल दिया, तो बदला लेने के लिए उन गांवों पर कहर बरपाना शुरु किया, जिन्होंने भारतीय सैनिकों की मदद की थी। गांव के बुज़ुर्ग बताते हैं कि उन्होंने अपनी पिछली पीढ़ियों से सुना है कि अंग्रेज़ों ने उनके गांव को चारों ओर से घेरा और युवाओं को पकड़–पकड़कर गोलियों से उड़ा दिया।

अंग्रेज़ों को मौत के घाट उतारा था मोदीनगर में

1857 की जंग–ए–आज़ादी के दौरान जिस समय क्रांतिकारी दिल्ली में अंग्रेज़ों से लोहा ले रहे थे, इसी दौरान दिल्ली में सैकड़ों क्रांतिकारियों के खून से हाथ रंगने वाले अंग्रेज़ दिल्ली से मेरठ की ओर भागे। अलबत्ता मोदीनगर में क्रांतिकारियों ने इन अंग्रेज़ों को घेर लिया। भीषण संघर्ष के बाद इन अंग्रेज़ों को मौत के घाट उतार कर दिल्ली के क्रांतिवीरों की मौत का बदला ले लिया था।

दिल्ली से भागकर आने वाले कप्तान हांकी, कप्तान एलेन, कप्तान बितेज्येर और कप्तान बलंस समेत कई सैन्य अफसर अपने परिवार के साथ मेरठ जा रहे थे। ये सभी 74 वीं सैन्य टुकड़ी के साथ थे। इधर दिल्ली में क्रातिवीरों के जौहर की खबर सुनकर मेरठ और दिल्ली के बीच उबाल आ चुका था। ग्रामीण अपने–अपने घरों से बाहर निकल आए थे। जिसके हाथ में जो हथियार आया उसी के साथ अंग्रेज़ों से दो–दो हाथ करने की तैयारी में थे।

इतिहास में दर्ज पन्नों के अनुसार जब ये अंग्रेज़ कुम्हैड़ा पहुंचे तो इनके आने का पता क्रांतिवीरों को लग गया उन्होंने इन्हें घेर लिया। दोनों ओर से भीषण मुठभेड़ हुई। इसके बावजूद क्रांतिकारियों के आगे भारी सैन्य साज़ो–समान से सुसज्जित अंग्रेज़ पस्त हो गए। हिन्दुस्तानी जांबाज़ों ने दिल्ली में अपने साथी क्रांतिवीरों की हत्या का बदला अंग्रेज़ों के खून से ले लिया।

मोदीनगर में अंग्रेज़ अफसरों की हत्या की सूचना ने ब्रिटिश साम्राज्य की नींव हिला दी। जिसके बाद ही मेरठ के जनरल हैविट तथा मिस्टर ग्रीथड ने पूरे जनपद में मार्शल लॉ लागू कर दिया। उसके उपरांत अंग्रेज़ी हुकूमत ने पूरे क्षेत्र को घेर कर जो हिन्दुस्तानी जहां मिला उसे मौत के घाट उतारा। इतिहास के पन्नों में मोदीनगर का स्थान 1857 की क्रांति के लिए पूरे सम्मान के साथ लिया जाता है।

Role of the historic village Malcha in the Great Uprising of 1857

When the British were harassing Delhi and trying to capture Emperor Bahadurshah Zafar's Red fort, the people of Malcha had pledged support and solidarity to the Emperor and assured the Emperor. "We the people of 360 village panchayats pledge to support you with all our might in the struggle against the British".

The women folk of this Malcha village maintained a "sanjha-chulha" (common hearth) and fed the rebels secretly during the nights of May - June 1857.

Women from all communities performed this duty of cooking food with equal zeal. the British hanged the rebel women of this village along with their menfolk.

Modinagar: They preferred to die than bow down before the British

The Uprising of 1857 saw more than half a dozen villages of the Modinagar Tehsil, joining hands with the rebels and taking active part in the revolt against the British. As a result, the villages were declared "rebellious" and hundreds of men from this area were hanged to death as a punishment. The villages did not bow down even then. They continued to support the rebellion.



There is substantial proof in the government records that the villagers of Bhanaida, Kumhaida, Gyaspur, Suhana and Sikri Khurd helped the Indian rebels in all possible manner. Many youngsters joined the Indian warriors on May 10, 1857 and marched to Delhi with them.

After the rebellion was crushed by iron hands of the British, they started taking revenge from all the villages that had supported the uprising. Even today the village elders of this region narrate horrifying stories that they had heard from their forefathers of how the British would surround the villages, catch hold of young men and shot them dead.

Modinagar Takes Revenge

Hundreds of British sepoys while fleeing from Delhi to Meerut after killing many Indian rebels during the uprising were caught at Modinagar and killed.

Amongst them were Captain Hanki, Captain Allen, Captain Bitijyar and Captain Ballence, who belonged to the 74th Battalion of the British Army, were fleeing from Delhi towards Meerut along with their families. On the other hand, the courage and strategy with which the rebels were fighting the British Army at Delhi had emboldened and encouraged the people of neighbouring areas. The charged villagers between Delhi and Meerut, had all come out on the streets with whatever weapons they could lay their hands on.

The history books tell us that the fleeing officers were captured in Kumheda after a fierce gun battle between the untrained, weakly equipped villagers and the highly decorated army officers. The brave villagers, then killed these officers in revenge.

लाल किला भेदने के लिए बना था लोहे का पुल

यमुना पर पुराने लोहे के पुल का निर्माण लाल किला की अभेद्य सुरक्षा में सेंध लगाने के लिए किया गया था। 1857 में ईस्ट इंडिया कंपनी की सेना में भारतीय सिपाहियों का विद्रोह स्वतः स्फूर्त था या सुनियोजित–यह बहस का विषय हो सकता है लेकिन हिंदुस्तान पर सत्ता के प्रतीक स्वरुप लाल किला पर कब्ज़ा और उसकी अभेद्य दुर्ग संकल्पना निर्विवाद थी। अत्याधुनिक हथियारों से लैस अंग्रेजों को किले पर कब्ज़ा करने में नाकों चने चबाने पड़े थे। भविष्य में ऐसे किसी विद्रोह की आशंका को देखते हुए बीचों बीच रेलवे लाइन बिछा कर किले को भेद दिया गया।



मेरठ से आए सिपाहियों का विशाल दस्ता यमुना को पार कर दिल्ली पहुँचा। सामने जो आया उसमें आग लगाकर तबाह कर दिया। सिपाहियों ने दिल्ली पर कब्ज़ा कर बहादुर शाह ज़फर को हिन्दुस्तान का सम्राट घोषित कर दिया। हालांकि अंग्रेजों ने लाल किले के साम्राज्य को जल्द ही कुचल दिया और बहादुर शाह को रंगून भेज दिया। इस क्रांति से भारत आज़ाद नहीं हो सका लेकिन हिंदुस्तान की सत्ता ईस्ट इंडिया कंपनी से ब्रितानिया हुकूमत के अधीन हो गई। अंग्रेज अब पहले से अधिक सर्तक हो गए। वे कम से कम दिल्ली में 1857 जैसी हालात नहीं पैदा होने देने चाहते थे। इसके लिए उन कमियों की ओर ध्यान दिया गया जो 1857 तक थी। इसमें सबसे बड़ी कमी थी दिल्ली का दूसरे राज्यों से कटा होना। अंग्रेजों ने अभेद्य लाल किले को भेदने और दिल्ली तक सेना की आसान पहुँच के लिए यमुना नदी पर एक रेलवे पुल बनाने की योजना क्रांति के दो साल बाद सन 1859 में बनाई। पुल का निर्माण सन् 1866 में पूरा हुआ। इसका निर्माण ईस्ट इंडिया कंपनी ने 16 लाख 16 हज़ार पाउंड की राशि से किया। शुरुआत में यह एकहरा रेलवे पुल हुआ करता था जो बाद में दूसरे रेलवे पुल में बदल गया और इस पर सड़क मार्ग की व्यवस्था भी की गई। 2640 फुट लंबे इस लोहे के पुल के माध्यम से अंग्रेजों ने न केवल अंग्रेजी सेना के लिए दिल्ली पहुँचने का त्वरित मार्ग मुहैया कराया बल्कि लाल किले के बीच से रेलवे लाइन गुज़ार कर उसकी सुरक्षा में सेंध भी लगा दी। डीयू में इतिहास के पूर्व प्रो. सुभाष चक्रवर्ती का कहना है कि अंग्रेजों ने 1857 की क्रांति से सबक लेते हुए लोहे के पुल का निर्माण शुरु किया ताकि सेना का आवागमन आसान हो सके। दिल्ली केंद्र होने के कारण इसकी सुरक्षा के लिए यहां सेना की छावनी की व्यवस्था भी अंग्रेजों ने ही की थी।

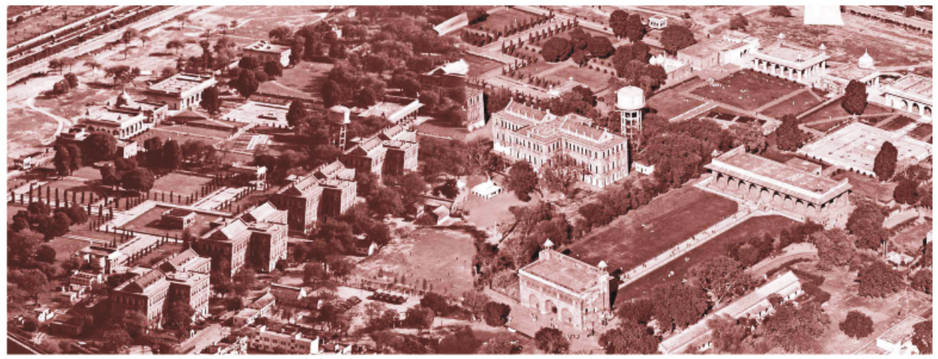


The Iron Bridge was made to help British enter the Red Fort

The British got this bridge made specially to help them enter the Red Fort. The Railway line was prepared to have full control over the area. The revolt of 1857 taught the British many harsh lessons and one such lesson was to destroy the invincibility of the Red Fort, which had become the national symbol of unity in 1857.

The revolt of 1857 had Delhi as its centre and it was Red Fort, the seat of Mughal Empire, which became the symbol of freedom from British rule. The rebels declared Bahadurshah Zafar as the Emperor of India in defiance of the British rule. The rule could not be uprooted as the rebellion was crushed ultimately but the rule of East India Company did end, as an aftermath.

The British realized the importance of strategic Red Fort and decided to mould it to meet their purpose rather than help any future revolts. The idea of an Iron Bridge on the river Yamuna took seed in 1859 and it was completed in 1866 at an approximate cost of 16 lakh 16 thousand pounds. This railway bridge helped the British in a very effective way as it had a railway line as well as a pathway to facilitate the army's movements. Caught unawares in 1857, the British were determined now to prepare a very strong security system for Delhi and this bridge was one result of their action plan. The railway line entered into the Red fort and Army barracks were built by the British within the Fort premises to prevent further uprisings.



1857: कुछ अनजाने तथ्य

अज़ीमुल्ला ख़ान को फ्रेंच तथा अंग्रेजी भाषा का अच्छा ज्ञान था, वे पियानो पर मोज़ार्ट की धुनें बजाते थे, और अगर 1857 के बाद कोई राष्ट्रीय सरकार बनती तो विदेश मंत्री के पद के सर्वश्रेष्ठ दावेदार होते। 1854 में नानासाहब ने उन्हें इंग्लैण्ड भेजा ताकि वे अंग्रेज़ों से अपना राज्य वापस ले सकें। इंग्लैण्ड में अज़ीमुल्ला खान के व्यक्तित्व से बहुत लोग आकर्षित हुए और वे स्वयं भी उस समय के अनेक विख्यात लोगों जैसे स्टूअर्ट मिल, चार्ल्स डिकेन्स, कारलाइल, लॉर्ड मैकाले आदि से मिले। परन्तु उनकी लन्दन यात्रा अपने राजनैतिक उद्देश्य में विफल रही। वापसी के दौरान वे तुर्की तथा रुस गए, क्रीमिया युद्ध में इंग्लैण्ड की पराजय देखी और भारत की आज़ादी के लिये सैनिक हल पर विचार किया।



क्रांति की विफलता तथा क्रूर दमन के परिणाम से नाना साहब, अज़ीमुल्ला खाँ, बेगम हज़रत महल ने नेपाल में शरण ली। नवाब वाजिद अलीशाह ने अपनी माता तथा पुत्र को इंग्लैण्ड की महारानी विक्टोरिया से मिलने लन्दन भेजा ताकि उन्हें अवध का राज्य वापस मिल सके परन्तु यह कोशिश असफल रही। 1858 की जनवरी में वाजिद अलीशाह की माता का पेरिस में निधन हो गया तथा उन्हें वही दफनाया गया।



1857 की क्रांति का दमन करने वाले पहले दो अंग्रेज़ सैन्य अधिकारी जनरल जार्ज एन्सन तथा जनरल हेनरी बर्नार्ड की मृत्यु 1857 में ही हैज़े से हुई।

1857 में जनप्रिय नारा था "सितारा गिर पड़ेगा।"

चर्बी वाले कारतूस कम्पनी फौज के लिये ली गई नई एनफील्ड राइफलों के लिये थे। इससे पहले ब्राउन बेस राइफलें प्रयोग में लाई जाती थी।

यह तथ्य 'लन्दन टाइम्स' के संवाददाता विलियम हॉवर्ड रसेल के लेखों से प्राप्त किये गए हैं। वे 1857 के विद्रोह की रिर्पोट करने के लिये विशेष रुप से भारत भेजे गए थे। वे यहां जनवरी 1858 में आए और उन्होनें ब्रिटिश फौजों के साथ देश के विभिन्न क्रांतिकेन्द्रों का दौरा किया। उनकी रिर्पोटों की विशेषता रही कि उन्होंने वस्तुस्थिति का निष्पक्ष एवं सही उल्लेख किया।



Factoids from '57

Azimullah Khan spoke fluent French and English, played Mozart on the piano and would almost certainly have been foreign minister in a post-1857 "national government". In 1854, Nana Saheb sent him to London to persuade the English to give him back his kingdom. Azimullah charmed London, had a series of love affairs, met John Stuart Mill, Dickens, Carlyle, Macaulay but failed in his political mission. On his way back, he visited Turkey and Russia, witnessed the English reverses in the Crimean War, and dreamt of a military solution in India.



Nana Saheb, Hazrat Mahal and Azimullah Khan all escaped to Nepal. Wajid Ali Shah, the deposed king of Avadh, had sent his mother and son to London to meet Queen Victoria. They were there when the war broke out. The queen mother of Avadh died in Paris in January 1858 and was buried in the Pere Lachaise cemetery.

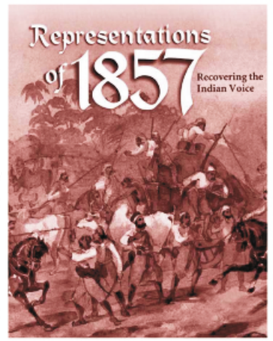


Generals George Anson and Henry Barnard, the first two British commanders-in-chief, both died of cholera in 1857.

The haunting Indian slogan for 1857 was "*Sitara gir parega*" - A star shall fall.

The controversial greased cartridges were for the new Enfield rifles that had just been introduced into the Company army. They replaced the trusted Brown Bess rifles.

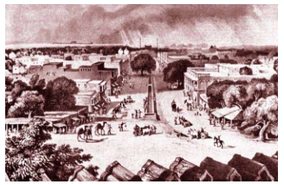
These are excerpts from the writings of ***William Howard Russell***, **military correspondent for the *London Times*, who was the special correspondent, reporter of the Mutiny. Arriving in India in January 1858, he travelled with British forces but sent back relatively reasonable reports.**





लाशों का शहर बन गया था चांदनी चौक

"24 सितम्बर 1857 की सुबह तक लाहौरी गेट से भीतर खूबसूरत शहर दिल्ली मुर्दों के शहर में तब्दील हो चुका था। हर तरफ लाशें ही लाशें थी।" यह लिखा है अंग्रेज़ अधिकारी लार्ड रॉबर्ट्स ने अपनी डायरी में।

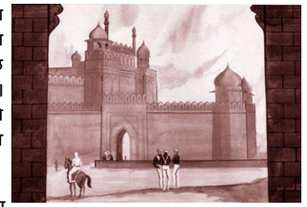


रॉबर्ट्स के इस कथन से ही एहसास हो जाता है कि आज़ादी की पहली लड़ाई की दिल्ली और दिल्लीवासियों ने कितनी बड़ी कीमत चुकाई। वह आगे लिखते हैं, "इस दिन हमें जीवित मनुष्य नहीं दिखा। उस दिन दिल्ली में घूमना वाकई घृणित था।" जानकारों का कहना है कि 11 मई की घटना ने अंग्रेज़ों को इतना क्रोधित कर दिया था कि इसका बदला लेने के लिए हर स्तर तक जाने को तैयार थे। उन्होंने बुज़र्ग, बच्चों व महिलाओं को भी नहीं बख्शा। उन्होंने सभी के साथ एक जैसा बर्ताव किया। लार्ड रॉबर्ट्स लिखते हैं कि "लाशों के बीच से चलते हुए हमें इस बात का डर सता रहा था कि हमारे घोड़ों की टाप की आवाज़ से मुर्दे चौंक न पड़ें। ज़मीन पर पड़ी लाशों को कुत्ते और चील नोंच रहे थे। लाशें सड़ रही थीं। चारों और सड़ांध उठ रही थीं। लाशों से उठती दुर्गंध और गंदगी के चलते शहर में हैज़ा फैल गया था। अस्पतालों में नर्से नहीं थीं। जो लोग इलाज के लिए अस्पतालों में पहुंचते थे उन्हें बाहर से ही खदेड़ दिया जाता था। शहर में महामारी फैल गई थी जिसकी वजह से जो लोग अंग्रेज़ों की मार से बच गए थे वे हैज़े की वजह से मर रहे थे।"

अंग्रेज़ लेखक 'केय' लिखते हैं कि अंग्रेज़ों ने दिल्लीवालों को अपनी शक्ति का सही लोहा मनवाने के लिए चांदनी चौक कोतवाली के पास एक फांसीघर बनवाया था। इसके अलावा लोगों को यहां के पेड़ों पर भी फांसी पर लटकाया जाता था। केय के अनुसार सड़कों और पेड़ों पर लटके शवों को उतारकर ठिकाने लगाने के लिए आठ शव गाड़ियाँ सुबह से शाम तक लगातार शवों को उठाती रहती थी। इसके बाद भी शवों की संख्या कम नहीं होती थी। केय के अनुसार केवल चांदनी चौक इलाके में ही कम से कम 6000 लोगों को सरसरी तौर पर सुनवाई के बाद अंग्रेज़ों ने मौत के घाट उतार दिया था, जिसमें सभी उम्र और मज़हब के लोग थे।

Chandni Chowk, Delhi - The City of Dead

The morning of 24th September 1857 saw the beautiful historic city of Delhi being converted into a city of rotting corpses. These unfortunates were targets of British anger and hatred resulting due to the uprising by the masses of India, particularly the capture of Delhi by rebels in May 1857. The first act of vengeance by the British was to teach the people of Delhi a terrible lesson for revolting and the method applied was brutal murder of citizens, young and old, men, women, even children. Lord Roberts a British officer writes in his diary that "on the morning of 24th September 1857, the city inside Lahori Gate had drastically converted into a city of dead. We were afraid to ride through the corpses lest they come alive by the beats of horse hoofs. Dead bodies were strewn all over and vultures and dogs were feasting on them. The bodies were rotting and a terrible stench had enveloped the entire area. Cholera had spread in the city due to the rotting corpses but there was no hospital staff to attend to the sick. Sick people who would somehow make it to the hospitals were turned away without treatment. The city was in the grip of epidemic and those who had escaped the British carnage were dying of Cholera now."

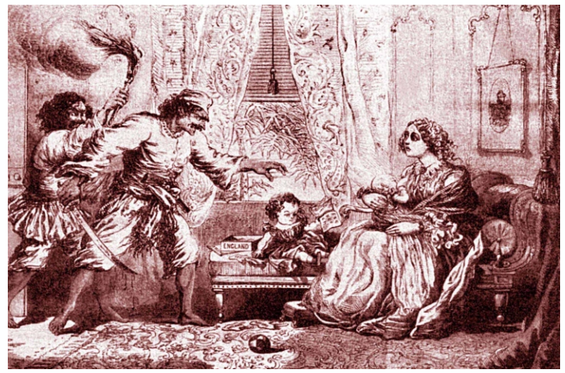


British author Kaye writes the British had erected a special place for hanging the rebels near Chandni Chowk Kotwali to teach a lesson to the people of Delhi for revolting against them. Beside this, people were also hanged to death on trees and lamp posts. Eight hearses worked ceaselessly in clearing the street continuously removing the dead but the numbers kept increasing. According to Kaye, in Chandni Chowk area alone at least 6,000 people of all age groups were executed without any proper trial or hearing.

मेम के अपहर्ताओं को सज़ा–ए–मौत

प्रथम स्वतंत्रता संग्राम 1857 में बाकरगढ़ गांव के तीन युवकों ने अंग्रेज़ी हुकूमत के ख़िलाफ बिगुल बजाकर ग्रामीणों में आज़ादी की अलख जगाई थी। युवकों ने अंग्रेज़ अफसर बाकर की पत्नी का अपहरण कर लिया था। इससे अंग्रेज़ों में हड़कंप मच गया। हालांकि इन युवकों ने फिरंगी मेम को यातना नहीं दी थी, लेकिन अंग्रेज़ों ने तीनों युवकों को फांसी दे दी। इतना ही नहीं, अंग्रेज़ों ने पूरे गांव को उजाड़कर ग्रामीणों की 6500 बीघा कृषि भूमि अपने चहेतों को उपहार स्वरूप दे दी। बाकरगढ़ पुनः बस चुका है, लेकिन ग्रामीणों को आज तक उनकी भूमि नहीं मिली है।

प्रथम स्वतंत्रता संग्राम जब शुरू हुआ तो दिल्ली के गांववासी बड़ी संख्या में कूद पड़े। नज़फगढ़ से करीब 10 किलोमीटर दूर हरियाणा सीमा पर स्थित बाकरगढ़ गांव के अमीरचंद, गंगाराम व शालीग्राम ने इलाके की कमान संभालने वाले अंग्रेज़ अधिकारी बाकर के मकान पर धावा बोल दिया। इस दौरान बाकर तो मिले नहीं, लेकिन उनकी पत्नी मिल गई और तीनों युवकों ने उसका अपहरण कर लिया। यह एक अजीब इत्तेफाक था कि गांव का नाम बाकरगढ़ व अफसर का नाम बाकर था।



उधर इस घटना की ख़बर इलाके में चारों ओर फैल गई और अंग्रेज़ अधिकारियों में घटना को लेकर हड़कंप मच गया। अंग्रेज़ों ने बाकर की पत्नी की काफी तलाश की, लेकिन वे विफल रहे। इस दौरान अंग्रेजों को दूसरे गांवों के लोगों ने मामले को बढ़ा चढ़ाकर बताकर तीनों युवकों द्वारा बाकर की पत्नी को छिपाने वाले ठिकाने के बारे में जानकारी दे दी। ग्रामीणों से मिली सूचना के अनुसार अंग्रेज़ों ने तीनों युवकों को गिरफ्तार करते हुए बाकर की पत्नी को आज़ाद करा लिया।

अंग्रेज़ों द्वारा अमीरचंद, गंगाराम व शालीग्राम को गिरफ्तार करने के बारे में मालूम होते ही बाकरगढ़ ग्रामीणों ने रातों रात गांव छोड़ अपने रिश्तेदारों के यहां शरण ले ली। वहीं अंग्रेजों ने पूरे गांव को तुड़वा दिया और ग्रामीणों की कृषि पूरे प्रकरण की मुखबरी करने वाले लोगों को उपहार में दे दी। अमीरचंद, गंगाराम व शालीग्राम को नज़फगढ़ में एक पेड़ पर सरेआम फांसी पर लटका दिया। आज वह जगह जवाहर चौक के नाम से जानी जाती है। चौक के बीचों बीच देश के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू की प्रतिमा लगी है। देश आज़ाद होने के बाद बाकरगढ़ पुनः आबाद हुआ। मगर आधे से अधिक ग्रामीण अपने गांव लौट कर नहीं आए।

क्या आप जानते हैं

कानपुर में अंग्रेज़ इतने डरे हुए थे कि 24 मई 1857 को रमज़ान के बाद ईद और उसी दिन रानी विक्टोरिया की सालगिरह के अवसर पर भी तोप की सलामी नहीं दी गई। अंग्रेज़ों को डर था कि तोपों की गूंज से कहीं हिंदुस्तानी सिपाही भड़क न जाएं। पूर्व में सालगिरह के अवसर पर तोपों की सलामी देकर अंग्रेज़ खुशी का इज़हार करते थे।



Death Sentence to Kidnappers of British Lady

The 1857 uprising saw, the participation of the villagers of Delhi in large numbers. During the 1857 revolt, three young men Amirchand, Gangaram and Shaligram of Bakargarh, a village 10 kms. from Najafgarh had raised their voice against British rule and inspired the villagers to rebellion. These youth then kidnapped the wife of a British officer Bakar. The news of the kidnapping spread like wildfire, greatly agitating the British authorities. They rounded up the entire village. Unfortunately, some jealous villagers revealed the whereabouts of the rebels and the kidnapped lady who was later rescued. Although the young men did not harm the British lady, yet the three were treated brutally. The three young men were arrested and promptly hanged to death by a tree. The British confiscated the entire village and gifted 6500 bighas of fertile land to their favourites. Bakargarh has been rebuilt anew but the villagers who fought against the *Firenghis* have still not got the possession of their lost fields.

By a strange coincidence the village Bakargarh had this British officer named Bakar. Today the place is known as Jawahar Chowk and has a statue of Pandit Jawaharlal Nehru installed here. The nation offers homage to these brave martyrs of 1857.

Do You know?

In 1857 the British in Kanpur were so terrified of the events that on the occasion of Queen Victoria's birthday on 24 May 1857, they did not dare to offer gun-salutes. They were mortally scared that this could anger and incite the rebel soldiers and provoke them. Earlier, gun-salute was an important part of the Queen's birthday celebrations but 1857 was the year, which literally shook the foundations of the British Empire in India, and this was only the beginning of its end.

कलम न सियाही न कागज़ दवात कि नायाब हो जैसे आबेहयात।

अवध के लोकगीतों में तमाम जगहों पर पत्रों की महिमा का बखान मिलता है। गोंडा के राजा देवीबख्श सिंह के बारे में एक लोकगीत बताता है कि किस तरह वह क्रांति की आग जलाने के लिए जगह–जगह पत्र लिख रहे थे। ज़ाहिर है कि बड़ी संख्या में हरकारे वहां भी जान हथेली पर रखकर सेवा कर रहे थे। लोकगीत के इन शब्दों पर गौर करें:

राजा बखानों में गोंडा के देवीबक्स
महाराज रहे असी चार चौरासी कोस
मा जैके डंका बाजि रहे। गोंडा से पाती जै झांसी झांसी के
राजा राम लाल, साथ हमार दीजै राजा,
हमरे राज मा चोर हला।
कहीं–कहीं का चले सांडिया,
कहीं–कहीं चलते हाथी
देस–देस औ गांव–गांव का राजा लिख भेजा पाती।

The Importance of letters during 1857

Letters have become a part of folklore and legends during the 1857 uprising, as they were the powerful medium through which the rebels were connected in making plans and strategies for the first war of Independence.

In Awadh, folklore tells us how the rulers of the districts were spreading the fires of revolt through fiery letters, and the runners being an integral part of the secret world of rebels. The Harkaras were fearless people who braved all odds to complete their tasks. Even the British realized in 1822 itself, when they tried to introduce horses to send post across the country that while horses took 12 days to deliver post from Calcutta to Meerut the harkaras (runners) did it in 10 days only.



During the 1857 uprising the runners played a very significant part in the spreading of the revolt across the country. A folksong about the king of Gonda, Raja Devibaksh Singh tells us how he was writing letters to all people he knew about the great revolt and was provoking people to rise and revolt against the alien rulers i.e. the British. The folk song means

Raja Devibaksh Singh of Gonda
who ruled over grandly,
wrote to Jhansi's King Raja Ramlal
that be with us, there is a thief (meaning the British)
in my kingdom, the Raja of Gonda
writes letters all over the country and to every village to fight the British rule and be our own master.

फिरंगियों की ज़्यादतियों का गवाह है पेड़

दिल्ली में एक ऐसा पेड़ मौजूद है, जो 1857 की क्रांति का गवाह रहा है। अंग्रेज़ों द्वारा भारत के सपूतों पर ढाए गए जुल्मों–सितम... इस पेड़ ने देखे हैं। लेकिन वह उन्हें बयां नहीं कर सकता। इस पेड़ पर एक –दो नहीं बल्कि दर्जनों आज़ादी के दीवानों को फांसी पर लटका दिया गया था। यह पेड़ इस समय जीटी करनाल रोड पर स्थित अलीपुर में अकेला खड़ा है। बूढ़े हो चुके इस पेड़ का साथ देने के लिए यहां कोई दूसरा दरख़्त नहीं है।



बताया जाता है कि 7 जून 1857 को करनाल से अंग्रेज़ों की फौज अलीपुर के निकट आ पहुंची थी और यहीं पर उसने अपना डेरा डाल लिया था। अंग्रेज़ों को दिल्ली की ओर बढने से रोकने के लिए अलीपुर और उसके आसपास के गांवों के लोगों ने इन रास्तों से जा रहे टेलीग्राफ के तारों को मीलों तक काट दिया और खम्भों को उखाड़कर फेंका था। उस समय एक–दूसरे तक सूचना पहुंचाने का एकमात्र साधन टेलीग्राफ ही था। तारों को काट देने से अंग्रेज़ों को अपने संदेशों के आदान–प्रदान में भारी दिक्कत होने लगी। अंग्रेज़ों ने गांव के ज़मीन पर अपना कब्ज़ा कर लिया। टेलिग्राफ का तार काटने वालों व अपने खिलाफ विद्रोह करने वालों सैकड़ों लोगों को यहां के नीम व अन्य पेड़ों पर लटाकाकर फांसी दे दी गई थी। स्थानीय लोगों के अनुसार उन्हीं पेड़ों में से एक 'कैम' नामक यह पेड़ इस वक्त यहां पर अकेले खड़ा है, जो इस पर लटकाये गए आज़ादी के दीवानों की याद दिलाता है।

कहा जाता है कि अंग्रेज़ों ने इस पेड़ पर लगभग तीन दर्जन से अधिक लोगों को फांसी पर लटकया था। यहां के लोगों का कहना है जब भी इसे काटने की कोशिश की गयी तो इसकी पत्तियां तेज–तेज हिलने लगती हैं। ऐसा लगने लगता है जैसे आंधी आने वाली हो। इससे लोग डर के वापस चले आते हैं। लोगों का कहना है कि इस पेड़ की नियति ऐसी है कि इसके आसपास एक भी पेड़ नहीं है। जिस परिसर में यह पेड़ खड़ा है उसके ठीक सामने आजादी के शहीदों की याद मे एक शहीद पार्क का निमार्ण किया गया है।

A Tree : mute witness to British cruelties

There is a tree in Delhi, which was used by the British officers for hanging the revolutionaries as punishment for the uprising of 1857. It stands forlorn today, in Alipur on G.T. Karnal Road, as a mute witness to those tumultuous days in India's history.

It is said that on 7th June 1857 when the British Army reached Alipur from Karnal, on its way to Delhi, the local population of Alipur and nearby villages uprooted the Telegraph poles and wires so that there could be no communication sent anywhere by the British Army. This infuriated them and they started rounding up the villagers of the nearby areas and punished them by ravaging their land, torturing them and hanging them to death on trees. This tree alone suffered the pains of playing the scaffold on which dozens of villagers were hanged by the British in 1857.

According to the Folklores that there have been many unsuccessful attempts to cut the tree down but till date this mute testimony to British cruelties stands erect and reminds us of the sacrifices of the martyrs of 1857. Right opposite the tree, a Martyr's Park has been created in the memory of the martyrs of the first war of Independence in 1857.

Some of the Martyrs of Alipur and nearby Villages

Sahab Singh, Mehar Singh, Jatram, Shiv Sahay, Khubi, Pukhram, Ramchandar, Jamna Das, Ram Dayalu, Khemkarna, Turti, Amichand, Buddhe Singh, Bahal Singh, Bahadur, Silk, Sukhram, Lalman, Tulsiram, Ramdayal, Jaimal Singh, Gopal, Dhan Singh, Hari Ram, Kewal Singh, Budh Singh, Dayaram, Mayaram, Mita, Raje, Ram Chander, Jetu Singh, Hari Singh, Majlis and others were among the countless freedom fighters of 1857 from the Alipur Villages.

अलीपुर गांवों के शहीदों के नाम

साहब सिंह, मेहर सिंह, जोतराम, शिव सहाय, खूबी, पुखराम, राम चंदर, जमुना दास, राम दयालु, खेम करन, तुरती, अमी चंद, बुद्धे सिंह बहाल सिंह, बहादुर, सिल्क, सुखराम, लालमन, तुलसीराम, रामदयाल, जयमाल सिंह गोपाल, धनसिंह, हरीराम, केवल सिंह, बुद्ध सिंह, दयाराम, माया राम, मीता, राजे, राम चंदर, जेतू सिंह, हरी सिंह मजलिस आदि थे।





हरकारों को किया हलाक

शुरूआती दिनों में लोगों में बैरंग चिट्ठी भेजने का रिवाज सा बन गया था क्योंकि यह धारणा बन गई थी कि यह तो पहुंचेगी ही लेकिन जब बैरंग पत्र बड़ी संख्या में छुड़ाए जाने बंद होने लगे तो 1854 में सरकार को डेड लेटर ऑफिस (डीएलओ) की स्थापना करनी पड़ी। उस साल लेने से इनकार कर दिए बैरंग पत्रों की संख्या देश में 3,33,898 गिनी गई थी। 1854–55 में डाक विभाग में बैरंग पत्रों की संख्या 6–31 लाख मानी गयी थी, लेकिन सबसे महत्वपूर्ण बात है कि 1857 और 1858 की क्रांति के दौरान डाक विभाग में रिकार्ड 23 लाख पत्र डीएलओ में वापस पहुंचे। इतनी बड़ी संख्या में पत्रों की वापसी के पीछे तर्क यह दिया गया कि उस दौरान बग़ावत में बहुत से लोग या तो मार दिए गए या अपने ठिकानों से पलायन कर गए थे। अंग्रेज़ों ने व्यवस्थित डाक तंत्र स्थापित करने के लिए भारत में लंबे समय तक अलग–अलग हिस्सों में सक्रिय रही महाजनी डाक, चिलाक डाक तथा ब्राह्मणी डाक जैसी व्यवस्था से जुड़े हज़ारों हरकारों को भी बेकार कर दिया था। इनमें काफी 1857 में सक्रिय रहे और अनेक जगहों पर उनकी सेवाएँ बाग़ियों को मिली। हरकारों को तो अंग्रेज़ काफी पहले से हटाना चाह रहे थे और इसी तहत 1822 में जब उनकी जगह घोड़ों को उपयोग में लाने का काम शुरू हुआ तो पाया गया कि ये घोड़े हरकारों से काफी महंगे साबित हो रहे हैं। कलकत्ता से मेरठ की जो डाक घोड़ों की मदद से 12 दिन में पहुंच रही थी, वही पैदल हरकारे 10 दिन मे पहुंचा रहे थे।



1857 में अंग्रेज़ों ने परंपरागत डाक रूट को सैन्य संचरण के लिए उपयोग किया। इस तरह डाक लाइनें तथा उसके लिए तैयार पहले का आधार सेना के काफी काम आया। पर ये बातें बाग़ियों तक पहुंचे बिना नहीं रहीं। इसी नाते 1857–58 में ही नहीं उसके आगे भी डाक तंत्र पर हमले तेज़ हुए। डाक विभाग की रिपोर्टों के मुताबिक 1857 में बम्बई सर्किल में 10 डाक बंगले, सात डाक घर जलाए, 10 डाकघर बंद कर दिए गए। उस समय की हर महत्वपूर्ण डाकघर लाइन बाग़ियों द्वारा प्रभावित थी। उनके द्वारा खुफिया जानकारी अंग्रेज़ों तक पहुंचाने की बातें सार्वजिनिक हो जाने के नाते डाक अफसरों को लेकर आम लोगों में काफी गुस्सा था। कई जगहों पर लोगों ने नाराज़गी में डाक विभाग के रिकार्ड और टिकट जला दिए। जगह जगह सरकार ने प्रयास किए पर डाक लाइनें खोल कर स्थिति सामान्य कर पाना संभव नहीं हो रहा था। उस दौरान कई अंग्रेज़ डाक कर्मचारी–अधिकारी भी मारे गऐ। 1857 में शिमला के पोस्टमास्टर एफ. डालटन दिल्ली में क्रांतिकारियों का शिकार बने।

1857 में क्रांति नायकों के बीच आपसी संवाद के लिए एक अच्छा खासा संचार तंत्र हरकारों के माध्यम से चल रहा था। इस तंत्र के पास घोड़े ऊंट भी थे। इसी के साथ बग़ावत के दिनों में कई जगहों पर समानांतर डाक सेवा भी चल रही थी। ऐसा माना जाता है कि अंगेजों की नीतियों से हाथ धो बैठे अवध के हजारों ख़बरनवीस बागियों के लिए काम कर रहे थे। अंग्रेज़ी कैंप की सूचनाएँ भी तेज़ी से बागियों के कैंप तक पहुंच रही थीं और गांव–गांव में बग़ावत की आग फैली थी। इसी कारण से अंग्रेज़ों ने हरकारों तक को फांसी दी ताकी बाग़ी खेमे को संदेशवाहक से उनकी खबर मिल सके।

अंग्रेज़ों के खुफिया तंत्र को बनारस में ऐसी जानकारी मिली कि बाग़ियों की सेवा में बड़ी संख्या में हरकारे तैनात थे। उनकी ही मदद से तमाम जगहों से अहम खबरें बाग़ी राजाओं के बीच पहुंच रही थी। ऐसी ही सेवा का प्रबंध बनारस में महाजनों और रईसों की ओर से किया जाता था। बनारस में रह रहे जगदीशपुर निवासी ईश्वरी प्रसाद महाजन ने भी ऐसी ही एक सेवा चला रखी थी जिसे अंग्रेज़ों ने पकड़ा तो हरकारों को मौत के घाट उतारने में संकोच नहीं किया।

The role of Post carriers – runners in 1857

In the early years of postal service in India it was a kind of unspoken understanding among people that an unstamped letter is certain to reach its destination and as a result every year the number of such letters kept on increasing. The government had to create a dead letter office (DLO) for such unstamped and unclaimed letters. The period between 1857 and 1858 saw at least 23 lakh letters being returned to DLO. It was said that this was due to a large number of people being killed in the uprising or having escaped from their native places.

The introduction of postal services by the British had affected the age old method of letters being sent through post-carriers-runners-who used to run from village to village, taking the shortest routes through jungles, rivers, mountains and were part of Indian traditional folklore. They became unemployed due to the postal services and their services came to be used secretly by the rebels during the great uprising of 1857. They played a very important role in this revolt as messengers of important news amongst the rebels.

The rebels were aware of the advantages of the post and telegraph services to the British and therefore, destroyed many telegraph poles, dak bunglows and post offices during this period. The common people resented the postal services because its efficiency revealed the secrets of the rebels and enabled the British to counter check the plans and strategies of the rebels.

The 1857 revolt saw a wonderful rapport between the rebel leaders through the medium of runners – the post carriers known as harkaras. They were running a parallel postal service – indigenous and efficient, connecting villages, cities and rebel leaders in a very systematic manner. A lot of unemployed people of princely states like Awadh, who were rendered jobless by British policies, started working as news carriers for the rebels. The British soon realized that this needed to be checked as their secret information were reaching the rebels, giving them an upper edge in the struggle. The British started arresting the post-carriers and executed them in large numbers so that the relay of news to the rebels would be disrupted.

There were rich mahajans and nobles who were offering these services through runners employed by them, to help the rebels and the British found about such people and hanged the runners and stripped the service providers of their riches and positions.



क्रांति विफल होने पर अंग्रेज़ों ने मचाया था कोहराम

मई 1857 की क्रांति विफल क्या हुई, अंग्रेज़ी हुकूमत स्वयं बदले की भावना पर उतर आई। फिरंगियों ने क्रूरता का परिचय देते हुए जमकर लूटपाट की और खूनी खेल खेला। धौलाना में 14 क्रांतिकारियों को बंदी बनाकर फांसी पर चढ़ा दिया। परीक्षितगढ़, हस्तिनापुर और मवाना के 70 लोगों को भैसाली मैदान में फांसी पर चढ़ाया गया।



मेरठ की ऐतिहासिक सरजमीं से शुरु हुआ 1857 का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम सफल नहीं हुआ तो गुस्साए फिरंगियों ने जनपद के उन 244 गांवों को निशाने पर रखा जहां से संग्राम की चिंगारी शुरु हुई। बग़ावत करने वाले सैनिकों को पहले ही फांसी पर लटका दिया। बाद में गांवों पर कहर बरपाया। 15 मई को अंग्रेज़ों ने बागपत जिले की तहसील बड़ौत ही तहस नहस कर दी थी। बड़ौत क्षेत्र के 50 गांवों को बागी करार देकर वहां जुल्म ढाए गए। महिलाओं की आबरु तक लूटी गई। ग्यासपुर, भनेड़ा मुकीमपुर गढ़ी गांवों में एक दर्जन से अधिक लोगों को गोलियों से भूना गया। ग्राम बाघू और निरोजपुर गुर्जर के क्रांतिकारी चौधरी अचल सिंह को तोप से उड़ा दिया गया। उनकी जमीन छीनकर मुखबिरों को दे दी गई।

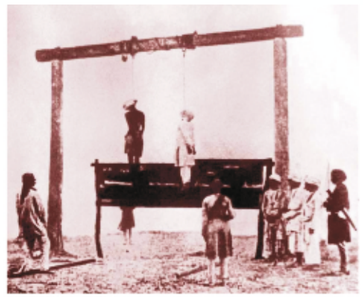


यही नहीं कोतवाल धन सिंह गुर्जर के गांव पांचाली में दमन चक्र चलाया गया। वहां 80 लोगों को एक साथ फांसी पर लटकाया गया। परीक्षितगढ़ निवासी हरीशंकर शर्मा अकेला इतिहास का हवाला देते हुए कहते है प्रसिद्ध धार्मिक तीर्थ गगोल में प्रदर्शन करते हुए सात लोगों को सरेआम फांसी पर लटकाया गया। लिसाडी गांव, सिखैड़ा गांव के भद्र सिंह और पीताम्बर सिंह को गोली मारकर गांव में घुमाया गया था। कन्हैडा में भी चार लोगों को फांसी दी गई। हस्तिनापुर, बहसूमा परीक्षितगढ़ में अंग्रेज़ों ने 18 से 20 मई तक लूटपाट कर लोगों से जुर्माना भी वसूला। महान् क्रांतिकारी कदम सिंह को अन्य साथियों के साथ भैंसाली मैदान में फांसी पर लटकाया था। बुलदंशहर के पिलखुआ, सपनावत, डूहरों, अछेजा, धौलाना में ठाकुर गुलाब सिंह की अगुवाई में 10 मई को तीन अंग्रेज़ों को मार गिराया गया था। जिसके बदले अंग्रेज़ सैनिकों ने 21 मई को 65 लोगों को फांसी पर लटका दिया था।



British atrocities on Indians-repercussions of 1857

The suppression of the 1857 revolt by the British is remembered for its gory bloodshed and unprecedented cruelty towards Indians. The Villages, shops, markets and of course, the people of this land, all became targets of the British vendetta for the uprising of 1857. Fourteen revolutionaries of Dhaulana village were arrested and hanged to death. In Parikshitgarh, Hastinapur and Mawana villages, seventy people were hanged to death in the Bhaisali Maidan.



Two hundred and fourty-four villages of the Meerut Janpad were specially targetted because it was from here that the historic revolt had begun, Soldiers were executed without any trial. The villages were ravaged, looted, put on fire and the villagers were tortured and killed. Many villagers of Gyaspur, Bhanera, Mukimpur Garhi were shot to death. Revolutionary Chaudhary Achal Singh of Village Baghu and Nirojpur Gurjar was tied to a canon and blown away. His land was snatched and given away to informers.

Eighty villagers were hanged simultaneously in village Panchli of Kotwal Dhan Singh Gurjar. A villager of Parikshitgarh, Harishankar Sharma cites historical evidence that seven people protesting against British Raj at the famous holy place Gagol were hanged in public. Bhadra Singh and Pitamber Singh of Lisadi and Sikhera villages were shot dead and their bodies were taken around the village. Four persons were executed in Kanhaida Village. The British raided and looted the villages of Hastinapur, Bahasuma and Parikshitgarh between 18th and 20th May 1857 and also landed fines against the villagers.



The great revolutionary Kadam Singh was hanged to death along with his friends at the Bhainsali Maidan. Few Englishmen were killed in the Bulandshahar distt. on 10th May and in retaliation the Britishers hanged 65 people to death on 21st May. The trail of torture and killings was never ending and the Indians were made to pay with their lives for the uprising of 1857 against British Raj.

तार बना बाग़ियों के गले की फांस

प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में अंग्रेज़ों को सर्वाधिक मदद तार (टेलीग्राफ) की सुविधा से मिली। तार पर अंग्रेज़ों का ही एकाधिकार था। वहीं दूसरी ओर ठेठ देहाती इलाकों के बाग़ी नेता और ग्रामीण इस बात को जानते भी नहीं थे कि तार कितनी दूर तक मार सकता है। वहीं दूसरी ओर अंग्रेज़ कमांडर–इन–चीफ ने सेना की तैनाती के साथ बहुत से काम तार के माध्यम से ही पूरे किये। अवध इलाके में तो तार ने काफी काम किया। यहां से दूर बैठे सेनाधिकारियों का गवर्नर जनरल से भी सीधा संचार कायम हुआ। यही नहीं तमाम दुर्गम इलाकों में भी सूचनाएं आसानी से भेजी जा सकीं, क्योंकि बहुत से इलाके तो ऐसे थे जहां अंग्रेज़ों का आना जाना या डाक संचालन ही बंद था। फिर भी बाग़ियों ने बड़ी संख्या में तार लाइनें काटीं।

भारत में 1839 में डॉ. शॉनेसी ने कलकत्ता डायमंड हारबर के बीच 21 मील की पहली प्रायोगिक लाइन बिछाई। डॉ. शॉनेसी कलकत्ता मेडिकल कॉलेज के कैमेस्ट्री विभाग के प्रोफेसर थे। मिलिट्री बोर्ड के सचिव ने 1849 में डॉ.शॉनेसी से भारत में तार (इलक्ट्रिक टेलीग्राफ) लागू करने की संभावनाओं के बारे में रिर्पोट देने को कहा। डलहौज़ी 12 जनवरी 1848 को भारत में गवर्नर जनरल बने तो उन्होंने तार का काम आगे बढ़ाने में काफी दिलचस्पी ली। लंदन जाकर ईस्ट इंडिया कंपनी के निदेशकों के समक्ष कलकत्ता, आगरा, मुंबई, पेशावर तथा मद्रास के बीच तार लाइन बिछाने के महत्व को शॉनेसी ने समझाया। डलहौज़ी का समर्थन उनको मिल ही रहा था लिहाज़ा लंदन से लौटने के बाद शॉनेसी को औपचारिक रुप से भारत का तार अधीक्षक बना दिया गया। इसी नाते उनको भारत में तार का जनक कहा जाता है। एक भारतीय अधिकारी शिबचंद्र नंदी इस तार क्रांति में उनके सबसे करीबी सहयोगी बने। इसके बाद पूर्वी बैरकपुर से इलाहाबाद, बनारस–मिर्ज़ापुर, मिर्ज़ापुर–सोन तथा कलकत्ता–ढाका के बीच तार लाइन बनी। कलकत्ता से पहला टेलीग्राफ अधिनियम भी बना। इसके बाद 1856 में कलकत्ता से पेशावर तार से जुड गया। कालांतर में बंगलूर, मेरठ, ऊटी, रंगून आदि भी जुड़े। फरवरी 1855 में तार को जनता के उपयोग के लिए भी खोला गया पर कम ही लोग इसका उपयोग करते थे। 16 शब्दों का संदेश एक रुपये में 400 मील तक भेजा जाता था।

1853 से 1856 के बीच भारत में 4000 मील तार लाइन बिछी और तमाम प्रमुख जगहें तार से जुड़ गई। 1857 में यह हथियार अंग्रेज़ों के लिए काफी मददगार रहा। यह भी संयोग ही था कि 1857 में महानिदेशक का पद भारत में सृजित हुआ और 1857 से 1861 के बीच में शॉनेसी को ही यह पद मिला। पर प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के दिनों वह अवकाश पर यूरोप चले गए थे और उनकी जगह काम कर्नल स्वीवर्ट्स पर आ गया। पर चूंकि उनको बग़ावत दबाने के काम में भी बाहर जाना पड़ता था लिहाजा शिबचंद्र नंदी ही वास्तव में मुख्यालय का प्रभार देखते थे और बाग़ियों के खिलाफ रणनीति बनाते थे। नंदी ने 1857 में कलकत्ता–मुंबई के बीच संचार बहाल रखने के लिए काफी प्रयास किया।

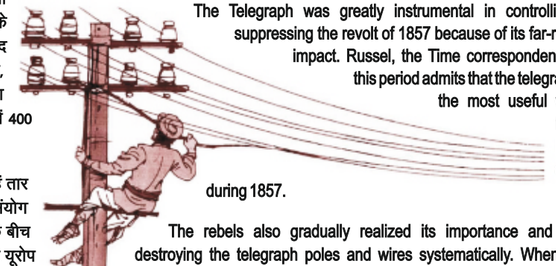
यह संयोग नहीं था कि टेलीग्राफ या तार को डलहौज़ी ने शासन का इंजन करार दिया। उस दौरान बग़ावत को काफी करीब से देखने वाले टाइम्स के संवाददाता रसल ने माना है कि टेलीग्राफ सेना के लिए सबसे मददगार हथियार रहा। हालांकि कई जगह बाग़ियों ने सावधानी से काम किया पर बहुत सी जगहों पर तार और संदेशों की ज्वाला जल्द ही बुझ गई। इलाहाबाद में छठी बटालियन ने 6 जून 1857 को जब नील के अत्याचारों की कहानी सुन कर बग़ावत कर दी तो विजय उत्सव में ये फौजी रेलवे वर्कशाप को ध्वस्त करने और तार के तार काटना नहीं भूले थे। इस दौरान कटक–कलकत्ता के बीच का संचार तंत्र भी बाग़ियों ने महीनों ठप रखा।

तार से छोटी से छोटी महत्व की जानकारियां गवर्नर जनरल तक पहुंच रही थीं। 13 फरवरी 1858 को कमिश्नर गोरखपुर ने उ.प्र. प्रांत के सचिव को सूचना दी कि "कुंवर सिंह अयोध्या में 2000 लोगों के साथ हैं। उनके पास आठ हजार सिपाही हैं। वे राजा मान सिंह के सिवाला में रुके। नरहरपुर के राजा भी उनके साथ थे। वहां आंदोलन की रणनीति बनी.... ।" 27 मई 1858 को बनारस कमिश्नर ने गवर्नर जनरल को टेलीग्राफ किया कि "मुहम्मद हुसैन ने मान सिंह पर हमला किया। बेलवा, बांसी तहसील तथा थाना शहर पर बाग़ियों का कब्ज़ा हो गया है। मान सिंह को लखनऊ से मदद दी जानी चाहिए.... ।" इन जानकारियों के आदान–प्रदान से अंग्रेज़ अपनी ठोस रणनीति बना रहे थे जबकि हमारे क्रांतिवीरों के पास साधनहीन पैदल हरकारे ही थे। तार जैसी तेजी नन्हें पांवो में भला कहां आती?मगर फिर भी देश

The Telegraph – Noose for rebels

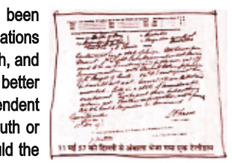
The fist war of Independence in 1857 saw the emergence of telegraph as a very strong source of communication for the British. It was the monopoly of the British and naturally they were the ones who were benefitted by its use. On the other hand the rural population of India and the rebel leaders did not even know the extent to which it could be used against them. The British commander-in-Chief deployed forces through telegraph besides using it to get and supply fresh information on the status of the revolt. The telegraph played a crucial role in almost all the centers of revolt. The British officers were able to contact the Governor General directly, besides keeping in touch with the far-flung remote corners of the land. The rebels destroyed many telegraph poles to prevent British communication.

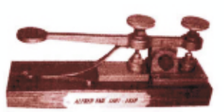
The Telegraph system was brought to India by the British and Lord Dalhousie took great interest in promoting electric telegraph in India. Between 1853 to 1856 a 4,000 mile long line of telegraph became operative connecting many important centers of the country like Calcutta, Barrackpore, Allahabad, Benares, Mirzapur, Dhaka, Peshawar, Bangalore, Meerut, Ooty, Rangoon and many other places. In February, the use of telegraph was introduced for the people also but very few people knew about its usage.



The Telegraph was greatly instrumental in controlling and suppressing the revolt of 1857 because of its far-reaching impact. Russel, the Time correspondent during this period admits that the telegraph was the most useful weapon for the British army during 1857.

The rebels also gradually realized its importance and started destroying the telegraph poles and wires systematically. When the 6th Battalion at Allahabad heard of the cruelties of Neel, a British officer, they rebelled and as a mark of victory destroyed the railway workshop and did not forget to disconnect the telegraph wires by cutting them. The rebels had destroyed the telegraph lines between Cuttack and Calcutta and for months no communication was possible on this line. The telegraph was providing the smallest of details of the revolt to the Governor General. On 13th February 1858 the commissioner of Gorakhpur informed the Secretary of United Provinces that "Kunwar Singh was in Ayodhya with 2,000 rebels, and he had an army of 8,000 soldiers. He had also met the king of Siwala Raja Man Singh and prepared a strategy for revolution with the king of Narharpur also...." On 7th May 1858 the commissioner of Benaras wired to the Governor General that "Bansi Tehsil and Thana Shahar have been captured by the rebels...." These informations and more were greatly helpful to the British, and they could plan their strategies in a much better way than the rebels who were solely dependent on communication through word of mouth or runners carrying post. How could the small feet of native runners compete with the immense speed of telegraph? The revolution by the masses and classes of India, thus had to face the onslaught of technical advancement too, but they kept on fighting valiantly till their last breath.





1857 और साम्प्रदायिक सौहार्द्र

1857 की क्रान्ति को देश का पहला स्वाधीनता संग्राम कहा जाता है। इस संघर्ष का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण पक्ष था देश के हिन्दू – मुसलमानों का आपसी सद्भाव और मुग़ल सल्तनत के प्रति गहरी वफादारी।



इस साम्प्रदायिक सद्भावना के लिये संघर्ष के नेताओं की कोई विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ा था, यह तो स्वतः ही स्वाभाविक रूप से जनमानस में सदियों से व्याप्त प्रेमपूर्ण सह–अस्तित्व का



परिणाम था। एकता के लिये किसी प्रकार के अलग आह्वान की तो आवश्यकता ही नहीं पड़ी थी। इस संघर्ष में पूरा देश एकीकृत हो गया था। जब हम इस रोमांचकारी कालखण्ड को देखते हैं तब यह अद्भुत साम्प्रदायिक सद्भावना और भी विस्मयकारी लगती है।

भारत ने 1857 का संग्राम सम्पूर्ण एकता से लड़ा था।

10 मई 1857 को आरम्भ यह संघर्ष दो वर्ष चला। इस क्रान्ति का दूसरा महत्पूर्ण पक्ष था देशवासियों का मुग़ल बादशाह को अपना प्रमुख मानना। इस बात पर हिन्दू मुसलमान प्रत्येक की सहमति थी कि देश का बादशाह मुग़ल सम्राट ही हो। जब मेरठ छावनी के सैनिकों ने 10 मई को विद्रोह का शंखनाद किया तब उनका प्रथम नारा था 'दिल्ली चलो'। यह किसी सलाह – मशवरे का नतीजा नहीं था, अपितु एक भारतीय सैनिक की स्वाभाविक प्रतिक्रिया थी। जहां कहीं विद्रोह हुआ हर जगह मुग़ल सम्राट के प्रति वफादारी ही सामने आई।



कानपुर में नाना साहब ने विद्रोह की कमान थामी। उन्होंने स्वयं को पेशवा घोषित कर दिया। मराठों और मुग़लों के बीच की दूरी तो ऐसे भुला दी गई मानो कभी थी ही नहीं। नाना साहब ने स्वयं को बिना हिचकिचाहट मुग़ल दरबार का सूबेदार घोषित किया। उनके अनुसार देश का असली शासक दिल्ली का बादशाह ही था।



इस संग्राम ने देश की प्रेमपूर्ण साम्प्रदायिक सह–अस्तित्व की अदभुत मिसाल कायम की।

The Rising of 1857 and Communal Harmony

The Rising of 1857 is hailed as the first war of Independence. It was marked by a remarkable sense of unity among the Hindus and the muslims of India in this period and the deep loyalty which the people felt for the Moghul Crown.



This freedom from communal feeling was not the result of any special effort on the part of the leaders. There is no indication whatsoever that the leaders of 1857 made any conscious attempt for this. Hindu-Muslims had developed friendly relations on a permanent basis as a result of the common life of centuries. There was, therefore, no occasion or need to make any appeal for unity for a particular cause. When one remembers that it was a time of high feelings and passionate excitement this absence of any communal conflict becomes even more significant. One may safely conclude that before the days of British rule, there was no such thing as the Hindu-Muslim problem in India.

Even before 1857 the British had tried to introduce the principle of 'divide and rule'. In the dispatches of the Directors of the Company it is again and again said that a distinction must be drawn between Hindus and Muslims. They felt that no reliance could be placed on the Muslims, as their loyalty was open to question.

India faced the trial of 1857 as a united community.

The movement started on May 10, 1857, and continued for about two years.

Another important fact which attracts our attention during this uprising is the way in which Muslims and Hindus without doubt or debate looked upto Delhi and Bahadur Shah. There was unanimous and spontaneous agreement that he alone had the right to become the Emperor of India. When on the 10th of May the army rebelled at Meerut, their first cry was 'March to Delhi'. This was not the result of debate or discussion but the spontaneous reaction of the common soldier. Whenever there was a revolt in any cantonment, the same thing happened again and again. Even where the army could not reach Delhi, they all proclaimed their allegiance to the Moghul Emperor.



In Kanpur, Nana Saheb played a leading part in the revolt. He also declared himself as the Peshwa. The story of the old conflict between the Marathas and the Moghuls was, however, forgotten and he did not for a moment hesitate to declare himself a Subadar or Governor of the Moghul Court. The real ruler, he proclaimed, was the Emperor of Delhi.

रेलवे और विद्रोह

भारत में रेल पहली बार बम्बई से थाणे तक 16 अप्रैल 1853 को चली। अगले वर्ष 15 अगस्त 1854 को ईस्ट इण्डिया कम्पनी की पहली रेल ने हावड़ा से हुगली का 24 मील (38 कि.मी.) का सफ़र तय किया। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारत में रेलवे की स्थापना का बहुत बड़ा जश्न मनाया जिसमें कम्पनी के प्रशासक, रेलवे से जुड़े इंजीनियर, स्थानीय जनता, विदेशी लोग सभी शामिल हुए। यह कार्यक्रम बर्दवान में हुआ।



आने वाले वर्षों में धीरे–धीरे रेलवे के काम में प्रगति होती रही और नई नई लाइनें बन गईं।

इस संदर्भ में यह महत्वपूर्ण है कि विद्रोह की आग को बुझाने में यह रेलवे तंत्र कितना सहायक हुआ और शासन के प्रतीक के रुप में इसे नष्ट करने में विद्रोहियों ने कितनी तत्परता दिखाई।



यह तो स्वाभाविक ही था कि कम्पनी ने विद्रोह के विषय में कम से कम बातें सामने आने दीं, केवल अंग्रेज़ों की वीरता और भारतीयों की बर्बरता को बढ़ाचढ़ा कर प्रस्तुत किया। अपनी क्रूरता और अत्याचारों का उन्होंने कहीं वर्णन नहीं होने दिया।

ईस्ट इण्डियन रेलवे के अधिकारियों ने अपने शेयरधारकों को यह बताया कि सिपाही विद्रोह में कुछ जानें अवश्य गई हैं परन्तु रेलवे को कोई विशेष क्षति नहीं पहुंची है।

वास्तविकता तो यह है कि विद्रोहियों ने रेलवे तंत्र के महत्व की समझते हुए उसे नष्ट करने के प्रयासों में कोई कमी नहीं छोड़ी, जिसके फलस्वरुप रेलवे की प्रगति कुछ साल पीछे हो गई। विद्रोहियों ने अनेक रेलवे लाइनें, टेलिग्राफ लाइनें, पुल, रेलगाड़ियां आदि नष्ट कीं।

राजा कुँवर सिंह के नेतृत्व में विद्रोहियों ने जगदीशपुर, बिहार में आरा में सोन नदी पर बनने वाले पुल को पूरा नष्ट कर दिया। करमनासा नदी का पुल भी तोड़ दिया गया। पुल बनाने वाले मज़दूर भाग गए और स्टोर और वर्कशाप भी विद्रोहियों द्वारा लूट लिये गए।

दूसरी तरफ विद्रोह को दबाने में अंग्रेज़ शासकों को रेलवे से खूब सहायता मिली। सैन्यबलों की गतिविधियां रेल यात्रा द्वारा तेज़ हो गईं। इस सन्दर्भ में एक मज़ेदार घटना का उल्लेख मिलता है। सैन्यदल लेकर कमाण्डिंग अफ़सर लेफ्टिनेंट कर्नल नील हावड़ा पहुंचे जहां ट्रेन छूटने ही वाली थी। समय के पाबन्द स्टेशन मास्टर ने इन सैन्यबलों और अधिकारियों के लिए ट्रेन को रोकने से मना कर दिया। क्रोधित होकर ले. कर्नल नील स्टेशन मास्टर को उन्हीं के कमरे में बन्द कर दिया और ट्रेनड्राईवर को अपने आदेशानुसार चलने को कहा।



ब्रिटिश अधिकारियों ने यदि रेलवे तंत्र को विद्रोह को कुचलने में प्रयोग किया तो विद्रोहियों ने भी शोषण और अत्याचार के विरुद्ध इसे नष्ट करने की जी तोड़ कोशिश की।

Railways and the Uprising

The first train ran from Bombay to Thane on 16 April, 1853. A year later, on 15 August, 1854, the first train of the East Indian Railway ran out of Howrah for Hooghly, 24 miles (38 km) away. Both these events were celebrated with great gusto by the East India Company's British administrators in India, engineers who brought about this revolution in transportation and the public in general, both native and foreign.

The inaugural ceremony of East Indian Railway was organised in Burdwan with great pomp and splendor for the Governor General himself was scheduled to declare the Railway open. But Lord Dalhousie contented himself with attending a benediction at Howrah station, unwilling to risk the journey to Burdwan due to indisposition.

By 1857, the line from Bombay had been opened up to Kalyan and had progressed from Howrah 85 miles (135 km) up to Raniganj. At the end of 1875, the total length of railways was 288 miles (461 km). The Burdwan-Rajmahal line was under construction and plans were afoot to extend it up to Mirzapore, Allahabad and Jubbulpore, where it was intended to form a junction with GIP Railway. A line from Delhi to Agra was also on the anvil.

In the light of our present knowledge of the potential of Indian railways as the bulwark of the country's defence, as well as its vulnerability as the symbol of state power, it is worth pondering whether, in those early years, the colonialists realised ~ and utilised ~ the power of the railways to crush the revolt, and also whether the mutineers, and the local populace which supported them, realised the potential of this new form of transport sufficiently to sabotage it and thus cripple the efforts of the rulers to restore order.

As might be expected, the British government and British chroniclers of the Mutiny played down the successes and strategy of the natives and highlighted tales of valour of the British soldiers, and the cowardice or cruelty of the natives. Governor-General Lord Canning had imposed Press censorship to prevent Indian newspapers from spreading information that might reveal that the East India Company had lost control of the situation. The British publicised only those reports that presented the British army's efforts and its own administration in a favourable light.

The Board of Directors of the East Indian Railway reported to its shareholders that, while the company had suffered from the Mutiny and lost some valuable lives, it had not sustained that serious amount of damage, apart from some delay in completion of work.

But there is no doubt that the fledgling railways in India felt the brunt of the revolution. In fact, the construction of EIR's lines was delayed by two to three years and new projects had to be held back. The mutineers and their civilian supporters targeted the railways, which they realised was a powerful tool in the hands of the rulers, and caused extensive damage, cutting telegraph wires, smashing bridges and attempting to derail trains.

Mutineers under Raja Kunwarsingh of Jagdishpur, Bihar, raided the bridge under construction over the Sone at Arrah and damaged it completely. The bridge at Karamnasa was also damaged. The workforce ran away and storehouses and workshops were plundered and burnt.

Despite its short length, the railway became useful for quelling the rebellion. When British reinforcements from Madras landed in Calcutta, they used the railway up to Raniganj. The journey was described as tedious but not unpleasant, compared to the clumsy, cracking, lumbering bullock wagons, used for the remaining part of the journey. An amusing incident is related in this connection. The Commanding Officer Lt. Col. Neil proceeded straight to Howrah where a train was about to leave. The stationmaster, who was a stickler for punctuality, refused to detain the train for the troops to board. Thereupon Neil arrested and locked up the stationmaster in his own room, assumed control of operations and ordered the driver to run the train at his behest.

Would it have made a difference to the British authority if the railways had been commissioned earlier?

This point was debated in an article in Railway Times of 10 October, 1897. The conclusion was it is idle, therefore, to speculate on what might have been had all the circumstances under which the mutiny broke out been changed.

स्त्री शक्ति और अठारह सौ सत्तावन

ऐसी क्रांतियां कितनी हैं, जिनमें स्त्रियों की भूमिका पराक्रम की प्रेरणा देने की नहीं, स्वयं पराक्रम की प्रेरणा रही हो, जिनमें स्त्रियों की भूमिका लड़ने तक नहीं, लड़ाई की रणनीति और स्वरुप तय करने तक व्याप्त हो ?1857 की क्रांति वह विलक्षण ऐतिहासिक घटना है, जो हमारा परिचय एक ऐसी 'सामाजिक प्रगतिशीलता' से करवाता है, जिसने लक्ष्मीबाई, हज़रत महल, झलकारी बाई और उदा देवी जैसी स्त्रियां संभव कीं। दुनिया को बताता है कि कैसे भारतवर्ष में स्त्री –सबलीकरण के मुहावरे के जन्म के पहले कुछ ऐतिहासिक प्रक्रियाएं ऐसा सबलीकरण संभव कर रही थीं, और तब शायद हमारी वर्तमान पीढ़ी उन प्रक्रियाओं और इन स्त्री–नेताओं को तनिक कृतज्ञता के साथ स्मरण कर सकें।



'महारानी' और 'बेगम' बनने के पहले क्या वास्तविक सामाजिक पृष्ठभूमि थी लक्ष्मीबाई और हज़रतमहल की ?प्रत्यक्ष रुप से अपनी–अपनी रियासतों के लिए लड़ रही इन स्त्रियों की लड़ाई का अंतर्निहित अर्थ क्या था?सिपाहियों के बिफरे क्रोध के बावजूद 'सभ्य युद्ध' के नियमों का पालन करने के उनके आग्रह का अर्थ क्या था?ऐसे आग्रह करके वे प्रतिक्रियावादी सामाजिक विचारों को पुष्ट कर रहीं थीं क्या?राजनीतिक प्रक्रिया में स्त्रियों की भागीदारी सुनिश्चित करने वाला बिल पिछले बारह साल से जातिवादी राजनीतिके चपेट में है– इतना याद कर लें तो झलकारी बाई और उदा देवी के पराक्रम के प्रतीकात्मक और सैद्धांतिक महत्त्व का भी कुछ अनुमान किया जा सकेगा।

भारत के प्रथम स्वाधीनता संग्राम में महिलाओं की भागीदारी सामाज के प्रत्येक वर्ग में पाई गई, चाहे वह गांव में बसे किसान की पत्नी हो, कम्पनी राज में सिपाही की पत्नी हो अथवा रानी लक्ष्मीबाई, बेगम हज़रत महल हों। क्रांति के इस ऐतिहासिक पर्व में इनका योगदान अविस्मरणीय है।

तत्कालीन सामाजिक परिवेश को ध्यान में रखकर इन महिलाओं की असाधारण वीरता वास्तव में सराहनीय है।

1857 का विद्रोह 'असफल' था– यह कहने के पहले याद कर लेना चाहिए कि विद्रोह ने कंपनी राज का खात्मा तो कर ही दिया। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि इस 'असफल' विद्रोह की स्मृतियां लोकचित्त ने किन रुपों में सुरक्षित रखीं । इन रुपों के प्रमाण गीतों, कथाओं और किंवदंतियों में अब तक सुरक्षित है।

Women Power – 1857

How may revolutions are there in the world where women not only provide inspiration but are themselves inspiration to valour? How many women are recorded in history who not only fought valiantly but prepared the strategy of the fight too? 1857 is one such unique historical event which introduces us to the socially empowered and developed world of Rani Lakshmi Bai, Jhalkari Bai, Begum Hazrat Mahal, Uda Devi and many such illustrious women. The events of 1857 tell us how history was shaping women empowerment in India and the present generation needs to understand those socio-political times, which made the process remarkable. It is then only that they will learn to revere these great, brave women confined to the pages of history.

Before becoming the queen of Jhansi and the Begum of Oudh what were the social backgrounds of Rani Lakshmi Bai and Begum Hazarat Mahal? What was the inner meaning of their struggle, outward meaning obviously being their brave attempts to save their kingdoms from annexation?

The legendary bravery of these women belonging to various sections of society, but united in their strength is an eye-opener to us considering the conditions prevailing in India at that time.

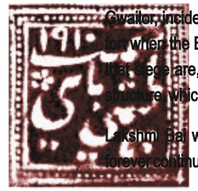
The British had done every possible damage to the socio-eco-political base of our country and the 1857 uprising was the result of the brewing discontent and seething anger on the part of Indians, be it the ruling class or the illiterate masses.

In this context, women played a remarkably significant role in the movement leaving their eternal imprints on the sands of time, and celebrated till date through folklore and legends.

झांसी की रानी लक्ष्मी बाई



झांसी के राजा गंगाधर राव की 1853 में मौत के बाद अंग्रेज़ों ने उनके दत्तक पुत्र दामोदार राव को उत्तराधिकारी मानने से इनकार कर दिया। 1857 में झांसी में भी क्रांति हुई अनेक अंग्रेज़ मारे गए और गंगाधर राव की विधवा लक्ष्मीबाई ने खुद को शासक घोषित कर दिया। 1858 में अंग्रेज़ी सेना ने झांसी पर धावा बोल दिया। 1400 सैनिकों के साथ लक्ष्मीबाई दत्तक पुत्र को कंधे पर बांध लड़ाई में कूद पड़ी। दो हफ्ते तक भयंकर युद्ध चला और 3 अप्रैल 1858 को सर रोज़ ने झांसी पर कब्ज़ा कर लिया अंग्रेज़ लक्ष्मीबाई को नहीं पकड़ पाए। लक्ष्मीबाई ग्वालियर के पास कालपी जा पहुंची जहां उन्हें तात्या टोपे मिले। दोनों ने ग्वालियर कूच किया। ह्यूज रोज भी बढ़ा और उसने जून 1858 में ग्वालियर पर कब्जा कर लिया।



बाई साहब (रानी लक्ष्मी बाई) ने जैसे ही हकीकत को समझा वैसे ही सहस्त्र बिच्छुओं के डंक मारने के समान उन्हें दुःख हुआ। पन्द्रह सौ विलायती अर्थात मुसलमान अरब, जो बहुत दिनों से उनके यहां नौकर थे, उन्हें लेकर तलवार खींचकर वे तुरन्त ही किले से नीचे उतरीं और बड़े दरवाजे से दक्षिण की ओर चल दीं। गोरे शहर में आ गए थे। उनकी तलवारें भी म्यानों से बाहर निकल आई थीं। सबके पीछे से चलते हुए बाई साहब सेना के मध्य से होकर तलवार लिए आगे बढ़ रही थी। गोरे और विलायती लोगों की तलवारों में गांठ पड़ते ही चारों ओर भीषण दृश्य उपस्थित हो गया कि उसकी उपमा केवल महाभारत के युद्ध से ही दी जा सकती है। सौ तक गिनती गिनने में देर लगेगी, परन्तु जोश में भरे हुए, विलायतियों (मुसलमान अरब) को सैकड़ों गोरे मारने में उतनी भी देर न लगी। बाकी जो बचे थे, वे शहर में इधर–उधर भागकर घरों और पेड़ों की आड़ से बन्दूकें तानने लगे। पीछे से गोरे लोग आ रहे थे, उन्होंने भी तलवार न चलाकर दूर से ही गोलियां मारनी शुरू कीं। उस समय बाई साहब के साथ एक 75 वर्ष का वृद्ध और पुराना सरदार था। वह आगे आकर बाई साहब का हाथ रोक कर कहने लगा, 'महाराज, इस समय आपको आगे जाकर गोली का शिकार होना व्यर्थ है। गोरे लोग इमारतों की आड़ लेकर गोलियां चला रहे हैं। सैकड़ों गोरे शहर के अन्दर आ गए हैं। इसलिए शहर के सब फाटक उन्होंने खोल दिए हैं। इस समय लड़ने से कुछ हासिल नहीं। आप किले में जाकर दरवाजा बन्द करके फिर कोई युक्ति सोचें। हमें समय को फिर से लौटा लाना है।'



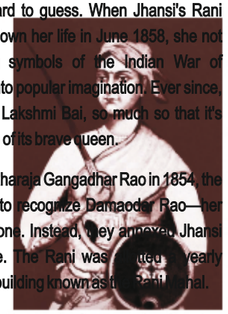
इधर बाई साहब रात के बारह बजे सब तैयारी करके किले के बाहर निकलीं। मोरोपन्त ताम्बे आदि जितने सगे–सम्बन्धी थे, वे सब भी हथियारबन्द होकर घोड़े पर सवार होकर साथ हो गए। हरेक की कमर में मोहरें बंधी थीं। खजाने में जो कुछ अर्थ था उसे हाथी पर लादा कर ले गए। साथ में दो सौ पुराने और जान पर खेल जाने वाले सरदार थे। इसके अलावा अंग्रेज़ों के छक्के छुड़ाने वाले एक हज़ार दो सौ विलायती बहादुर भी चल रहे थे। बाई साहब पाजामा, बूट पहने पुरुष वेष धारण किए हुए थीं और हरबे–हथियार से पूरी तरह लैस थीं। बाई साहब जिस घोड़े पर सवार थीं वह एकदम सफेद था। ढाई हजार रूपए में खरीदा गया था और राजरत्न के समान ही उसका आदर था। उस घोड़े पर बैठकर पीछे से रेशमी दुपट्टे से अपने बारह वर्ष के दत्तक पुत्र को बांधकर और साथ में केवल एक रूपये की रेज़गारी लेकर महारानी बाहर निकलीं। उस वीरांगना का साहस सराहनीय है।



रानी लक्ष्मीबाई बहादुरी से लड़ते हुए शहीद हो गईं और इतिहास में अमर हो गईं।

In Jhansi, a heroic legacy endures

Jhansi, nestled in the southwestern tip of Uttar Pradesh, is perhaps one of the few places in today's India, that still identifies closely with events that took place almost 150 years ago. The reason isn't hard to guess. When Jhansi's Rani Lakshmi Bai, after fighting the British, laid down her life in June 1858, she not only became one of the most enduring symbols of the Indian War of Independence, she also catapulted Jhansi into popular imagination. Ever since, Jhansi's name has been synonymous with Lakshmi Bai, so much so that it's difficult to think of Jhansi without also thinking of its brave queen.



After the death of Lakshmi Bai's husband, Maharaja Gangadhar Rao in 1854, the British refused to accept the Rani's claims to recognize Damaodar Rao—her adopted son – as the rightful heir to the throne. Instead, they annexed Jhansi under the newly formed Doctrine of Lapse. The Rani was [illegible] yearly pension of Rs.60,000 and sent off to live at a building known as the Rani Mahal.

Gwalior, incidentally was where the Rani met her end, after escaping from her fort when the British forces laid siege to it in the summer of 1858. Memories of that siege are, in fact, liberally scattered inside the Jhansi fort – an imposing structure which lies a short walk away from the Government museum.



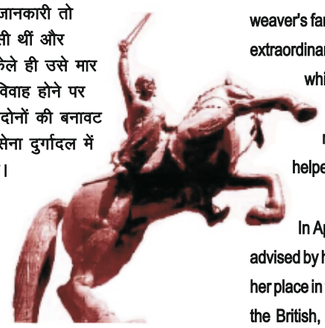
Lakshmi Bai will always remain an iconic figure, about whom balladeers will forever continue to sing – *"Khoob lari mardani woh toh Jhansi wali Rani thi"*.





झलकारी बाई

झांसी की झलकारी बाई की कहानी भी अद्भुत शौर्यगाथा है। महारानी लक्ष्मीबाई की स्त्री सेना दुर्गादल की अत्यन्त महत्वपूर्ण सदस्या थी झलकारी बाई। उनका जन्म बुन्दलेखन्ड के एक निर्धन जुलाहा परिवार में हुआ था। उनके बचपन की विशेष जानकारी तो उपलब्ध नहीं है परन्तु यह सब जानते हैं कि वे अत्यन्त साहसी थीं और जंगल में लकड़ियां बीनते समय बाघ का सामना होने पर अकेले ही उसे मार दिया था। रानी लक्ष्मीबाई की सेना के एक सिपाही पूरन से विवाह होने पर वे रानी से मिली और यह भी एक आश्चर्यजनक तथ्य है कि दोनों की बनावट में भी अद्भुत समानता थी। झलकारी बाई भी रानी की स्त्री सेना दुर्गादल में भर्ती हो गई और अनेक महिलाओं को युद्ध का प्रशिक्षण दिया।



अप्रैल 1858 में जब सर ह्यू रोज़ की सेना झांसी के किले में प्रवेश करने में सफल हो गई तो रानी के निकट सहयोगियों में उनसे भाग जाने को कहा। झलकारी बाई ने रानी की पोशाक पहन ली और वीरता से अंग्रेज़ों का सामना करती रहीं। जब अंग्रेज़ों को सच समझ में आया तो झलकारी बाई पकड़ ली गई और कहा जाता है कि उन्होंने निर्भीकता से अंग्रेज़ों से कहा कि वे फांसी पर चढ़ना चाहेंगी। सर ह्यू रोज़ इनके साहस से इतना प्रभावित हुए थे कि बरबस बोल पड़े "यदि भारत की महिलाओं का एक छोटा सा हिस्सा भी इनके समान वीर हो तो अंग्रेज़ों को शीघ्र ही भारत छोड़ना पड़ेगा।"

Jhalkari Bai

The story of Jhansi's other heroine, Jhalkari Bai, is a unique one. Jhalkari Bai, who rose to become a key member of Lakshmi Bai's all women army, Durga Dal, was born into a poor weaver's family in Bundelkhand. Not much is known about her early life except that she was an extraordinarily brave girl, who single handedly killed a tiger that she encountered in the jungle while collecting firewood. After her marriage to Puran, a soldier in Lakshmi Bai's army, she came in contact with the Rani, who was struck by her close physical resemblance to herself. Jhalkari Bai was inducted into the Rani's army, where she helped train many other women into warfare.

In April 1858, after Sir Hugh Rose's forces managed to enter Jhansi fort, the Rani was advised by her close aides to escape. Jhalkari Bai volunteered to dress up like the Rani and take her place in the battle. When Jhalkari's identity was eventually revealed and she came up before the British, she unflinchinginly told them—if popular accounts are to be believed—that she would prefer to be hanged. Rose, reportedly, was so impressed by her courage that he remarked that "even if a fraction of Indian women were like her, the British would soon have to leave India."





भारत का स्वाधीनता आंदोलन हमारे देश की जनता का महान राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष था। अंग्रेज़ों की 'ईस्ट इण्डिया कंपनी' ने भारत की जनता में फूट डालकर तथा छल–कपट करके अपनी शक्ति बढ़ाई। उन्होंने भारत के राजाओं और नवाबों को आपस में लड़वाया और कभी एक पक्ष तो कभी दूसरे पक्ष की मदद करके स्वयं बंदर–बांट की।

भारत में ब्रिटिश शासन का प्रारंभ सन् 1757 ई. से माना जा सकता है, जब ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी की सेना ने बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला को प्लासी की द्वितीय लड़ाई में परास्त करके अपने राज्य का विस्तार करना शुरु किया। अंग्रेज़ों ने छल–कपट, पैशाचिक हिंसा तथा बर्बर–बल प्रयोग द्वारा उन्नीसवीं सदी के अंत तक समूचे भारत पर अधिकार करके उसे अपना उपनिवेश बना लिया। ब्रिटिश पूंजीपतियों, व्यापारियों तथा गोरे शासकों ने भारत की संपदा को लगभग दो सौ वर्षों तक दोनों हाथों से लूटा। उन्होंने भारतीय किसानों, आदिवासियों, मज़दूरों, कारीगरों तथा बुद्धिजीवियों का निर्मम शोषण किया। किसानों व आदिवासियों की भूमि छीनी गई और उनके ऊपर ज़ालिम ज़मींदारी प्रथा लाद दी गई। ईस्ट इंडिया कंपनी ने भू–राजस्व में कमरतोड़ वृद्धि की। इस अवधि में जनता को अकालों व महामारियों का सामना करना पड़ा।

भारत में ब्रिटिश शासन का स्वरुप औपनिवेशिक, शोषक तथा आतंकवादी था।

ब्रिटिश शासन के प्रारंभिक दिनों से ही भारत के किसानों, खेत मज़दूरों, गिरिजनों, आदिवासियों, कारीगरों, जमींदारों, पदच्युत सामंतों, सैनिकों और बुद्धिजीवियों ने अपने खेत–खलिहान, नदी–नाले, वन–पर्वत, उर्वर भूमि तथा परंपरागत उद्योग व व्यापार की रक्षा के लिए संघर्ष किए। अंग्रेज़ों ने भारत के किसी भी क्षेत्र या प्रदेश पर सरलतापूर्वक कब्जा नहीं कर लिया था। हर क्षेत्र की जनता ने अपनी धन–धरती पर हमारे देश की रक्षा के लिए हथियार उठाए थे। पराधीनता से पूर्व हर क्षेत्र की धरती पर हमारे देश के स्वतंत्रताप्रेमी योद्धाओं का रक्त बहा था। ब्रिटिश शासन के प्रारंभिक सौ वर्षों में अनेक स्थानीय और परंपरागत विद्रोह हुए। इन विद्रोहों की चरम परिणति सन् 1857 ई. की क्रांति में हुई। यह क्रांति हर दृष्टि से भारत का प्रथम स्वाधीनता संग्राम था। इसने ब्रिटिश शासन की नींव हिला दी थी। इस क्रांति की व्यापकता, इसमें आम जनता की क्रांतिकारी भागीदारी तथा दावानल की तरह बढ़ रही सशक्त क्रांतिकारी जनचेतना ने ब्रिटिश साम्राज्यवादियों की नींद हराम कर दी थी। सन् 1857 की यह महान् जनक्रांति भारत के राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन के दौरान क्रांतिकारियों की ही नहीं, बल्कि अन्य स्वाधीनता सेनानियों की प्रेरणा स्रोत बनी रही।

क्रांतिकारी आंदोलन मुक्ति संघर्ष की दूसरी धारा का प्रतिनिधि था। क्रांतिकारी 1857 की जनक्रांति के समान सेना द्वारा समर्थित जनक्रांति करना चाहते थे।

इस जुझारु जन–आंदोलन का हमारे देश के शिष्ट साहित्य और लोक साहित्य पर व्यापक प्रभाव पड़ा। कवियों एवं लोककवियों ने अपनी रचनाओं से स्वाधीनता सेनानियों को प्रोत्साहित किया और स्वाधीनता सेनानियों ने कवियों तथा लोककवियों व लोकगीतकारों को प्रभावित किया। हिन्दी प्रदेशों तथा अन्य प्रदेशों के लोकगीतकारों ने स्थानीय एवं राष्ट्रीय नेताओं के संघर्षों, उनकी यातनाओं और शहादतों का गौरवगान किया।

राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन का प्रभाव सुदूर गांवों तक पहुंचा। निरक्षर तथा पिछड़ी और दबी हुई जनता के हृदय में राष्ट्रीयता, देशप्रेम तथा स्वतंत्रता की प्रबल भावना जागृत हुई। राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष का शिष्ट या नागर साहित्य के साथ–साथ लोक साहित्य पर व्यापक प्रभाव पड़ा। राष्ट्रीय मूल्यों की देश की विभिन्न बोलियों में रचित लोकगीतों में व्यापक प्रभाव एवं प्रभावी अभिव्यक्ति हुई।

लोककवि, शिष्ट कवियों की अपेक्षा अधिक निर्भीक थे और क्रांतिकारी थे। लोककवियों ने परम्परा से हटकर लोकगीतों को राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष का नया विषय व नया आयाम दिया। उन्होंने लोक साहित्य का विकास किया और स्वाधीनता आंदोलन को अत्यधिक व्यापक व शक्तिशाली बनाने में सहायता की।

सन् 1857 की क्रांति में भोजपुरी क्षेत्र की जनता ने अंग्रेज़ों को अनेक लड़ाइयों में परास्त किया था। बाबू कुंवर सिंह, मंगल पांडे आदि देशभक्त वीर इस क्रांति के नेता थे। इस क्रांति ने आम जनता को उद्वेलित व प्रभावित किया था। इन वीरों की सराहना में अनेक लोकगीत रचे गए। इन लोकगीतों ने जनता को स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा दी और जन–मानस में क्रांतिकारी चेतना जागृत की। भोजपुरी क्षेत्र की जनता बाबू कुंवर सिंह को प्रतिवर्ष होली के अवसर पर इस गीत को गाकर स्मरण करती है:

बाबू कुंवर सिह तोहरे राज बिनु अब न रंगइबो केसरिया
इतते अइले घेरि फिरंगी, उत ते कुंवर दुई भाई
गोला बारुद के चले पिचकारी, बिचवा में होत लड़ाई
बाबू कुंवर सिंह तोहरे राज बिनु अब न रंगइबो केसरिया!

इस स्मरण के बाद फाग गाने वाले गाते हैं:

बंगला पै उड़ेला अबीर हो लाला बंगला पै उड़ेला अबीर
हो बाबू, अहो बाबू कुंवर सिंह तेगवा बहादुर
बंगला पै उड़ेला अबीर!

भोजपुरी क्षेत्र के ग्रामीण बालक व बालिकाएं 'बाबू कुंवर सिंह के नीलका बछेड़वा, पीयले कटोरवन दूध' शीर्षक लोकगीत गाकर यह प्रमाणित करते हैं कि कुंवर सिंह का शौर्य व उनकी कीर्ति जनता के हृदय में बस गई थी। इस क्षेत्र के धोबी कपड़ा धोते हुए यह भाव व्यक्त करते है कि यदि सन् 1857 की क्रांति में लोग बाबू कुंवर सिंह का साथ देते तो देश में अंग्रेज़ों का राज्य कायम नहीं होता'

ओहि दिन संगना उन्हकर केहूं न दिहले,
जगदीसपुर पर ना होइत फिरंगीया राज।

इसी प्रकार एक लोकगीत में बाबू कुंवर सिंह के अभियान का वर्णन करते हुए कहा गया है:

बाबू कुंवर सिंह पच्छिम से जब पांयत कइले,
पयना में डेरा गिरवले ना।

बाबू कुंवर सिंह की प्रशस्ति में आज भी अनेक बिरहे और जांत के गीत गाए जाते हैं। एक लोकप्रिय बिरहा में एक वृद्ध व्यक्ति अपने बच्चों को बताता है कि वृद्ध कुंवर सिंह ने कैसे, कब और क्यों युद्ध किया। वह कहता है कि जब धन, धर्म और आबरु पर विपत्ति आई थी, मराठे और सिख जूझ मरे थे, पेशवा गुलाम और बादशाह कंगाल हो गया था, भारत का पौरुष क्षीण हो रहा था, बंदूकों में जंग लगी थी, तलवारें हंसिया बन गई थी, ऐसे विषम समय में अस्सी वर्ष के बाबू कुंवर सिंह ने तलवार पकड़ी थी। ऐसे कुंवर सिंह ने, जिनका शरीर वृद्धावस्था के कारण कँपता था, जिनके बत्तीसों दांत गिर गए थे, फिरंगियों से घमासान युद्ध किया था :

बबुआ, ओहि दिन दादा लेले तरुअरिया हो ना।

दांत पीसते हुए गाए जाने वाले एक गीत में कुंवर सिंह के भाई अमर सिंह को युद्ध में शामिल होने के आह्वान का और उनके इस दुख का कि इस युद्ध के समय वह वृद्ध हो गए थे, मर्मस्पर्शी चित्रण हुआ है:

लिखि लिखि पतिया भेजलन कुंवर सिंह
ए सुन अमरसिंह भाय हो राम।

स्वतंत्रता संग्राम में कुंवर सिंह के शौर्य का वर्णन करते हुए एक अन्य भोजपुरी लोकगीत में कहा गया है कि इंद्र भी यह युद्ध देखकर भाग गए थे'

खपाखप छुरी चले, छपाछप छुरी कटे
टहकत सोनिया के धारे रे नू
जैसे बहे नदी के धार रे नू
इंद्र दूर से भागिलेल, यमराज दौड़ल,
खप्पड़ लेई डाकिन–नाचे लागिन रे नू
झूमत कुंवर सिंह बांका रन बीच
जैसे हाथि कई कोपि सिंह डांकि फांदि बैठल रे नू।

एक अन्य लोकगीत में कहा जाता है कि बाबू कुंवर सिंह अंग्रेज़ों की चाल और उनके प्रलोभनों में नहीं आए। जब तक उनके शरीर में रक्त की बूंद थी तब तक वह स्वतंत्रता संग्राम जारी रखने को कृतसंकल्प थे :

The 1857 uprising played a significant role in giving a patriotic orientation to Indian national literature. It has supplied the Indian writers with dramatic incidents of suffering, struggle and sacrifice and noble patriotic themes.

This tradition of defiance and resistance to foreign rule is most valued heritage of our literature specially Hindi. It runs as an undercurrent through all Chhayavadi poetry, finds strong expression in the radical works of Prem Chand, inspired such novels as Dadda Comrade and Deshdrohi by Yashpal, Balchannama and Varun Ke Bete by Nagarjuna and Maila Anchal by Phanishvarnath Renu.

It has inspired innumerable folk songs. Folk art-forms in India have been the traditional media for approaching the masses. There is evidence to show that the organizers of the 1857 uprising skillfully and effectively used this art-form to arouse the people. These folk songs on 1857 not only realistically reflect the spirit of the 1857 days, but they are a valued part of our great national heritage. They contain our first noble patriotic poems and are thus a part of our national political heritage. The 1857 uprising was brutally suppressed and nearly a century of British terroristic rule followed when to sing of 1857 was to court jail and worse, and yet there are a larger number of folk songs available on 1857 than on any other national event of modern times. They contain the only available records on the outlook, sentiments and aspirations of the common people during the 1857 national uprising. They are thus valuable historical documents of our national movement.

The great leaders of the revolt, particularly Rani Lakshmi Bai and Kunwar Singh, have taken a cherished place in the consciousness of India as national heroes and have become the theme of numerous poems, folk songs and other literary works.

Subhadra Kumari Chauhan has immortalised the great Rani as she has voiced the popular emotion roused by this great woman in a ballad, which carries many familiar echoes of folk poetry.

Princely generations were in revolt; thrones trembled;
Old India filled again with the bloom of youth.
People realized afresh the value of their lost freedom;
Everyone was determined to oust the Firinghi.
The old sword flashed once more
In fifty-seven;
This the story we have heard
From the Bundelas who worship Shiva.
The Rani of Jhansi fought
Valorously and Well.

The immense popularity of this poem among Hindi speaking people owes much to the fact that it is in tune with the mass sentiment. The feelings that the revolt generated are described by Subhadra Kumari Chauhan in vivid stanzas:

In huts there was misery, in palaces injured pride;
In the hearts of brave soldiers there was pride of the past;
Nana was collecting all material for battle,
His sister, Laxmi Bai, openly hailed the goddess of War!
The sacrificial fires were lighted,
They had to recover their ancient glory;
This is the story we have heard
From the Bundelas who worship Shiva!
The palace provided the spark, the huts fanned it alive;
This was the flame of liberty hidden in the hearts of all;
The fires spread to Jhansi, to Delhi and Lucknow;
Meerut, Kanpur and Patna—all were afire.

The outstanding novelist of Hindi, Sri Vrindavan Lal Varma in the preface of his novel entitled Rani Laxmi Bai of Jhansi, states that the Rani uses the word "Swaraj" in a letter, which she wrote to Raja Mardan Singh of Banpur requesting him for help in the struggle against the British. She emancipated the women of Jhansi and made them fight shoulder to shoulder with their men-folk. In the novel she is represented as saying to Nana Sahib:

"The people are the real strength. I am convinced that this strength is endless…

Sri Vrindavan Lal Varma sums up his evaluation of the Rani in the following words: "The Rani fought for Swarajya, died for Swarajya and turned herself into a stone for the foundation of Swarajya."

Babu Kunwar Singh

Babu Kunwar Singh is another leader of the 1857 uprising who became a folk hero. His memory to the people of Bihar meant liberation from foreign thraldom. All that Kunwar Singh stood and fought for is portrayed in a very moving lullaby:

Oh Babua, that day our grandpa took up his sword
Oh Babua, to keep safe our pride and our plenty.
Our religion, our cows!
Oh Babua, to protect the rent-free lands of our widows!
And to protect our mothers and sisters from disgrace
Oh Babua, to defend the fair name of our fathers and grandfathers;
Oh Babua, when hour of calamity was upon us,
Oh Babua, that day our grandpa took up his sword!



Every year during the Holi (festival of colours) they sing of him and repeat this pledge:

O Babu Kunwar Singh
We shall dye no more our garments in sacred saffron—
Till your Raj comes again.

Novel, drama, essay, biography, criticism and long reflective poems came into vogue and in several cases a synthesis with the older forms was achieved. The emergence of the press helped the development and popularisation of the new forms.

This rich tradition of hatred for the rule of the foreigner found constant expression in folk songs. A Bhojpuri folk-song says that the frail bark of the foreigner now trembles helplessly in the angry waves:

बाबू कुंवर सिंह तेगवा बहादुर, आरा में धूम मचाई रे।
मुट्ठी भर सेना लैके कुंवर सिंह, फिरंगिया पर छाया गिराई।
कपतान लिखे मित्र कुंवर सिंह, आरा के सूबा बनाइब रें।
तेहफा देबों, इनाम देबो, तोहके राजा बनाइब रे।
बाबू कुंवर सिंह देले सनेसवा, मो से चली चतुराई।
जबतक रही रकतवा के बूंद मारग नई ददलाई रे।

एक बिरहा में जनता और कुंवर सिंह के इस दुख की अभिव्यक्ति हुई कि 1857 की क्रांति सफल नहीं हुई, देश स्वतंत्र नहीं हुआ और डुमराव के राजा आदि ने अंग्रेज़ों का साथ दिया:

एक तो तैं आस कइनी राजा डुमराव के
उ हो भाग चलले जैसे बनमां के खरहा।
कुल्ही गुनलका रामा, मिटिया में मिली गइले,
नाही लेवे पवनी हम सुराज।

मंगल पांडे सन् सत्तावन की क्रांति के प्रथम शहीद थे। बलिया जिले के चितबड़ा गांव के निवासी प्रसिद्धनारायण सिंह ने 'विद्रोह' शीर्षक अपनी रचना में क्रांतिवीर मंगल पांडे का गौरवगान इस प्रकार किया है :

जब सन्तावनि के रारि भइलि, बीरन के बीर पुकार भइल
बलिया का मंगल पांडे के, बलिबेदी से ललकार भइल।
'मंगल' मस्ती में चूर चलल, पहिला बागी मसहुर चलल
गोरनि का पलटनि का आगे, बलिया के बांका सूर चलल।
गोली के तुरत निसान भइल, जननी के भेंट परान भइल
आजादी का बलिबेदी पर, मंगल पांडे बलिदान भइल।
जब चिता–राख चिनगारी से, धुधकत अंगारी से
सोला नकलल, धधकल, फइलल, बलिया का क्रांति पुजारी से।
घर घर में ऐसन आग लगलि, भारत के सूतल भागि जगलि
अंगरेजन के पलटनि सगरी, बैरक से भागि चललि।

लोकगीतों की ही परम्परा से आधार लेते हुए सुभद्राकुमारी चौहान ने झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई की वीरता को अपनी कविता की पंक्तियों में अमर कर दिया है:

प्रसिद्ध साहित्यकार वृन्दावनलाल वर्मा झाँसी की रानी पर आधारित अपने उपन्यास में लिखते हैं कि लक्ष्मीबाई ने अपने एक पत्र में 'स्वराज' का उल्लेख किया है और बाल्यकाल के मित्र नाना को बताती है "जनमानस ही असली शक्ति है और यह शक्ति असीमित है।" लक्ष्मीबाई ने झाँसी की महिलाओं को अपने भीतर छिपी शक्ति का आह्वान करने की प्रेरणा दी तथा दुर्गा–दल की स्थापना की। वृन्दावनलाल वर्मा लिखते हैं – 'रानी स्वराज के लिये लड़ी, स्वराज के लिये वीरगति को प्राप्त हुई और स्वयं को स्वराज की नींव का पत्थर बना गई।"

मिर्जा असदुल्लाख़ान ग़ालिब उस दौर के प्रखर शायर थे और उनकी रचनाओं में उस दौर का दर्द और त्रासदी उभर कर आती है। उनकी डायरी में वह पूरा दौर दर्ज है जब 1857 की 11 मई को मेरठ से सवार दिल्ली पहुंचे और 20 सितम्बर 1857 जब अंग्रेज़ों ने दिल्ली पर दोबारा कब्ज़ा कर लिया। ग़ालिब ने उन दिनों की दिल्ली को शहर–ए–ख़ामोशाँ कहा है जब अंग्रेज़ों ने विद्रोहियों से बदला लेना शुरु किया और दिल्ली को लाशों के शहर में तब्दील कर दिया। 1857 की क्रांति का अध्ययन करने वालों के लिये मिर्ज़ा ग़ालिब की डायरी अत्यन्त महत्वपूर्ण शोध सामग्री है।

अवध के नवाब वाजिद अलीशाह भी कविहृदय व्यक्ति थे जिनकी रचनाएं आज भी जनमानस में प्रचलित हैं। उनका राज्य हड़प लिया गया तो कविता में उस दर्द का चित्रण हमें मिलता है। भावार्थ इस प्रकार है–

हमारे राजा को अंग्रेज़ ने देश निकाला दे दिया
बेग़मों को भी दुःख सहना पड़ रहा है,
संगीत भी खो गया है, आनन्द भी,
राजा को कलकत्ता भेज दिया गया है
अंग्रेज़ों ने हमारा कैसर बाग़ भी तबाह करा दिया
कोई उनका विरोध भी नहीं कर पा रहा है
हमारे लिये क्या सांत्वना है?
हमारे लिये क्या सहारा है?

1857 के दौर का विस्तृत चित्रण हमें साहित्य और लोकगीतों के माध्यम से मिलता है तो सामने वह छवि उभरती है जिसके प्रकाश में इस महासंग्राम का अध्ययन तथा स्मरण करते हैं। जनमानस की व्यथा, नेतृत्व का दर्द, वेश की चरम दुरवस्था सभी कुछ तो कह देता है उस युग का अमर साहित्य तथा लोक परम्परा।

भोजपुरी कवियों में मनोरंजन प्रसाद सिन्हा का विशिष्ट स्थान है। उन्होंने सन् 1921 के असहयोग आंदोलन के समय 'फिरंगिया' लोकगीत की रचना की। इसकी रचना रघुवीर बाबू की 'बटोहिया' नामक धुन पर की गई थी। बटोहिया की पहली पंक्ति को सामने रखकर मनोरंजन बाबू ने 'फिरंगिया' की पहली पंक्ति की रचना इस प्रकार की :

सुंदर सुघर भूमि भारत के रहे रामा,
आज उहे भइले रे फिरंगिया।

मनोरंजन प्रसाद सिन्हा ने इस रचना में भारतीय जंनता की गरीबी तथा ब्रिटिश शासन के शोषक स्वरूप का पर्दाफाश करते हुए अंग्रेज़ो को चेतावनी दी है कि वे कुनीति का मार्ग त्यागकर अच्छे काम करें अन्यथा दुखी–पीड़ित जनता की आह उन्हें भस्म कर देगी। लोककवि ने अंग्रेज़ों की खुशामद करने वालों की आलोचना करते हुए उन्हें नामर्द कहा और अमृतसर के जलियांवाला बाग हत्याकांड की निंदा की :

अन्न, धन, जन, बल, बुद्धि सब नास भइल,
कौनों के ना रहल निसान रे फिरंगिया।
जहवां थोड़े ही दिन पहिले ही होत रहे
लाखों मन गल्ला और धान रे फिरंगिया।
उहवे पर आज रामा मथवा पर हाथ धके
बिलखी के रोवे ला, किसान रे फिरंगिया।
चेत जाउ चेत जाउ भैया रे फिरंगिया ते,
छोड़ दे अधरम के पंथ रे फिरंगिया।
छोड़ के कुनीतिया सुनीतिया के बाह गहु,
भला तोर करी भगवान रे फिरंगिया।
एको जो रोऊवां निरदोसिया के कलपी ते,
तोर नास होई जाई सुन रे फिरंगिया।
दुखिया के आह तोर देहिया के भसम कै देई,
जरि भुनि होई जाइबे छार रेफिरंगिया।
मरदानपन अब तनिकों रहल नाहीं,
ठकुरसुहाती बोले रे फिरंगिया।
श्रात दिन करेले खुसामद सहेबवा के,
स्हेले विदेसिया के लात रे फिरंगिया।
टाजु पंजबवा के करि के सुरिया से,
फाटेला करेजवा हमार रे फिरंगिया।
भारत के छाती पर भारत के बच्चन के
ह्त रकतवा के धर रे फिरंगिया।
दुधमुंहा लाल सम बालक मदन सम,
तड़पि तड़पि देल जान रे फिरंगिया।



यह बात उल्लेखनीय है कि ब्रिटिश सरकार ने यह गीत जब्त कर लिया था। यह गीत कांग्रेस की जनसभाओं में सुनाया जाता था। इसे सुनकर हज़ारों व्यक्ति राष्ट्रीय आंदोलन में शामिल हुए।

The bark of foreigner is now reeling.
The country is sunk in poverty;
In midstream his bark reels.
Famine and disease increase in the land, The clouds of trouble rumble;
In the river of sorrow there are fathomless waters,
The winds of tyranny blow fiercely across the land.
The ruler-pilot is drunken-mad;
We appeal to him; but he says not a word.
O foreigner, your boat is doomed;
Your funeral procession begins on the river!

A great part of the literary output since then reveals a different spirit. Henceforth, the poets and writers may also be classified as leaders of thought in as much as they visualized literature as a formative process in the development of the nation. For them literature must play a role in awakening of the people to new consciousness. Sir Syed Ahmad Khan, Khwaja Altaf Hussain "Hali," Maulana Mohammad Husain "Azad," Dr. Nazir Ahmad, Maulana Shibli, Maulana Zakaullah, Chiragh Ali, Mohsinual Mulk and…

In 1857 itself the people viewed British rule with feelings of intense dislike and hatred. In a "Diary" of the revolt, edited by Sir John Metcalfe, Nawab Muniuddin Hasan Khan says:

"I wish to begin my account of the origin of the revolt with the statement that the British might think whatever they like about themselves. Indians considered them to be oppressors; and this feeling was further fanned by the incident of the incorporation of Oudh in the British Empire. This incident spread discontent among the soldiers first of all, most of whom came from this region. Then came the various events connected with the revolt. The peasants were weighted down under the terrible troubles. Many Indian States were ruined and fell. Many dynasties and huge cities were humbled into dust…Many innocent people were hanged and clouds of universal destruction swept over the country."



Mirza Asadullah Khan "Ghalib," the renowned Urdu poet has been accepted as the most representative poet of the culture and tradition of the period.

The entries in his diary begin with the arrival of the Meerut Sowars on 11 May 1857, and go up to September 20 when the British troops succeeded in overpowering the resistance of popular forces in Delhi. In some respects, this diary covers the developments up to the fall of Lucknow (July 1858).

Ghalib was naturally heartbroken at the sight of the "City of the Dead" (Shahr-I-khamoshan) as he called it. Ghalib has succeeded in imparting to us, even in this fragment, some of the dynamism of this great movement of national resistance and a glimpse of the new social forces that were involved. It is certainly an invaluable document for every conscientious student of the events of 1857.

वाजिद अली शाह

अवध के लोकप्रिय शासक, एक कोमल हृदय कवि भी थे। उनके राज्य को अंग्रेज़ों द्वारा हड़प लिया गया और उन्हें कलकत्ता निष्कासित कर दिया गया। वे 'जब छोड़ चले लखनऊ नगरी' तब व्यथित हृदय से यह उद्‌गार निकले "बाबुल मोरा नैहर छूटो ही जाए"।







Nawab Wajid Ali Shah

The revolt had released their pent up anger and energy and they had used it for the cause of India's freedom and progress to this day. This is the meaning and significance that Urdu writers have derived from the great revolt.

Oudh was annexed by the British on 7 February 1856, and its Nawab, Wajid Ali Shah, duly exiled. This song below portrays the event:

Our homeland, Hazrat, since your exile
looks utterly desolate,
Bereft of pomp and power is your majesty!
Lost is the game; gone the Khayal.
The Begums rode to a far exile;
Their homeland left forever.
The Angrez with his might and main
marched in to seize the land.
Not a soul said 'nay' to him:
Laid waste the Angrez our Kaiser Bagh;
For Calcutta left our King.
What solace left for us, what support!

If we study the writings of Sir Syed, Azad, Hali, Nazir Ahmad Shibli and Sharar in the light of these observations we shall see that they had awakened to the needs of the people and wanted to infuse them with hope. Hali's motto throughout was: "We must change with the time."



सिंहासन हिल उठा राजवंशों ने भृकुटी तानी थी,
बूढ़े भारत में आई फिर से नयी जवानी थी,
गुमी हुई आज़ादी की कीमत सबने पहचानी थी,
दूर फिरंगी को करने की सबने मन में ठानी थी।
चमक उठी सन सत्तावन में, वह तलवार पुरानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।

कानपुर के नाना की, मुँहबोली बहन छबीली थी,
लक्ष्मीबाई नाम, पिता की वह, संतान अकेली थी,
नाना के सँग पढ़ती थी वह, नाना के सँग खेली थी,
बरछी ढाल, कृपाण, कटारी उसकी यही सहेली थी।
वीर शिवाजी की गाथायें उसको याद जबानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।

लक्ष्मी थी या दुर्गा थी वह स्वयं वीरता की अवतार,
देख मराठे पुलकित होते उसकी तलवारों के वार,
नकली युद्ध–व्यूह की रचना और खेलना खूब शिकार,
सैन्य घेरना, दुर्ग तोड़ना ये थे उसके प्रिय खिलवार।
महाराष्ट्र–कुल–देवी उसकी भी आराध्य भवानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।

हुई वीरता की वैभव के साथ सगाई झाँसी में,
ब्याह हुआ रानी बन आई लक्ष्मीबाई झाँसी में,
राजमहल में बजी बधाई खुशियाँ छाई झाँसी में,
चित्रा ने अर्जुन को पाया, शिव से मिली भवानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।

उदित हुआ सौभाग्य, मुदित महलों में उजियाली छाई,
किंतु कालगति चुपके–चुपके काली घटा घेर लाई,
तीर चलाने वाले कर में उसे चूड़ियाँ कब भाई,
रानी विधवा हुई, हाय! विधि को भी नहीं दया आई।
निःसंतान मरे राजाजी रानी शोक–समानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।

बुझा दीप झाँसी का तब डलहौज़ी मन में हरषाया,
राज्य हड़प करने का उसने यह अच्छा अवसर पाया,
फ़ौरन फौजें भेज दुर्ग पर अपना झंडा फहराया,
लावारिस का वारिस बनकर ब्रिटिश राज्य झाँसी आया।
अश्रुपूर्ण रानी ने देखा झाँसी हुई बिरानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।

अनुनय विनय नहीं सुनती है, विकट शासकों की माया,
व्यापारी बन दया चाहता था जब यह भारत आया,
डलहौज़ी ने पैर पसारे, अब तो पलट गई काया,
राजाओं नव्वाबों को भी उसने पैरों ठुकराया।
रानी दासी बनी, बनी यह दासी अब महारानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।

छिनी राजधानी दिल्ली की, लखनऊ छीना बातों–बात,
कैद पेशवा था बिठुर में, हुआ नागपुर का भी घात,
उदैपुर, तंजौर, सतारा, कर्नाटक की कौन बिसात?
जबकि सिंध, पंजाब ब्रह्म पर अभी हुआ था वज्र–निपात।
बंगाल, मद्रास आदि की भी तो वही कहानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।

रानी रोयी रनिवासों में, बेगम ग़म से थीं बेज़ार,
उनके गहने कपड़े बिकते थे कलकत्ते के बाज़ार,
सरे आम नीलाम छापते थे अंग्रेज़ों के अखबार,
'नागपुर के ज़ेवर ले लो लखनऊ के लो नौलख हार'।
यों परदे की इज़्ज़त परदेशी के हाथ बिकानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।

कुटियों में भी विषम वेदना, महलों में आहत अपमान,
वीर सैनिकों के मन में था अपने पुरखों का अभिमान,
नाना धुंधूपंत पेशवा जुटा रहा था सब सामान,
बहिन छबीली ने रण–चण्डी का कर दिया प्रकट आह्वान।
हुआ यज्ञ प्रारम्भ उन्हें तो सोई ज्योति जगानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।

महलों ने दी आग, झोंपड़ी ने ज्वाला सुलगाई थी,
यह स्वतंत्रता की चिनगारी अंतरतम से आई थी,
झाँसी चेती, दिल्ली चेती, लखनऊ लपटें छाई थी,
मेरठ, कानपुर, पटना ने भारी धूम मचाई थी,
जबलपुर, कोल्हापुर में भी कुछ हलचल उकसानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।

इस स्वतंत्रता महायज्ञ में कई वीरवर आए काम,
नाना धुंधूपंत, ताँतिया, चतुर अज़ीमुल्ला सरनाम,
अहमदशाह मौलवी, ठाकुर कुँवरसिंह सैनिक अभिराम,
भारत के इतिहास गगन में अमर रहेंगे जिनके नाम।
लेकिन आज जुर्म कहलाती उनकी जो कुरबानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।

इनकी गाथा छोड़, चले हम झाँसी के मैदानों में,
जहाँ खड़ी है लक्ष्मीबाई मर्द बनी मर्दानों में,
लेफ्टिनेंट वाकर आ पहुँचा, आगे बड़ा जवानों में,
रानी ने तलवार खींच ली, हुआ द्वन्द्व असमानों में।
ज़ख्मी होकर वॉकर भागा, उसे अजब हैरानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।

रानी बढ़ी कालपी आई, कर सौ मील निरंतर पार,
घोड़ा थक कर गिरा भूमि पर गया स्वर्ग तत्काल सिधार,
यमुना तट पर अंग्रेज़ों ने फिर खाई रानी से हार,
विजयी रानी आगे चल दी, किया ग्वालियर पर अधिकार।
अंग्रेजों के मित्र सिंधिया ने छोड़ी राजधानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।

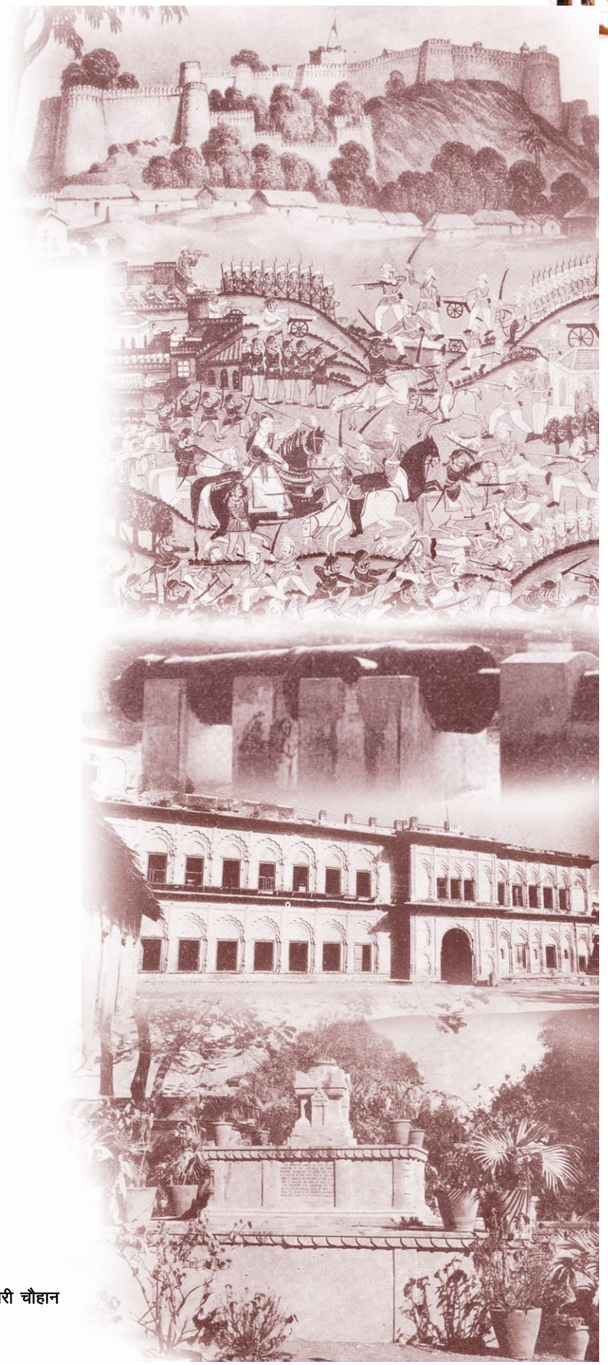
विजय मिली, पर अंग्रेज़ों की फिर सेना घिर आई थी,
अबके जनरल स्मिथ सम्मुख था, उसने मुँह की खाई थी,
काना और मंदरा सखियाँ रानी के संग आई थी,
युद्ध क्षेत्र में उन दोनों ने भारी मार मचाई थी।
पर पीछे ह्यूरोज़ आ गया, हाय! घिरी अब रानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।

तो भी मार काट कर चलती बनी सैन्य के पार,
किन्तु सामने नाला आया, था वह संकट विषम अपार,
घोड़ा अड़ा, नया घोड़ा था, इतने में आ गये सवार,
रानी एक, शत्रु बहुतेरे, होने लगे वार–पर–वार।
घायल होकर गिरी सिंहनी उसे वीर गति पानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।

रानी गई सिधार चिता अब उसकी दिव्य सवारी थी,
मिला तेज से तेज, तेज की वह सच्ची अधिकारी थी,
अभी उम्र कुल तेईस की थी, मनुज नहीं अवतारी थी,
हमको जीवित करने आयी बन स्वतंत्रता–नारी थी,
दिखा गई पथ, सिखा गई हमको जो सीख सिखानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।

जाओ रानी याद रखेंगे ये कृतज्ञ भारतवासी,
यह तेरा बलिदान जगावेगा स्वतंत्रता अविनासी,
होवे चुप इतिहास, लगे सच्चाई को चाहे फाँसी,
हो मदमाती विजय, मिटा दे गोलों से चाहे झाँसी।
तेरा स्मारक तू ही होगी, तू खुद अमिट निशानी थी,
बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी,
खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी।।

सुभद्रा कुमारी चौहान





पहली जंग–ए–आज़ादी हम हारे क्यों:

देश के लिए इस महान संग्राम और उसके शहीदों को याद करना गौरव की बात है। लेकिन इस मौके पर यह सवाल पूछा जाना ज़रूरी है कि भारत जैसे विशाल देश, जिसके चप्पे–चप्पे पर लोगों ने फिरंगी सरकार के ख़िलाफ दो साल से भी ज़्यादा हिम्मत और निष्ठा से अंग्रेज़ों से क्रूरता से सामना करते हुए विद्रोह की ज्वाला जलाए रखा, फिर भी आखिर में केवल 10 से 15 हज़ार गोरों से कैसे मात खा गया?

सवाल उठता है कि अगर इंकलाबी हर तरह से तैयार थे, उनमें जज़्बा था और अपने वतन को कंपनी के शिकंजे से आज़ाद कराने के लिए वे हर कीमत चुकाने को तैयार थे, तो हिंदुस्तान यह संग्राम क्यों हार गया?इसका जवाब खोजना ज़रा भी मुश्किल नहीं है। अंग्रेज़ हुक्मरां षडयंत्र रचने में माहिर थे। उन्होंने जो युद्ध जीते, वे अपनी बहादुरी और रणकौशलता की वजह से नहीं, बल्कि षडयंत्रों, जासूसों और हिंदुस्तानी दलालों की मदद के बल पर। प्लासी के युद्ध में मीर जाफर जैसा ग़द्दार न होता, तो सिराजुद्दौला का हारना असंभव था। टीपू सुल्तान इसलिए हारे, क्योंकि मीर सादिक, मीर गुलाम अली, कासिम अली और दिवान पूरनिया जैसे ग़द्दार अंग्रेज़ों के कुकर्मो में हिस्सेदार बन गए थे। इतिहासकार जॉन विलियम, जो उस दौर की घटनाओं के प्रत्यक्षदर्शी थे, ने 1868 में छपी अपनी पुस्तक ''सिपॉय वार इन इंडिया'' में माना है, 'सच तो यह है कि हिंदुस्तान में हमारी सत्ता की पुनर्स्थापना का सेहरा हमारे हिंदुस्तानी समर्थकों के सिर है, जिनकी हिम्मत और बहादुरी ने हिंदुस्तान को अपने हमवतनों से छीनकर हमारे हवाले कर दिया।' विलियम रसल लंदन से छपने वाले अखबार 'द टाइम्स' के युद्ध संवाददाता के तौर पर युद्ध का हाल बताने के लिए भारत भेजे गए थे। रसल ने 9 मई 1857 को भेजी अपनी एक रपट में लिखा, 'दिल्ली की हमारी घेराबंदी बिल्कुल नामुमकिन होती, अगर पटियाला और जींद के राजा हमारे मित्र नहीं होते और अगर कुछ सिखों ने हमारी बटालियनों के लिए भरती नहीं की होती... ।' रसल ने अपनी कई रपटों में इस सचाई को भी स्वीकारा कि अगर लखनऊ और दिल्ली के मोरचों पर नेपाल के राजा के गोरखा सैनिक नहीं पहुंचते, तो अंग्रेज़ों की जीत असंभव थी।''



यह संग्राम किस वजह से हारा गया, इसका मार्मिक वर्णन इस संग्राम के एक प्रमुख सेनापति नाना साहब के उस अंतिम पत्र में मिलता है, जो उन्होंने 1858 में देशवासियों के नाम लिखा था 'यह पराजय मेरे अकेले की नहीं, बल्कि पूरे देश की है। इस पराजय का मुंह हमें गोरखों, सिखों और राजाओं की सेनाओं की वजह से देखना पड़ा। मैं जीवन भर देश की आज़ादी के लिए लड़ा और लड़ता रहूंगा। शैतान राजवाड़ों ने अपने स्वार्थ के लिए इस देश को अंग्रेज़ों के हवाले कर दिया, जबकि अंग्रेज़ों की हमारे सामने कोई हैसियत नहीं थी।' यहां यह याद रखना ज़रूरी है कि रसल और नाना साहब जब सिखों की बात करते हैं, तो उसका मतलब आम सिख नहीं, बल्कि सिख रजवाड़े हैं। सिख किसानों ने तो इस संग्राम में बढ़चढ़कर हिस्सा लिया था और दिल्ली को अंग्रेज़ों से बचाने में सैकड़ों सिख इंकलाबी सैनिकों ने अपनी जानें कुरबान की थीं।



20 सितंबर 1857 को अंग्रेज़ दिल्ली शहर पर एक बार फिर क़ब्ज़ा करने में सफल हुए। फ़िरंगी उन हिंदुस्तानी ग़द्दारों की वजह से सफल हो सके, जो चांदी के चंद टुकड़ों के लिए कुछ भी करने को तैयार थे। इन ग़द्दारों की एक लंबी सूची है। इनके द्वारा अंग्रेज़ आकाओं को लिखे पत्रों से इस सचाई का पता लगता है कि जिस समय दिल्ली के मोरचे पर इंकलाबी सैनिक अंग्रेज़ सेनाओं के दांत खट्टे कर रहे थे, उसी दौरन 7 अगस्त, 1857 को इंकलाबियों के एक बहुत बड़े बारूद के जखीरे में आग लग गई। उस विस्फोट में 500 से ज्यादा इंकलाबी शहीद हुए और इंकलाबियों को गोला–बारूद के लाले पड़ गए। यह कारनामा दरअसल रजबअली का था, जो न केवल बादशाह की परामर्शदात्री समिति का सदस्य बनने में सफल हुआ था, बल्कि बारूदखाने का दरोगा भी बन बैठा था।



एक और ग़द्दार मुंशी जीवनलाल, जिसे 'रायबहादुर की उपाधि भी मिली, कंपनी में मुख्य मुंशी था और बहादुरशाह ज़फ़र और उनके परिवार पर चलाए गए मुकदमें में अंगरेजों के पक्ष में मुख्य भुमिका निभाने वाला रहा। कंपनी के एक इतिहासकार केव ब्राउन ने अपनी किताब पंजाब ऐंड देहली इन 1857 में इसकी चर्चा करते हुए लिखा, 'वे दिल्ली के बीचोंबीच रहते हुए शहर में मौजूद विद्रोहियों से संबंधित हर वह सूचना, जिसका जानना हमारे लिए ज़रूरी था, कागज़ की परचियों पर लिखकर चपातियों की परतों में, जूतों के तलों में, पगड़ियों की तहों में, सिखों के बालों में जूड़ों में छिपा–छिपाकर हम तक पहुंचाते रहे।'

मध्य भारत के अंग्रेज़ मुख्य प्रशासक ने अपने संस्मरणों में यह लिखा है। ''अंग्रेज़ों को मध्य भारत में इंक़लाबी सेनाओं के हाथों बार–बार पराजय का सामना करना पड़ा था। परन्तु दिल्ली और लखनऊ पर अंग्रेज़ों का कब्ज़ा करवाने में कश्मीर और पटियाला के महाराजाओं की सेनाओं ने ज़बरदस्त मदद की थी।''

The first War of Independence: Why did we lose it?

Remembering the martyrs of the great uprising of 1857 in itself feels like an act of patriotism, as the stories of that time generate a beautiful feeling of pride and reverence for our heroes who emerged from all religions of a huge country like India. But we need to ponder as to what made us lose the war? Every corner of India was charged with patriotism and was up in rebellion against the British. What was it then, that could crush such a mighty rebellion before just a handful of British? If the rebels were fully prepared materially, physically and emotionally to oust the East India Company from the country, why did they fail in achieving their goal?



The answer to all this is not very difficult one to find. The British were master conspirators. Whatever battles they won, conspiracies, spies, and traitors played a greater role than their war skills and bravery. The battle of plassey would not have been lost had there been no Mir Jaffar in Sirajudaula's camp. Tipu Sultan lost because of traitors like Mir Sadiq, Mir Ghulam Ali, Qasim Ali and Dewan Poorniya. Historian John William, who was a witness to all this has confessed in his book "Sepoy War in India" (1868).

"The truth is that the credit for our re-conquering in India goes to our Indian friends who showed courage and bravery in helping us instead of their countrymen that ultimately brought India in our hands".

The war correspondent for London's newspaper "The Time", William Russel was sent to India to report on the war from India. In one of his reports sent on May 9,1857 he writes,

"The capture of Delhi would have been impossible had the Kings of Patiala and Jind not been our friends and had we not recruited Sikhs in our battalions."

In many other reports, Russel wrote that victory was impossible without the help of the king of Nepal and his Gorkha sepoys.

The reason-Why India lost this first war against the British, gets illustrated in the last letter that Nana Saheb wrote in 1858 in the name of his countrymen. He wrote, "It is not I alone who has lost the war, it is the country as a whole. We have to see the ugly face of defeat because of the Gorkhas, Sikhs and the armies of the kings. I have always fought for the freedom of my country and shall continue to do so to the last breath. The notorious kingdoms for their own selfish interests have given Mother India to the British".

It must be noted however that when Russel or Nana Saheb talk of the Sikh betrayal, they mean the ruling families and not the common chivalrous Sikhs of Punjab. In fact the Sikh peasantry took active part in the rebellion and many of them fell martyrs while defending Delhi.

It was the 20th September 1857, when the British recaptured Delhi. This was because of a few traitors who could do anything for their selfish material benefits. The list of traitors is a long one and the letters written by them to the British officers is truly revealing of their nefarious involvement proving their ill intentions. One of the many stories of treachery goes as follows:

While the Indian rebel sepoys were making life really difficult for the British, on 7 August, 1857, a big convoy carrying ammunition for the rebels caught fire. More than 500 rebels were killed and there was shortage of ammunition all of a sudden. It was later found out that the misdeed was committed by a traitor named one Rajab Ali's who had not only found a place for himself in the Emperor's Advisory committee but was also in charge of the ammunition store.

Another traitor named Munshi Jiwan Lal who was later given the title of Rai Bahadur-was the main accountant of the Company and sided with the British in the case against Emperor Bahadur Shah and his family. Kave Brown, company's historian writes in his book "Punjab and Delhi in 1857" about Jiwan Lal thus,

"Positioned in the centre of Delhi he would provide all the critical information to us about the rebels by writing on chits of paper that would be hidden between stales of chapatis, shoe soles, head gear and the turbans of the Sikhs etc".

Another British official, the chief administrator of Central India wrote in his memoirs,

"The British were defeated many times at the hands of the rebels in Central India but the Kings of Kashmir and Patiala played a very crucial role in getting Delhi and Lucknow recaptured by the British."

प्रेम एवं सद्भावना का प्रतीक वर्ष 1857

ऐसा क्या था 1857 में जिससे आज भी हमें प्रेरणा मिलती है, आज भी प्रासंगिक लगता है यह वर्ष?इस कहानी की शुरुआत तो बंगाल के बरहमपुर तथा बैरकपुर की छावनियों में हुई थी जब ईस्ट इंडिया कम्पनी की बंगाल सेना ने एन्फील्ड राइफल को प्रयोग में लाने से इंकार कर दिया था और क्रांति का उद्घोष कर दिया था। इस विद्रोह के प्रथम शहीद मंगल पांडे को पूरा भारतवर्ष आज भी याद करता है। विद्रोह एवं क्रांति का संदेश एक छावनी से दूसरी छावनी तक आग की तरह फैलता गया और 11 मई की सुबह मेरठ के सिपाही, जिन्होंने अंग्रेज़ अफसरों की हत्या कर दी थी, दिल्ली पहुंच गए। उन्होंने बहादुर शाह ज़फ़र द्वितीय से इस विद्रोह का नेता बन जाने का निवेदन किया और उसी क्षण विद्रोह ने एक क्रांतिकारी युद्ध का स्वरुप ले लिया।

बहादुर शाह, पहले तो हिचकिचाए परन्तु फिर इस युद्ध के प्रतीकात्मक नेता बनने के लिए तैयार हो गए। उन्हें भारत का बादशाह घोषित कर दिया गया और इसी हैसियत से उन्होंने सभी राजाओं एवं प्रमुखों को पत्र लिख कर एकजुट होकर अंग्रेज़ी राज को जड़ से मिटाने के लिए संघर्ष करने का आह्वान किया। विद्रोह हवा की रफ्तार से फैलने लगा – अवध और रोहिलखंड, दोआब बुंदेलखंड, पूर्वी पंजाब (आज का हरियाणा), मध्य भारत और बिहार – सभी विद्रोह में उठ खड़े हुए। किसान, ज़मीनदार, तालुकदार, पंडित, मौलवी, अमीर, ग़रीब – सभी जैसे कुछ और होने से पहले क्रांतिकारी हो गए। विद्रोह का तत्कालीन कारण था राइफलों की गोलियों में गोमांस एवं सूअर के गोश्त की चर्बी का उपयोग, जो हिन्दुओं एवं मुसलमानों दोनों समुदायों के धर्मविरुद्ध था। इन गोलियों को मुंह से काट कर खोलना पड़ता था जो हिन्दुओं एवं मुसलमानों के लिए समान रुप से घृणास्पद था।

विद्रोह को पूरे भारत से स्वतः एवं स्वैच्छिक सहयोग मिल रहा था जिससे यह भी साबित हो गया कि भारतीय, ब्रिटिश राज से बिल्कुल नाखुश थे। यह बात खुल कर सामने आ गई की अंग्रेज़ों ने कई वर्गों एवं समुदायों को अलग कर रखा था। कर्ज़ एवं लगान के बोझ से दबे ग़रीब किसानों की तरफ से विद्रोह को सबसे अधिक सहयोग मिल रहा था। अवध के तालुकदार एवं राजसी घराने के परिवारजन एवं दरबारी भी अपनी जमीन तथा राज्य छिन जाने से तकलीफ में थे। राज दरबार के संगीतकार, कलाकार, कवि–कोविद, मौलवी, पंडित, धर्म गुरु, नौकर–चाकर सभी के जीवनयापन पर बुरा प्रभाव पड़ा था। आश्चर्य नहीं कि विद्रोह के नेता अधिकतर ज़मीनदार ही थे।

नाना साहेब पेशवा खानदान के थे जिन्होंने कानपुर से अंग्रेज़ों को मार भगाया था, नाना साहेब के ही सहयोगी तात्या टोपे तथा अज़ीमुल्लाह, अवध की बेग़म हज़रत महल, आरा के जगदीशपुर के जमींदार कुंवर

1857, a year of communal unity

What is it about 1857 that is still relevant to us? The story begins with the mutiny in the Bengal Army of the East India Company. The first incident took place at Berhampore and Barrackpore in March, and Mangal Pandey became the first martyr, when he was executed for refusing to use the new Enfield rifle and calling upon his fellow soldiers to rise in revolt. The message of rebellion spread from cantonment to cantonment, and on the morning of May 11, the sepoys from Meerut, who had killed their European officers and risen in revolt the previous day, entered Delhi. They asked Bahadur Shah II to take over the leadership of the revolt. With this one act, the mutiny was transformed into a revolutionary war.

Bahadur Shah, who had been living as a pensioner of the British, though initially reluctant, soon agreed to be the symbolic leader of the revolt. He was proclaimed the Emperor of India and wrote letters to all the rulers and chiefs of India to join a confederacy of Indian states to overthrow and replace the British regime. The revolt spread like wildfire across Awadh and Rohilkhand, the Doab and Bundelkhand, East Punjab (present-day Haryana), Central India and Bihar. Peasants, zamindars, taluqdars, maulvis and pundits, artisans, day labourers, all were to be found in the ranks of the rebels. The immediate cause of the mutiny was the introduction of cartridges greased with the fat of beef and pork, one repugnant to Hindus and the other to Muslims, which had to be opened by biting before loading.

The spontaneous support among large sections showed that discontent with British rule was widespread. It seemed that the British had successfully alienated many different groups and classes of Indian society. The largest support came from the peasants (soldiers also being peasants in uniform), who were victims of ever-increasing revenue and rent demands and caught in the web of debt. The British had also annoyed the taluqdars of Avadh by usurping their rights over land, as they had the royal family and the courtiers and their dependants by usurping the kingdom. The extinction of many royal and feudal families, big and small, in the previous decades had caused great hardships



सिंह तथा झांसी की रानी लक्ष्मीबाई का वीर नेतृत्व इस कथन की पुष्टि करते हैं।
कुछ और नेता उभर के आए थे सिपाहियों के गुट से। बख़्त ख़ान ऐसे एक नेता थे जो अंग्रेज़ी सेना में सूबेदार थे। उन्होंने बरेली से विद्रोह आरम्भ किया था तथा 2 जुलाई 1857 को दिल्ली पहुंच कर नेतृत्व संभाला था। बहादुर शाह ज़फर ने बख़्त ख़ान की राय पर ही दिल्ली में 10 सदस्यों से बना एक भारतीय प्रशासनिक ढ़ाँचा खड़ा करने की कोशिश की थी जिसमें 6 लोग भारतीय सेना द्वारा तथा 4 भारत के बादशाह द्वारा नियुक्त किए जाने थे। किन्तु यह प्रणाली आपसी मतभेदों एवं ईर्ष्या के कारण अधिक दिनों तक नहीं चल पाई। अन्ततः दिल्ली पर अंग्रेज़ों ने फिर से कब्ज़ा कर लिया और बख़्त ख़ान को 19 सितम्बर 1857 को लखनऊ के लिए रवाना होना पड़ा। विद्रोहियों के मनोबल पर इन सब का बुरा प्रभाव पड़ा। फिर भी एक वर्ष तक उन्होंने विद्रोह जारी रखा।

इस पूरे विद्रोह में जो एक बात आज भी हमारे लिए गहरा मायने रखती है, वह है इस विद्रोह का सौहार्दपूर्ण चरित्र। आम विद्रोहियों से लेकर बड़े नेताओं तक के बीच धर्म या संप्रदाय की बहस कभी नहीं उठी। हिन्दू एवं मुसलमान प्रतिनिधि हर स्तर पर थे। जिन बंदूक की गोलियों को लेकर यह विद्रोह आरम्भ हुआ था, उन्हीं गोलियों का इस्तेमाल विद्रोहियों ने अपने विद्रोह में किया उन्होंने धर्म एवं समुदाय के भेद–भाव से ऊपर उठ कर अद्भुत राष्ट्रप्रेम दर्शाया। हिन्दू और मुसलमान दोनों ने ही एक मुसलमान, बहादुर शाह ज़फर को बादशाह चुना। नाना साहेब के प्रमुख सहयोगियों में एक हिन्दू तथा दूसरा मुसलमान था। रानी लक्ष्मीबाई ने भी ग्वालियर अपने वफादार अफग़ानी सिपाहियों के सहयोग से ही जीता था और रणभूमि में भी यह वीरांगना अपनी जीवन भर की सहेली, एक मुसलमान लड़की के साथ ही शहीद हुई थी।

एक दूसरे के धर्म के प्रति आदर एवं सद्भाव इस युग की एक महान विशिष्टता थी। अकबर की बनाई परंपरा को दोबारा शुरु कर दिया गया था। जहां भी विद्रोहियों की जीत होती थी वहां गोहत्या पर पाबंदी लगा दी जाती थी। 1857 की जुलाई में ईद के अवसर पर भी दिल्ली में गाय, बैल एवं भैसों की हत्या की इजाज़त नहीं थी।

समझने की बात यह है कि 1857 तक अंग्रेज़ों की ''फूट डालो और राज करो'' नीति से भारतीय समाज अछूता था। 19 वीं सदी के अंतिम चरण में जो भेदभाव तथा साम्प्रदायिक असहिष्णुता भारतीय इतिहास के पन्नों पर लिखी गई, उसका अंश मात्र भी 1857 में देखने को नहीं मिला। साम्प्रदायिक एकता की शिक्षा की किसी को आवश्यकता ही नहीं थी। पूरा भारत, हिन्दू–मुसलमान, सभी स्वभावतः, सहज रुप से एक थे। 1857 का विद्रोह निसंदेह ही, उपनिवेशवाद पूर्व भारत की एकता का सुंदर दर्पण है।



कुछ और नेता उभर के आए थे सिपाहियों के गुट से। बख़्त ख़ान ऐसे एक नेता थे जो अंग्रेज़ी सेना में सूबेदार थे। उन्होंने बरेली से विद्रोह आरम्भ किया था तथा 2 जुलाई 1857 को दिल्ली पहुंच कर नेतृत्व संभाला था। बहादुर शाह ज़फर ने बख़्त ख़ान की राय पर ही दिल्ली में 10 सदस्यों से बना एक भारतीय प्रशासनिक ढ़ाँचा खड़ा करने की कोशिश की थी जिसमें 6 लोग भारतीय सेना द्वारा तथा 4 भारत के बादशाह द्वारा नियुक्त किए जाने थे। किन्तु यह प्रणाली आपसी मतभेदों एवं ईर्ष्या के कारण अधिक दिनों तक नहीं चल पाई। अन्ततः दिल्ली पर अंग्रेज़ों ने फिर से कब्ज़ा कर लिया और बख़्त ख़ान को 19 सितम्बर 1857 को लखनऊ के लिए रवाना होना पड़ा। विद्रोहियों के मनोबल पर इन सब का बुरा प्रभाव पड़ा। फिर भी एक वर्ष तक उन्होंने विद्रोह जारी रखा।





1857 : आत्मगौरव के साथ–साथ कुछ सबक सीखने भी ज़रुरी

जब हम 1857 के पहले स्वतंत्रता संग्राम की 150 वीं वर्षगांठ मना रहे हैं, तो सबसे उत्साहवर्धक बात यही है कि 1857 को लेकर तरह–तरह का लेखन व चिन्तन सामने आ रहा है। जहां इससे हमारे लोकतांत्रिक समाज में वैचारिक विविधता और विमर्श की अच्छी प्रवृति दिखती है, वहीं अपने इतिहास के साक्षात्कार और उसके विश्लेषण की प्रवृत्ति भी सामने आती है, जो कि इस संदर्भ में अत्यन्त महत्वपूर्ण है, क्योंकि ऐतिहासिकता का बोध हमारे समाज का मजबूत पक्ष पहले नहीं था। इतिहास से समाज में आत्मगौरव का बोध बढ़ता है, पर यह भी सच है कि कभी–कभी इतिहास समाज को झूठे आत्मगौरव की ओर भी ले जाता है। बिना इतिहास का समाज कहीं नहीं पहुंचता। जैसी कि प्रसिद्ध उक्ति है –जो देश अपने इतिहास को याद नहीं रखते वे उसे दोहराने को अभिशप्त होते हैं।



इसलिए हमारे पहले स्वतंत्रता संग्राम से हमें गौरवान्वित होना ही चाहिए। लेकिन सबक भी कई हैं, जो सीखे जाने इसलिए ज़रुरी हैं कि हम उन पिछली गलतियों को न दोहराएं। पहला सबक इस बात से लेना चाहिए कि हमने 1857 में क्या–क्या खोया? हमने अपनी आज़ादी खोई, आर्थिक समृद्धि खोई और आत्मगौरव खोया। अपने फैसले आप करने का किसी देश या समाज को जो हक होता है, उसे खोना उसके लिए सबसे बड़ी सज़ा है और स्वतंत्रता का अर्थ इस हक को पाना होता है। अगर हम सब भी एक स्वतंत्रचेता समाज की तरह इस हक को नहीं इस्तेमाल करते या हमारे समाज के बड़े हिस्से को हक हासिल नहीं होता, तो इसका अर्थ है कि अभी हमने 1857 का असली सबक पूरी तरह नहीं सीखा। समाज के सबसे छोटे अंश के स्तर पर जो सत्ता के दुरुप्रयोग का और शोषण का गणित होता है, उसका महत्तम रुप उपनिवेशवाद या साम्राज्यवाद के रुप में दिखता है। सत्ता का दुरुपयोग और शोषण का पूरा खात्मा शायद यूटोपिया हो, लेकिन एक अच्छा और प्रगतिशील समाज इन्हें खत्म करने की लगातार सजग कोशिशें करता रहता है, क्योंकि इनका कुल जोड़ कभी भी उपनिवेशवाद या साम्राज्यवाद का समतुल्य हो सकता है।



इसलिए पहले स्वतंत्रता संग्राम के नायकों का भी है। अपना इतिहास हम बदल नहीं सकते, वह अपनी सारी गौरवगाथा और कुरुपताओं के साथ हमारा इतिहास है, लेकिन इसे ज़िम्मेदारी से स्वीकार करते हुए हमें अपने भविष्य में कुछ बेहतर समाज बनाने का मज़बूत इरादा बनाना होगा। इस अर्थ में 1857 को पहले स्वतन्त्रता संग्राम के विमर्श और उसके सही फलादेशों को लक्ष्य तक पहुंचाना ही उन सभी शहीदों को हमारी सच्ची श्रद्धान्जलि होगी।





to many who were patronised by them: musicians, artists, poets, maulavis, pundits, astrologers, religious figures, artisans, palace servants, craftsmen, and the like.

It is not surprising that the leadership of the revolt came primarily from feudal chiefs, such as Nana Saheb, a descendant of the peshwa, who drove the British out of Kanpur, his deputies Tantia Tope and Azimullah, Hazrat Mahal, the Begum of Avadh, Kunwar Singh, a ruined zamindar of Jagdishpur near Arrah. The most prominent in this category was Lakshmibai, the young Rani of Jhansi.



Another kind of leadership came from soldiers such as Bakht Khan, a subedar of the British army who rebelled in Bareilly and came to Delhi on July 2, 1857, with his soldiers and exercised effective power, while Bahadur Shah remained the nominal leader. It was most likely under his influence that Bahadur Shah set up a court of administration consisting of ten members, four to be nominated by the king and six by the army. This attempt at creating an institutional structure was, however, shortlived, as mutual jealousies among rebel leaders and lack of unity led to the recapture of Delhi by the British, and the departure of Bakht Khan for Lucknow on September 19, 1857. The fall of Delhi demoralised the rebels, though resistance continued for almost another year.

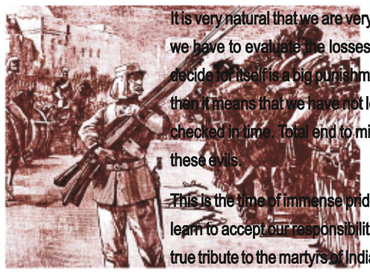


Perhaps the most important feature of the great revolt which is relevant for us today was its naturally non-communal character. Neither among the ordinary rebels nor among the leaders was religious origin an issue. Hindus and Muslims were well-represented at the levels of the rebels as well as the leadership. The Bengal Army consisted of Hindus and Muslims, and even though the mutiny began on the issue of greased cartridges, rebel soldiers overcame their religious reservations for the sake of the cause and used the same cartridges and rifles they had earlier rejected. All the rebels, Hindus and Muslims, recognised Bahadur Shah, a Muslim, as their emperor. Of Nana Saheb's two loyal deputies, one was a Muslim and one a Hindu. Rani Lakshmibai of Jhansi captured Gwalior with the help of her loyal Afghan guards and died on the battlefield along with her life-long companion, a Muslim girl.

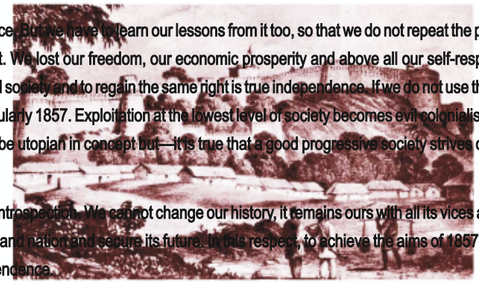
Mutual respect for religious sentiments was also a hallmark of the age. Reviving the tradition started by the Mughal Emperor Akbar, wherever rebels won power, they banned cow-slaughter out of respect for Hindu sentiments. In Delhi, on the occasion of Id-ul Zuha at the end of July 1857, the rebel regime banned the slaughter of cows, oxen and buffaloes. What needs to be understood is that Indian society had not yet been communalised by the British policy of divide and rule as it was from the last quarter of the 19th century, and therefore, there was no need for a self-conscious effort to create communal unity. The behavior of Hindus and Muslims in the revolt of 1857 was a reflection of the non-communal nature of pre-colonial Indian society.

1857 : National pride and the lessons

The year 2007 is the glorious 150th anniversary of the first war of India's independence in 1857. The most inspiring aspect of the anniversary celebration is that a lot of thought provoking writing on this momentous event is coming forward. The meeting with history and its proper analysis is remarkable in this context. History elevates our sense of self-respect but sometimes it also takes us towards vanity, if not interpreted properly. A society cannot reach its goal without understanding its history. A famous saying sums it up very aptly—"Nations who do not remember their history are doomed to repeat its mistakes".



It is very natural that we are very proud of our first war of independence. But we have to learn our lessons from it too, so that we do not repeat the past mistakes. First of all we have to evaluate the losses we suffered during 1857 movement. We lost our freedom, our economic prosperity and above all our self-respect. To lose the right to decide for itself is a big punishment for any self-respecting nation and society and to regain the same right is true independence. If we do not use this right as a free society then it means that we have not learnt our lessons from history, particularly 1857. Exploitation at the lowest level of society becomes evil colonialism and imperialism if not checked in time. Total end to misuse of power and exploitation may be utopian in concept but—it is true that a good progressive society strives ceaselessly to eradicate these evils.



This is the time of immense pride as a nation as well as of deep self-introspection. We cannot change our history, it remains ours with all its vices and virtues, but we must learn to accept our responsibilities towards creating a better society and nation and secure its future. In this respect, to achieve the aims of 1857 revolution would be our true tribute to the martyrs of India's first national movement for independence.

क्रांति का प्रभाव

यद्यपि दो वर्षों के भीतर ही अंग्रेज़ों द्वारा इस विद्रोह का दमन कर दिया गया था, परन्तु इसका प्रभाव दूरगामी था। सर जॉन स्ट्रैशी के अनुसार इस विद्रोह में ब्रिटिश अधिकारियों



तथा अंग्रेज़ सरकार को अधिकांश राजे–रजवाड़ों का साथ मिला तथा भविष्य में अंग्रेज़ों द्वारा इन वफादार राजाओं को अपने साथ मिलाकर रखने की पूरी कोशिश की गई। भारत की साम्राज्ञी महारानी विक्टोरिया के शाही फरमान में यह स्पष्ट कहा गया कि ''हम घोषणा करते हैं कि भारत के सभी राजाओं के साथ ईस्ट इन्डिया कम्पनी तथा हमारे द्वारा किये गये सभी समझौतों को हम सम्मानपूर्वक स्वीकार करते है तथा निष्ठा से इनका पालन करेंगे। ....इन सभी राजाओं के आत्म–सम्मान तथा अधिकारों की हम उसी प्रकार रक्षा करेंगे जैसे अपने लिये करते हैं।''



क्रांति का दूसरा परिणाम यह हुआ कि अंग्रेज़ों ने यह समझ लिया कि हिन्दुस्तान के समृद्ध वर्ग जैसे ज़मींदार, महाजन इत्यादि को स्वयं से मिलाना ही होगा ताकि वे (अंग्रेज़) इस देश पर निरंकुश तथा स्थायी शासन कर सकें। महारानी विक्टोरिया के शाही घोषणा पत्र में भी इसका स्पष्ट उल्लेख है ''हम इस बात का सम्मान करते है कि किस प्रकार भारतवासी अपने पूर्वजों से मिली भूमि से जुड़े होते हैं और हमारी यही इच्छा है कि हम हर प्रकार से उनके अधिकारों की रक्षा करें ....हमारे द्वारा बनाए गए कानून में हम भारतीयों के प्राचीन अधिकारों तथा रीतिरिवाजों की रक्षा तथा सम्मान का आश्वासन देते हैं।''

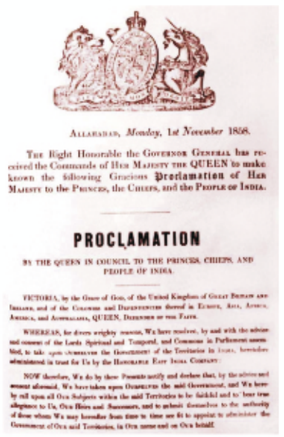
भारतीय ज़मींदारों और अंग्रेज़ी साम्राज्यवाद के इस मिलाप ने देश की कृषि प्रथा को बहुत संकट में डाल दिया जिसका दुष्परिणाम आज भी दिखाई देता है।

भारत के स्वाधीनता संग्राम के नेतृत्व ने अंग्रेज़ों तथा रियासतों के शासकों की सांठगांठ को बहुत अच्छी तरह से समझ लिया था। जवाहरलाल नेहरु – 'हिन्दुस्तान की कहानी' में लिखते हैं कि ''भारतीय रियासतों को विशेष अधिकार तथा महत्व भारत की एकता को तोड़ने के लिये ही दिया जाता था। भारतीय रियासतें अंग्रेज़ों के शासन का बहुत मज़बूत स्तम्भ थीं।''

1857 की महान् क्रांति इतिहास का एक सशक्त अस्त्र थी जिसने देश में महानतम् सामाजिक क्रांतिकारी परिवर्तन का संचार किया। इस क्रांति में निहित शक्ति तथा सत्य के आधार पर 1885 से देश ने संगठित सुनियोजित आन्दोलन छेड़ा और परिणाम स्वरुप इकसठ वर्ष बाद 15 अगस्त 1947 को स्वाधीनता का सूर्योदय हो ही गया।

Some Effects

Although the rebellion was suppressed within two years, its effects were long lasting and widespread. "There came over the British Government and its officers," observes Sir John Strachey, "a flood of reactionary opinions," Because the princes had rendered signal services by acting as the breakwaters to the storm, "to preserve them as a bulwark of the Empire has ever since been a principle of British policy," noted P.E. Roberts an English historian. Queen Victoria's proclamation, on becoming the Empress of India, read thus: "We hereby announce to the native princes of India that all treaties and engagements made with them by or under the authority of the Honorable East India Company are by us accepted and will be scrupulously maintained and we look for like observance on their part...We shall respect the rights, dignity and honour of native princes as our own..."



ALLAHABAD, *Monday, 1st November 1858.*

THE Right Honorable the GOVERNOR GENERAL has received the Commands of HER MAJESTY THE QUEEN to make known the following Gracious **Proclamation of HER MAJESTY to the PRINCES, the CHIEFS, and the PEOPLE OF INDIA.**

PROCLAMATION

BY THE QUEEN IN COUNCIL TO THE PRINCES, CHIEFS, AND PEOPLE OF INDIA.

VICTORIA, by the Grace of God, of the United Kingdom of GREAT BRITAIN AND IRELAND, and of the COLONIES and DEPENDENCIES thereof in EUROPE, ASIA, AFRICA, AMERICA, and AUSTRALASIA, QUEEN, Defender of the Faith.

WHEREAS, for divers weighty reasons, We have resolved, by and with the advice and consent of the Lords Spiritual and Temporal, and Commons in Parliament assembled, to take upon Ourselves the Government of the Territories in India, hereinafter administered in trust for Us by the HONORABLE EAST INDIA COMPANY:

NOW therefore, We do by these Presents notify and declare that, by the advice and consent aforesaid, We have taken upon Ourselves the said Government, and We have by Our Blessing undertaken to perform the trusts in Us reposed therein, in full confidence of the support of the Lords and Commons aforesaid in the steps We may be hereafter obliged to take; and We hereby call upon all Our Subjects within the said Territories to be faithful, and to bear true allegiance to Us, Our Heirs and Successors, and to submit themselves to the authority of those whom We may hereafter from time to time see fit to appoint to administer the Government of Our said Territories, in Our name and on Our behalf.

The revolt also led to an "alliance" between the Indian landlords, moneylenders and the British, who thought it would be difficult for them to rule permanently if they adopted policies "by which the better classes of the native of Hindustan would remain alienated from us". The Queen's proclamation stated therefore: "We know, and respect, the feeling of attachment with which the natives of India regard the lands inherited by them from their ancestors, and we desire to protect them in all rights connected therewith...and in framing and administering the law, due regard (will) be paid to the ancient rights, usage and customs of India."

But this "alliance" between Indian landlords and British imperialists pushed India into an agrarian crisis whose effects have still to be fully wiped out.

How the Indian national movement understood the post 1857 British policy towards the princes is best reflected in Nehru's Discovery of India where he states that "the retention of the native states was designed to disrupt the unity of India, Indian princes playing the role of Britain's fifth column in India".



The great uprising of 1857 became the conscious tool of history in bringing about the greatest, and to speak the truth, a social revolution. It was the realization of this truth that led India on to her organized struggle for Independence from 1885 onwards. Sixty-one years later, on 15 August 1947, India won her freedom from Britsih rule.

1857 : एक विश्लेषण

इस क्रांति की 150 वीं वर्षगांठ पर यह सही होगा कि इसे एक नए सिरे से देखा और समझा जाए। यह भी ज़रुरी है कि यह नई समझ सिर्फ इतिहासकारों तथा अन्य बुद्धिजीवियों के नज़रिये तक ही सीमित न रहे, बल्कि इसका समाज में व्यापक प्रसार भी हो।



पहली बात तो यह कि 1857 महज एक सिपाही विद्रोह नहीं, बल्कि एक विशाल जनाक्रोश का परिणाम था, जिसमें समाज के विभिन्न वर्ग सक्रिय रुप से शामिल थे। इसमें किसान, बुनकर, जमींदार, रजवाड़े जैसे वे तबके शामिल थे जो अंग्रेज़ी शासन से प्रताड़ित थे। 1857 किसी एक वर्ग विशेष का विद्रोह नहीं, बल्कि समाज के एक बड़े हिस्से के आक्रोश का परिणाम था।

दूसरी बात यह कि यह विद्रोह सिर्फ उत्तर भारत तक ही सीमित नहीं था। कई ऐतिहासिक पड़तालों ने यह साबित कर दिया है कि 1857 में देश का एक विशाल हिस्सा विद्रोह के प्रभाव क्षेत्र में आ चुका था। उत्तर भारत के साथ–साथ महाराष्ट्र, असम, बंगाल, उड़ीसा और दक्षिण भारत के कई इलाकों में लगभग एक ही समय में विद्रोह की चिंगारी प्रज्जवलित हो चुकी थी और जनमानस में यह स्वतंत्रता संग्राम के प्रतीक के रुप में उभरकर सामने आ चुका था।



तीसरी, जिस तरह की हिन्दू–मुस्लिम एकता और सहभागिता 1857 के दौरान देखी गई वैसी उससे पहले और उसके बाद शायद ही दोबारा दिखाई दी। सैनिकों की मिली–जुली लड़ाई और बागियों के फरमानों से लेकर गो–हत्या पर शाही प्रतिबंध लगाने तक विद्रोह के दौरान हर स्थान पर हिन्दू–मुस्लिम एकता का बोलबाला रहा।



और अंत में, सबसे महत्वपूर्ण बात। इस विद्रोह का चरित्र संपूर्ण रुप से राष्ट्रवादी भले ही न रहा हो, लेकिन इसमें आधुनिक राष्ट्रवाद के कई महत्वपूर्ण अंश विद्यमान थे। यह आखिरी विशाल पारंपरिक विद्रोह के साथ–साथ पहला आधुनिक विद्रोह भी था। इस मायने में 1857 को महात्मा गांधी के नेतृत्व में लड़े गए राष्ट्रीय आन्दोलन के अग्रदूत के रुप में देखा जाना चाहिए।



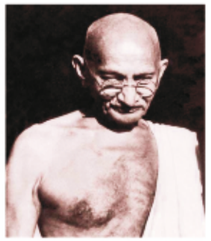
कृतज्ञ भारतवासियों ने 1857 की क्रान्ति की 150 वीं वर्षगांठ पर उन सभी अमर शहीदों को नमन कर अपनी चेतना में 1857 और राष्ट्रीय आंदोलन के बीच की कड़ी को मजबूत किया है।

1857: An analytical view

In this 150th anniversary of the great Indian revolt of 1857, it is necessary to analyse its significance not only at the intellectual level, but at the level of the masses as well.



The first point which needs to be firmly established is that the 1857 uprising was not a sepoy mutiny, as the British would like us to believe but the result of a simmering resentment against foreign rule in masses as well as the ruling classes. It was a revolt in which the farmers, weavers, zamindars, princes, rulers everybody participated to oust the 'firanghi'.



The second important aspect of 1857 is that contrary to popular belief it was not confined to the northern part of India alone but had spread to a large part of the country, which included Maharahstra, Assam, Bengal, Orissa and some regions of the South as well. For the nation it was a war of independence, in which people from all sections of the society participated.



The third and one of the most remarkable aspects of the revolution was the communal harmony among all Indians. The Hindu-Muslim unity found in this period of India's history is unique, exemplary. Everyone was united in this cause and fought for the nation's independence under the Mughal ruler, the symbol of India's freedom.

And, finally, the basic character of this uprising was national and although it was brutally suppressed yet it is the most important milestone in India's freedom struggle. It was the last massive traditional revolt as well as the first modern uprising against British rule. In many ways, it was a worthy inspiration to the national freedom movement led by the Father of the Nation, Mahatma Gandhi.

A grateful nation remembers and salutes its great heroes on this historic 150th Jayanti of 1857 and strengthens the bond between 1857 and our freedom and pledges to preserve and cherish the nation as desired by our great leaders.



क्रांतिकारी आंदोलन

1860–70 का युग ही था शारीरिक बल एवं शक्ति को सर्वाधिक महत्व एवं प्राथमिकता देने वाला। कसरत, व्यायाम और अखाड़ों के पीछे दीवाने थे लोग। स्वामी विवेकानंद ने भी इसी समय स्वस्थ्य बलवान शरीर एवं दृढ़ मनोबल की महत्ता बताई थी। ऐसे ही परिप्रेक्ष्य में क्रान्तिकारी उग्रवाद का विकास, बंगाल में शुरू हुआ था।



उग्रवाद की कहानी 1902 में चार गुटों के बनने से शुरू हुई थी। एक गुट बना था मिदनापुर में और तीन कलकत्ते में। 1905 तक तो ऐसे गुटों की गतिविधियाँ मध्यम ही कही जाएँगी परन्तु 1905 के स्वदेशी आंदोलन ने ऐसे खुफिया एवं गुप्त संगठनों को सक्रिय कर दिया था। पुलिन बिहारी दास के नेतृत्व में अक्तूबर 1906 में, ढाका अनुशीलन समिति का गठन हुआ। इसी वर्ष दिसंबर में अखिल बंगाल अधिवेशन हुआ तथा एक क्रान्तिकारी साप्ताहिक "युगान्तर" की शुरूआत भी की गई। कलकत्ता अनुशीलन समिति के ही एक गुट ने, जिसका बारींद्र कुमार घोष (अरविन्द घोष के भ्राता) हेमचंद्र कानूनगो तथा प्रफुल्लो चाकी ने नेतृत्व किया था, उग्रवादी कार्य शुरू कर दिया था। अपने आंदोलन के लिए पैसे इकट्ठा करने के लिए रंगपुर में एक डकैती की योजना बनाई गई एवं कलकत्ता के मानिकतला क्षेत्र में बम बनाने के कारखाने की स्थापना हुई। दबंग एवं क्रूर अधिकारियों की हत्या एवं धनाढ्य सेठों के घरों में डकैती की योजनाएँ बनाना ही इस गुट का 1907–08 तक का सर्वोपरि कार्य रहा। परन्तु उग्रवादी गुटों को पहली विफलता का सामना तब करना पड़ा जब मुजफ्फरपुर में 30 अप्रैल 1908 को खुदीराम बोस एवं प्रफुल्लो चाकी, प्रेसिडेंसी मैजिस्ट्रेट किंग्सफोर्ड की हत्या करने में नाकामयाब रहे। अरविन्द एवं बारीन्द्र घोष समूचे मानिकताला गुट के साथ पकड़े गए।



देखा जाए तो एक तरह से उग्रवादी ज़्यादा कुछ हासिल नहीं कर पाए। उनकी अधिकतर योजनाएँ या तो पहले ही पकड़ी जाती थीं या विफल हो जाती थीं। लेकिन दूसरी तरफ उग्रवादियों के कारण देश ने बहुत कुछ हासिल किया। खुदीराम की फाँसी और मानिकतला बम षडयंत्र के मुक़दमे ने बंगाल की जनता को जैसे जागृत कर दिया – लोकगीतों ने शहीदों को अमरत्व प्रदान कर किया और पूरे देश का जैसे खून खौल उठा। सी. आर. दास, जो अरविन्द के वकील बने, का कथन कि "यदि स्वतंत्रता के मूल्यों को पढ़ाना जुर्म है तो मेरा मुवक्किल निर्दोष नहीं" इतिहास ने अपने पन्नों पर सुनहरे अक्षरों में जड़ लिया।

यह आंदोलन तद्पश्चात् भूमिगत हो गया तथा बहुत हद तक विकेंद्रित भी, लेकिन समाप्त नहीं हुआ। आम लोगों के दिलो दिमाग पर भी ऐसे आंदोलन ने गहरी छाप छोड़ी जिन्हें यह मार्ग पहले के मार्गों से अधिक सशक्त एवं उपयोगी लगने लगा। 1909 के मौर्ले–मिंटो सुधार को भी कई लोग उग्रवादियों से भय का फलस्वरूप मानते हैं।

किंतु बंगाल के विभाजन की रूकावट ने उग्रवाद में कोई बाधा नहीं डाली क्योंकि उग्रवाद का कारण सिर्फ बँटवारा ही नहीं था। अब कार्यक्रमों का केंद्र पंजाब एवं उत्तर प्रदेश बन गया जहाँ बंगाली उग्रवादी पंजाबी उग्रवादियों से मिले जो उत्तरी अमेरिका से



गदर पार्टी की स्थापना कर के लौटे थे। आंदोलन के लिए धन इकट्ठा करने के लिए पूरे उत्तरी भारत में कई डकैतियाँ की गईं। 1912 में भारत के वाइसरॉय लॉर्ड हार्डिंग की हत्या की योजना भी बनी, जो विफल हो गई। सितंबर 1914 में "कामागाता मारू" के पंजाबी गदर सदस्यों ने बजबज में ब्रिटिश सिपाहियों से मुठभेड़ भी की।

प्रथम विश्व युद्ध की शुरूआत होने पर उग्रवादियों ने जर्मनी एवं जापान से मदद ले कर अपने आंदोलन को सशक्त बनाने की कोशिश की। राश बिहारी बोस, जो लाहौर में स्थित थे, ने सेना में विद्रोह की योजना बनाई, परन्तु सिपाहियों के असहयोग के कारण उन्हें स्वयं जापान भागना पड़ा। बंगाल में जतिन मुखर्जी के नेतृत्व में उग्रवादियों ने एकजुट होकर जर्मनी से हथियार लाने की योजना बनाई किंतु शक्तिशाली एवं युद्धकुशल ब्रिटिश पुलिस के हाथों उड़ीसा के बालासोर में परास्त हो गए। इस समय ब्रिटिश दमन की कोई सीमा नहीं दिखती थी। भारत सुरक्षा अधिनियम 1915 की आड़ में इस युद्ध स्थिति का अंग्रेज़ों ने खूब फायदा उठाया और आतंकवादी गतिविधियाँ बहुत कम हो गईं। किंतु क्रान्ति की भावना को कुचलना आसान नहीं था। 1918 में क्रूरतम् रौलेट अधिनियम का मसौदा तैयार हुआ जिससे उत्तेजित होकर महात्मा गांधी ने भारतीय राजनीति को एक नए दौर में प्रवेश करवाया जहाँ हिंसा की जगह अहिंसा एवं जन–आन्दोलन को प्राथमिकता दी जाने लगी।

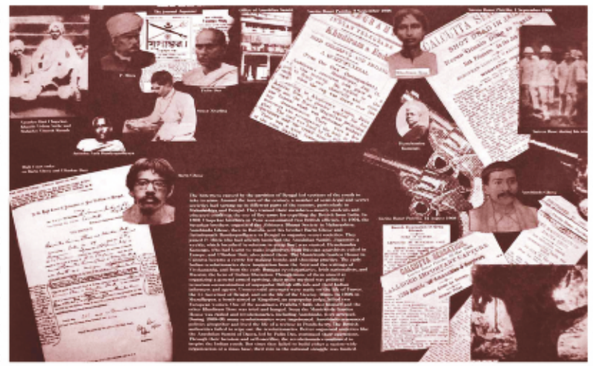
Revolutionary Movement

In Bengal, revolutionary terrorism developed in the same way since the 1860s and 70s, when the physical culture movement became a craze and *akharas* or gymnasiums were setup everywhere to develop what Swami Vivekananda had described as strong muscles and nerves of steel.



The real story of terrorism in Bengal begins from 1902 with the formation of four groups, three in Calcutta and one in Midnapur.

The progress of this movement till 1905 was modest; but the beginning of the swadeshi movement in that year brought an upsurge in secret society activities. The Dacca Anushilan Samiti was born in October 1906 through the initiative of Pulin Behari Das. This was followed by an all-Bengal conference of the revolutionaries in December and a revolutionary weekly called Yugantar started in the same year. A distinct group within the Calcutta Anushilan Samiti headed by Barindra Kumar Ghosh (Aurobindo's brother), Hemchandra Qanungo and Prafullo Chaki soon started action. The first swadeshi dacoity or robbery to raise funds was organized in Rangpur in August 1996 and a bomb manufacturing unit was set up at Maniktala in Calcutta. Attempts to assassinate oppressive officials and spies, robbery in the houses of wealthy people became the main features of the revolutionary activities since 1907-8. But the abortive attempt at Muzaffarpur on the life of the Presidency Magistrate Kingsford on 30 April 1908 by Khudiram Bose and Prafullo Chaki and the following arrest of the entire Maniktala group, including Aurobindo and Barindra Kumar Ghosh, dealt a great blow to such terrorist activities.



In terms of direct gains, the terrorists achieved precious little; most of their attempts were either aborted or failed.

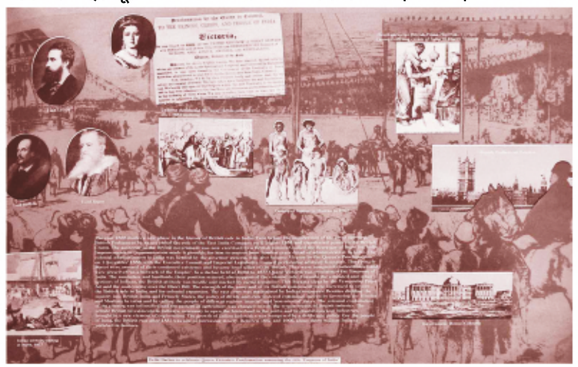
But they also achieved a lot. The hanging of Khudiram and the Maniktala Bomb Conspiracy trial, publicized by the press and immortalized in folk songs, fired the imagination of the entire Bengali population. C.R. Das, appeared as the defence counsel for Aurobindo and argued that if preaching the principle of freedom was any crime, then the accused was surely guilty.

The movement hereafter went underground and became decentralized, but did not die down. Revolutionary terrorism by now had acquired legitimacy in popular mind, as many people believed that it was an effective alternative to the earlier mendicant policies of the moderates. When the Morley-Minto Reforms were announced in 1909, many of these people believed it was because of fear generated by revolutionary activities.

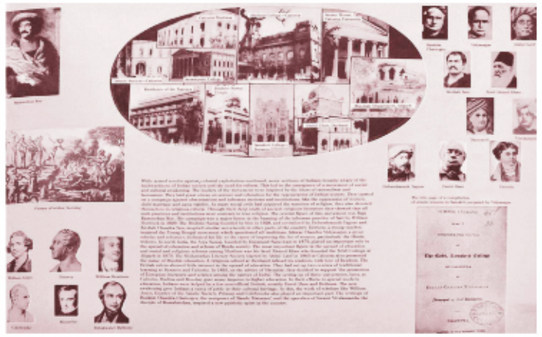
But the annulment of partition did not bring an end to terrorism, as terrorism was not generated by partition alone. The centre of activities now moved to Punjab and Uttar Pradesh, where the Bengali terrorists were joined by the Punjabis returning from North America, where they had formed the revolutionary Ghadar Party, They organized dacoities throughout north India to raise funds and in 1912 plotted an unsuccessful attempt to assassinate the Viceroy Lord Hardinge. In September 1914, the stranded Punjabi Ghadrites on board the *Kamagata Maru,* clashed with the army at Budge Budge near Calcutta. With the outbreak of World War One, even more grandiose schemes of organizing armed revolts in the Indian army with help from Germany or Japan began to appear. Rash Behari Bose operating from Lahore tried to organize an army revolt throughout north India, but failed to evoke any response from the sepoys and ultimately fled to Japan. In Bengal, the revolutionaries united under the leadership of Jatin Mukharjee and tried to smuggle in arms from Germany. But the amateurish attempt ultimately ended in an uneven battle with the British police at Balasore in Orissa. The unbound repression of the government at this period, freely using the now wartime Defence of India Act (1915), made terrorist attacks more and more infrequent. But the spectre of revolutionary violence did not disappear at all and it made the Sedition Committee to draft in 1918 the draconian Rowlatt bills, which inflamed Mahatma Gandhi into action and to initiate a new phase in Indian politics, where the central focus would shift from violence to non-violence, from elite action to mass agitation.

नया मध्यम वर्ग और राष्ट्रवाद का उदय

1857 की क्रान्ति के बाद के भारत के राजनैतिक इतिहास में सबसे पहले उपनिवेशीय नीतियों का अति रूढ़िवादी रूप देखने को मिला जब रजवाड़ों एवं जमींदारों को आम लोगों का स्वाभाविक (नैसर्गिक) नेता करार कर के इस भूस्वामियों के अभिजात वर्ग को सशक्त करने की चेष्टा की जाने लगी। शासकों के अनुसार, ज़मीनदारों के माध्यम से ही आम जनता का सहयोग प्राप्त किया जा सकता था और इसी मंशा से वे ज़मींदारों एवं रजवाड़ों को महत्व देने लगे।



1877 में महारानी विक्टोरिया ने 'भारत की महारानी' की उपाधि धारण की और इस अवसर पर वाइसरॉय लिटन ने भव्य दरबार का आयोजन ग़रीब एवं सूखा पीड़ित भारत की भावनाओं की अवहेलना करते हुए आयोजित की। महारानी विक्टोरिया के भारत में भारतीय ज़मींदारों एवं राजाओं का सामाजिक स्थान शीर्ष पर रखा गया। इतना ही नहीं, बड़े ज़मींदारों को प्रशासनिक क्रियाओं में भी भागीदारी मिलने लगी।



1851 में कलकत्ता में स्थापित "ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन", स्थानीय ज़मींदारों के स्वार्थ पूर्ति के लिए बनाया गया तथा यह भारत का पहला स्वयंसेवी संगठन भी बना। इस संगठन के सदस्यों को विधान परिषदों में मनोनीत किया जाता था और 1892 के अधिनियम के लागू होने तक, जब परिसीमित निर्वाचकीय प्रणाली की नीति आ गई, इस संगठन ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। 1892 के बाद भी, पुराने तत्व तो प्रबल रहे ही, किन्तु कई नए बदलाव भी आ गए और इस संगठन ने कई नई भूमिकाएँ भी निभाई।

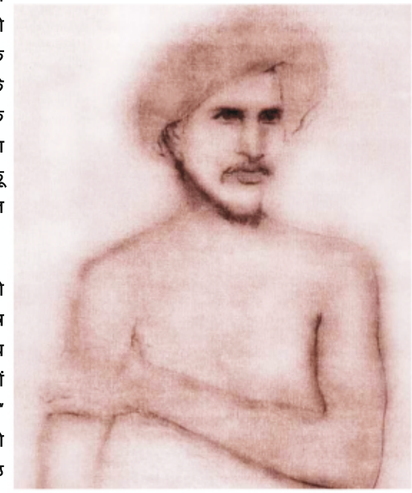


The New Middle Class and the Emergence of Nationalism

The political history of India in the post-1857 period—when the political contest with the colonial regime began at a more modern institutionalised public space—is multifaceted. First of all, in colonial policies a conservative reaction set in after the revolt of 1857. Attempts were made to rehabilitate and strengthen the landed aristocracy, deemed to be the "natural" leaders of the people. They could "alone command the allegiance of the masses" and could therefore, be the reliable allies of a vulnerable colonial state. The Imperial Durbar of 1877, where Queen Victoria assumed the title of the Empress of India, and which Lord Lytton, the then viceroy, organized in great splendour and pomp, despite famine conditions occurring in some parts of the country, gave the place of precedence to the native princes in the new imperial social order. Apart from them, big zamindars from now on began to play a prominent role within the colonial administrative set up. The British Indian Association was the first major voluntary organization in India founded in 1851 in Calcutta, representing primarily the local landlord interests. It began to play a prominent role after the Indian Councils Act of 1861, which provided for limited Indian representation in the legislative councils. Members of this association were usually nominated to the legislative councils and their dominance continued until the Act of 1892 introduced limited electoral system. But although "old" elements continued to dominate this organization, it was also new in many respects and performed some very new roles.

जनजातीय विद्रोह

बिरसा मुंडा के नेतृत्व वाले "मुंडा उलगूलन" ने 1899–1900 में यह साबित कर दिया कि असंतोष सिर्फ आवासी कृषकों के बीच ही नहीं था बल्कि जनजातीय किसानों ने भी पुरानी प्रथाओं से बंधे हुए ही अपना सहस्त्राब्दिक आंदोलन, 1857 की क्रान्ति के बाद भी जारी रखा था। बिरसा मुंडा, मुंडा जनजाति के लिए एक महान् धार्मिक नेता के रूप में आगे आए तथा बिहार के छोटानागपुर क्षेत्र के मुंडा किसानों को दो वर्षों तक अपने अधिकारों एवं भूसंपत्ति की सुरक्षा करने की प्रेरणा देते हुए, उन्हें एकजुट किया। 1890–95 से ही, डीकू जनजाति से मुंडा जनजाति अपने आप को असुरक्षित महसूस कर रही थी।



Birsa Munda By Upendra Maharathi

यद्यपि जनजातीय जनसंख्या का एक निश्चित क्षेत्र में ही आवास था, बिरसा का लक्ष्य एवं महत्वाकांक्षा उस क्षेत्र तक सीमित नहीं थी। बिरसा के आंदोलन का लक्ष्य सिर्फ डीकुओं को खदेड़ना नहीं था बल्कि अपने दुश्मनों के राज को – ब्रिटिश राज को–हटा कर "बिरसा राज" एवं "बिरसा धर्म" की स्थापना करना था। 19 वीं शताब्दी में जनजातियों का इस प्रकार से क्षेत्रियता से ऊपर उठ कर राष्ट्रीय स्तर पर सोचना एवं आंदोलन करना, जनजातीय आंदोलनों के चरित्र के बदलाव को प्रदर्शित करता है।

जनजातीय किसानों के जीवन में एक और बदलाव तब आया जब उनका वन संसाधनों उपयोग का प्रथागत अधिकार सरकार द्वारा लिया जाने लगा। ऐसे विनिमयों के कारण वन प्रदेश भी अशांत एवं असंतुष्ट रहने लगे क्योंकि जनजातीय जनसंख्या का तो जीवन यापन ही वन संसाधनों पर निर्भर था।



1857 की क्रान्ति के बाद के भारत में जनजातीय किसानों ने भारत के हर क्षेत्र में विद्रोह किया। किंतु ऐसे विद्रोह केवल स्थानीय स्तर पर ही प्रभाव डाल सके। बहुत हद तक इसका कारण भारतीय कृषक समाज का जटिल वर्गीकरण माना जा सकता है।

पूरी 19 वीं सदी एवं 20 वीं सदी के शुरूआती वर्षों में पूरे भारत में जनजातीय आंदोलन होते रहे जो निरंतर अंग्रेज़ी सरकार को चुनौती देते रहे। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने महात्मा गांधी की प्रेरणा से इस जनजातीय शक्ति को भी भारत के स्वतंत्रता संग्राम में बखूबी लगा दिया।

Tribal Uprising

Along with the unrest among the settled agriculturists, the earlier tradition of millenarian movements among the tribal peasants also continued well into the post-1857 period, a major example of this tradition being the Munda *ulgulan* of 1899-1900, under the guidance of a charismatic religious leader, Birsa Munda. The alienation of Munda land and the advent of dikus had spurred an agitation under their leaders in 1890-95. This movement gradually came under the leadership of Birsa, who for two years mobilized the Munda tribal peasants from a wide region in Chota Nagpur in Bihar, by promising to protect them from an apocalyptic disaster.

Tribal territoriality notwithstanding, Birsa's ambitions were no longer localized. The aim of his movement was not merely to drive out the dikus, but "destroy their enemies and put an end to the British Raj" and establishing in its place " a Birsa Raj and a Birsaite religion". It was this political awareness and ability to connect to the broad picture that was new in the late nineteenth century tribal movements.

Another new feature of the tribal peasant life of this period was the "unquiet woods". The people in the woods became restless as government regulations threatened to deprive them of their customary user rights on forest resources.

In post-1857 India peasant and tribal revolts occurred in all parts of the country; but they remained disjointed or isolated and localized movements. To a large extent, this was due to the complex class structure in Indian agrarian society, which had great regional variations.

The series of peasant uprisings that took place throughout the nineteenth and the early twentieth centuries seriously contested the hegemony of the colonial state. The Indian National Congress after the advent of Gandhi tried to harness this force for its struggle against British rule.

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की नींव

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, जो भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की निरंतर प्रणेता रही, की स्थापना दिसंबर 1885 मे मुंबई में, श्री डब्लू. सी. बैनर्जी की अध्यक्षता में एक बैठक में हुई। दरअसल, राष्ट्रीय स्तर के किसी संगठन की रचना की प्रेरणा, एक अवकाश प्राप्त अंग्रेज़ प्रशासनिक अधिकारीश्री ए. ओ. ह्यूम ने दी थी। श्री ह्यूम पूरे भारत की यात्रा करने के बाद मुंबई, कलकत्ता एवं मद्रास के प्रमुख नेताओं से मिले थे एवं उन सब को एक साथ (पूना में) बैठ कर विचार विमर्श करने की सलाह दी थी।



राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना में एक अंग्रेज़, श्री ह्यूम, की भूमिका को ले कर कई विवाद उठे। इतिहासकारों ने भी इस भूमिका को अंग्रेज़ी षड़यंत्र का रूप दिया। उस समय के कई राष्ट्रीय नेताओं ने भी इतिहासकारों की सोच पर सहमति जताई। किंतु बाद के सारे शोध ने ऐसी बातों को निरर्थक साबित कर दिया।



इस तरह, राष्ट्रीय कांग्रेस, जिसका जन्म दिसंबर 1885 मे हुआ, शुरू से ही प्रादेशिक दूरियों एवं मतभेदों को पाटने का कार्य करती रही। कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन में ही इस संगठन का लक्ष्य भारतीय एकता की भावना को बढ़ावा देना बताया गया।

क्षेत्रीय प्रतिद्वन्द्विता एवं ग़लतफहमियों को दूर करने के लिए कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशनों को अलग–अलग स्थानों पर आयोजित करने का निर्णय लिया गया। अधिवेशन की अध्यक्षता भी वह ही कर सकता था, जो उस प्रदेश या क्षेत्र का नहीं हो, जहाँ अधिवेशन हो रहा हो। 1888 में यह निश्चित हुआ कि कोई भी प्रस्ताव तब तक पारित नहीं हो सकता जब तक अधिकांश हिंदू या मुसलमान उससे असहमत हों। 1889 में विधान परिषदों के सुधार के संदर्भ में अल्पसंख्यकों की बात भी ज़ोर शोर से हुई। इन सब सुधारों एवं प्रस्तावों का मूल लक्ष्य बस देश भर के समान सोच वाले लोगों को एक जुट करना था। कांग्रेस की कार्यकारिणी एकदम संसद की तरह चलती थी एवं सारे सत्र लोकतांत्रिक आधार पर होते थे। नए भारत की नई राजनैतिक रूप–रेखा की जैसे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, प्रतिनिधि बन गई थी।

Foundation of the Indian National Congress

The Indian National Congress, which was destined to play a dominant role in India's struggle for independence, was formed at a national convention held in Bombay in December 1885, under the presidency of W.C. Bonnerji. A retired British civil servant A.O. Hume was crucially involved in this process, as it was he, who toured across the subcontinent talked to prominent political leaders in Bombay, Madras and Calcutta and persuaded them to meet at a national conference that was initially supposed to meet at Poona.

Hume's involvement in it gave rise to a lot of controversy regarding the origins of Congress. The safety-valve theory or the conspiracy theory, which was deduced from this simple fact, was for a long time subscribed to by all shades of historians, in the right, left and centre. It was even accepted by some of the stalwarts of nationalist movement. In recent researches, however, it has been thoroughly discredited.

The Indian National Congress, which was thus born in December 1885, tried from the very beginning to eliminate such regional differences. The first Congress declared that one of its major objectives would be the "development and consolidation of those sentiments of national unity". The decision to hold the Congress session every year in different parts of the country and to choose the president from a region other than the one where the session was being held, was meant to break the regional barriers and misunderstandings. In 1888 it was decided that no resolution would be passed if it was objected to by an overwhelming majority of Hindu or Muslims delegates; a minority clause figured prominently in a resolution adopted in 1889 demanding reform of the legislative councils. The avowed objective of all these endeavours was to create a forum through which the politically conscious people of different regions of India could unite. It was meant to be organised in the way of a parliament and the sessions were conducted democratically. It represented, in a true sense of the term, the modern politics in India and obviously therefore, it signalled the coming of a new trend in Indian public life.

प्रारम्भिक राष्ट्रीयता : असंतोष एवं मतभेद मध्यवर्ग एवं आर्थिक राष्ट्रीयता

कांग्रेस के प्रथम बीस वर्षों की राजनीति को मध्यवर्गी राजनीति की उपाधि दी जाती है। उस समय कांग्रेस पूरी तरह से एक राजनैतिक पार्टी बन भी नहीं पाई थी–वह बस एक संगठन के रूप में वार्षिक अधिवेशनों में 3 दिनों के लिए मिलती थी और कुछ प्रस्तावों पर विचार विमर्श कर के उसे पारित करती थी। इसके सदस्य अंशकालिक राजनेता थे और निजी जीवन में सफल व्यावसायी। इन मध्यमार्गियों पर एडमण्ड बुर्क, जॉन स्टूअर्ट मिल, जॉन मॉर्ली आदि उपयोगितावादी विचारकों का गहरा प्रभाव स्पष्ट नजर आता था। इन्होंने कभी समानता की माँग नहीं रखी बल्कि स्वतंत्रता को वर्ग विशेषाधिकार से जोड़ा और हमेशा खण्डशः सुधार की बात की। वे विचारों से धर्मनिरपेक्ष तो थे परन्तु कई बार साम्प्रदायिक स्वार्थों से स्वयं को ऊपर उठाने में विफल भी हो जाते थे। वे ब्रिटिश सरकार की उपनिवेशिय नीतियों से भली–भाँति परिचित थे और नीतियों में सुधार चाहते थे। ऐसी राजनीति के सुप्रसिद्ध समर्थक श्री दादाभाई नौरोजी ने 1871 मे कहा था कि "मेरे विचार में भारत के लिये इससे बड़ी त्रासदी नहीं हो सकती कि अंग्रेज़ उसे अपने हाल पर छोड़ जाए"।





सूरत में, 1907 में, कांग्रेस टूट गई–मध्यमार्गी राजनीति विफल हो रही थी और सदस्यों में असंतुष्टता बढ़ती जा रही थी। वे मोहनदास करमचंद गाँधी थे जिन्होंने विश्वयुद्ध के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में कांग्रेस को दोबारा जोड़ा और भारतीय राजनीति के विश्वपटल पर ला कर खड़ा कर दिया।

Early Nationalism: Discontent and dissension

The Moderates and Economic Nationalism

Congress politics during the first twenty years of its history is roughly referred to as moderate politics. Congress at that time was hardly a full-fledged political party; it was more in the nature of an annual conference, which deliberated and adopted resolutions during the "three day conference" and then dispersed. Its members were mostly part-time politicians, who were successful professionals in their personal lives. The moderates were primarily influenced by Utilitarian theories, as Edmund Burke, John Stuart Mill and John Morley had left a mark on their thoughts and actions. They did not demand equality, which seemed to be a rather abstract idea: they equated liberty with class privilege and wanted gradual or piecemeal reforms. They were secular in their attitudes, though not always forthright enough to rise above their sectarian interests. They were conscious of the exploitative nature of British rule, but wanted its reform, not expulsion. As Dababhai Naoroji, one of the early stalwarts of this politics, put it in 1871: **"In my belief a greater calamity would not befall India than for England to go away and leave her to herself."**





It was because of the failures of the moderate politics that an extremist reaction was soon to develop in Congress politics to lead to what is often referred to as the notorious Surat Split of 1907. The reunification of the Congress and the expansion of the political nation had to wait for the arrival of Gandhi and World War One.

स्वदेशी आंदोलन



Lala Lajpat Rai



Jawahar Lal Nehru addressing the Lahore Congress Session, 1929

लॉर्ड कर्ज़न के प्रशासन ने जैसे राष्ट्रीयता की आग को हवा दे दी हो। लॉर्ड कर्ज़न (1899–1905) ब्रिटिश न्यायसंगिता के सच्चे पुजारी थे और उन्होंने सर्वोत्कृष्ट ब्रिटिश सैन्यदल को भारतीयों पर जातिभेद एवं अक्खड़पन दिखाने के लिए फटकारा भी था। परन्तु इसके साथ वे ब्रिटिश उपनिवेशिता के बहुत बड़े समर्थक भी थे। उन्होंने बंगाल में उभरते राष्ट्रवाद को रोकने के उद्देश्य से 1905 में बंगाल का बँटवारा कर दिया। कहा जाता था कि इस समय भारतीय कांग्रेस पर भी बंगाल के नेताओं का ही दबदबा था। किंतु कर्ज़न यहाँ चूक गए – बँटवारे ने कांग्रेस को कमज़ोर करने के बजाए, उसे एक नया जोश, एक लक्ष्य, एक केंद्रबिन्दु दे दिया। उग्रमार्गी नेताओं ने कांग्रेस की बागडोर सम्भालने का निश्चय कर लिया और ब्रिटिश उपनिवेशीय राज का सीधा, परियुद्धक राजनैतिक विरोध होने लगा।

साथ ही 3 बंगाली भाषी क्षेत्र – गोआलपारा, सिलहट एवं कछार, आसाम में जोड़ दिए गए थे। इस समय विदेशी प्रशासकों को असम को मज़बूत करना, बंगाल को कमज़ोर करने से अधिक महत्वपूर्ण लगा था।

किंतु क्या बंगाल का बँटवारा सचमुच प्रशासनिक कारणों से किया गया था?



Jatin Das, a revolutionary philosopher

फरवरी 1904 में ढाका में दिए गए अपने भाषण में लॉर्ड कर्ज़न ने अपनी इस योजना का कारण स्पष्ट करते हुए कहा था कि पूर्वी बंगाल के नए राज्य में मुसलमानों में एकता रह पाएगी जो मुसलमान राज के बाद भारत में कभी नहीं रही। इस बँटवारे की नीति के लिखित मसौदे में भी, जो सितंबर 1904 में तैयार किया गया था, स्पष्ट लिखा गया था कि आगे चलकर ढाका को, जो इस नए राज्य का मुख्यालय था, इस राज्य की राजधानी का दर्जा दिया जाएगा। जहाँ मुसलमानों के अधिकारों एवं हितों का ख़ास ख़्याल रखा जाएगा। आश्चर्य नहीं कि क्यूँ इस क्षेत्र के मुसलमानों ने बँटवारे का कोई ख़ास विरोध नहीं किया।



India's declaration of Independence, 26 January 1930



Surya Sen, a revolutionary nationalist

किंतु बंगाल में तो बँटवारे से जुड़ाव हो गया – बंगाली लोगों ने, बँटवारे एवं ब्रिटिश राज के विरोध में एकजुट होकर आंदोलन शुरू कर दिया।



Swadeshi Movement



The Curzonian administration magnified this nationalist angst further. Lord Curzon (1899-1905), a true believer in British righteousness, had the courage to chastise an elite British regiment for its racial arrogance against native Indians. But he was also the last champion of that self-confident despotic imperialism.

The last in the series was the partition of Bengal in 1905,designed to weaken the Bengali nationalists who allegedly controlled the Congress. But instead of weakening the Congress, the Curzonian measures acted as a magic potion to revitalize it, as the extremist leaders now tried to take over Congress, in order to commit it to a path of more direct and belligerent confrontation with colonial rule.



The history of the Swadeshi movement in Bengal (1905-11), which may be described as the best expression of extremist politics. The movement began as an agitation against the partition of Bengal in 1905, which Lord Curzon had designed as a means of destroying political opposition in this province. The Bengal Presidency as an administrative unit was increasing in size with the accession of territories through conquest and annexation. As a result, its frontiers at one point extended to Sutlej in the northwest, Assam on the northeast and Arakan on the southeast. The presidency was indeed of an unwieldy size and therefore, the necessity to partition Bengal was being discussed since the time of the Orissa famine of 1866. In 1874 Assam was actually separated with 3 million people, while three Bengali-speaking areas, i.e., Sylhet, Goalpara and Cachar, were also added to it. Safeguarding the interests of Assam, rather than weakening Bengal, seemed to have been the more important consideration behind the policy decision at this stage.


BLACK BILL DEMONSTRATORS FIRED ON
TRAGEDY AT DELHI

Newspaper report from the Bombay Chronicle of 1 April 1919



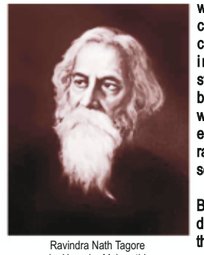
C. Vijaiaraghavacharya



Lord Curzon

Was the partition really for administrative efficiency?

Curzon, in Dacca speech in February 1904, defined this policy in more categorical terms; in the new province of East Bengal the Muslims would enjoy a unity, which they never enjoyed since the days of the old Muslim rule. The final draft of the partition scheme, prepared in September 1904, also emphasised that in course of time Dacca, the headquarters of the new province, would assume the character of a provincial capital where Muslim interests would be strongly represented if not become predominant. No wonder, the Muslims in eastern Bengal gradually rallied round the partition scheme.



Ravindra Nath Tagore by Upendra Maharathi



Gandhiji and Umar Sobani

But the partition instead of dividing and weakening the Bengalees, further united them through an anit-partition agitation.

उग्रमार्ग का उद्भव

19 वीं सदी के अंत तक मध्यमार्ग की विफलता सर्वविदित हो चुकी थी और कांग्रेस के ही कुछ सदस्यों ने प्रतिक्रिया में एक अन्य मार्ग जिसे उग्रमार्ग या अतिमार्ग कहा जाने लगा, की तरफ रूख कर लिया। मध्यमार्ग की आलोचना होने लगी और उनकी राजनीति को भिक्षावृत्ति से ग्रस्त माना जाने लगा।



B. C. Pal



Aurobindo, Tilak, Ajit Singh and G. S. Khaparde

निवेदन एवं विनती से हट कर अब उपनिवेशीय राज की दुर्नीतियों, कपड़ों एवं अन्य सामग्री, संगठनों एवं संस्थाओं का खुले आम विरोध शुरू हो गया था। साथ ही, इन सब के देशी विकल्पों की भी शुरूआत होने लगी थी। प्रेरणा का स्रोत बना नया क्षेत्रीय साहित्य जिसने भारतीयता, भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता को नई गौरवमयी परिभाषाओं से सँवारा।

यह उग्रमार्ग 3 क्षेत्रों में, तीन व्यक्तियों के नेतृत्व में विकसित होने लगा–बंगाल में श्री बिपिन चन्द्र पाल, पंजाब में लाला लाजपत राय तथा महाराष्ट्र में बाल गंगाधर तिलक ने इस राजनीति का नेतृत्व किया। भारत के अन्य क्षेत्रों में उग्रमार्ग लगभग न के बराबर था। मध्यमार्गीय राजनीति से हासिल निराशा ही उग्रमार्ग के उद्भव का कारण थी।



B. C. Pal with Aurbindo Ghose

उग्रमार्गीयों का लक्ष्य भी स्वराज ही था परन्तु अलग–अलग नेताओं ने अलग–अलग मुद्दों को प्राथमिकता दी। तिलक के लिए प्रशासन पर भारतीय नियंत्रण होना सबसे अधिक महत्वपूर्ण था जबकि पाल के लिए स्वराज का अर्थ पूर्ण स्वराज, पूर्ण नियंत्रण से कम कुछ भी नहीं था। बंगाल में ही श्री अरविन्द घोष ने भी स्वराज का अर्थ पूर्ण राजनैतिक स्वतंत्रता ही समझा। फिर भी अधिकतर लोगों के लिए स्वराज का अर्थ ब्रिटिश साम्राज्य के तहत ही स्वप्रशासन था। विद्रोह के तरीकों से बदलाव स्पष्ट नज़र आने लगा था। प्रार्थना,



Lala Lajpat Rai, B. G. Tilak and B. C. Pal

फिर भी 1906–1907 में नेताओं के मन का सर्वप्रथम कार्य यह था कि कैसे कांग्रेस को राष्ट्रीय स्तर की राजनैतिक पार्टी बनाया जाए और कैसे सारे क्षेत्रों को एक जुट किया जाए। बंगाल के उग्रमार्गी, महाराष्ट्र के तिलक के गुट से मिले तथा कांग्रेस के 1906 के कलकत्ता सत्र को एक नई दिशा देने का प्रस्ताव रखा। 1906 के इस सत्र में गोखले एवं मेहता के विरोध के बावजूद, उग्रमार्गियों के सभी प्रस्ताव, बंगाल के मध्यमार्गियों के सहयोग से, भारी मतों से पारित हो गए। चार मुख्य प्रस्ताव, जो पारित हुए वे थे – विदेशी बहिष्कार, स्वदेशी, राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली तथा स्वराज। बंगाल के बँटवारे का तीव्र विरोध एवं आलोचना की गई। इसी स्थान पर तिलक को उग्रमार्गियों का नेता चुना गया तथा मुंबई के मध्यमार्गियों के सहयोग से कांग्रेस के अगले मुंबई सत्र तक, कलकत्ता सत्र के सभी प्रस्तावों को कामयाब करने का निश्चय किया गया।



Aurobindo presiding over a meeting of delegates to the Congress Session at Surat, 1907

कांग्रेस का अगला सत्र 1907 में उग्रमार्गियों के गढ़ पूना में होना तय था परन्तु मध्यमार्गियों ने इसी कारण से सूरत को सत्र का स्थान चुना। लाला लाजपत राय जिन्हें देशनिकाला की सज़ा मिली थी, सज़ा की अवधि पूरी कर मंडाले से भारत आ चुके थे और उग्रमार्गियों के कांग्रेस अध्यक्ष पद के पसंदीदा उम्मीदवार थे। मध्यमार्गियों ने राशबिहारी बोस को चुना था। श्री राय ने इस मतभेद को समाप्त करने की इच्छा से मनोनीत होना ही अस्वीकार कर दिया।

The Rise of Extremism

When the failure of moderate politics became quite apparent by the end of the nineteenth century, a reaction set in from within the Congress circles and this new trend is referred to as the "Extremist" trend. The moderates were criticized for being too cautious and their politics was stereotyped as the politics of mendicancy. This extremism developed in three main regions and under the leadership of three important individuals, Bipin Chandra pal in Bengal, Bal Gangadhar Tilak in Maharashtra and Lala Lajpat Rai in Punjab; in other areas extremism was less powerful if not totally absent.

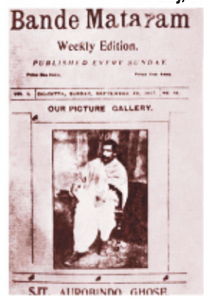




Dr. Annie Besant, President of the Cognress, 1917

Frustration with moderate politics was definitely the major reason behind the rise of extremist reaction.

The goal of the extremists was swaraj, which different leaders interpreted differently. For Tilak, it meant Indian control over the administration, but not a total severance of relations with Great Britain. Pal believed that no self-government was possible under British paramountcy; so for him, swaraj was complete autonomy, absolutely free of British control. Aurobindo Ghosh in Bengal also visualized swaraj as absolute political independence. However, for others swaraj still meant self-rule within the parameters of British imperial structure. The radicalisation was actually visible in the method of agitation, as from the old methods of prayer and petition they moved to that of passive resistance. This meant opposition to colonial rule through violation of its unjust laws, boycott of British goods and institutions, and development of their indigenous alternatives, i.e., swadeshi and national education. The ideological inspiration for this new politics came from the new regional literature, which provided a discursive field for defining the Indian nation in terms of its distinct cultural heritage and civilisation.



First Page of Bande Mataram September 1907

However, the real issue in all-India politics in 1906-07 was to be incorporated into the future politics of the Congress on an all-India theatre.



Aurobindo after his arest in 1908

The Bengal extremists got in touch with the Tilak group in Maharashtra and sought to give the Congress programme a new orientation at the Calcutta Congress of 1906. And here, in spite of the opposition of Gokhale and the machinations of Mehta, they scored a resounding victory with the help of the Bengal moderates. Four resolutions were passed in favour of boycott, swadeshi, national education and swaraj, and partition was condemned. It was here that the Extremist Party was born with Tilak as the leader and their main goal was to keep intact the four Calcutta resolutions, which the Bombay moderates were determined to revise at the next session of the Congress.



Syed Hassan Imam, President of the Congress, 1918

The 1907 session of the Congress was scheduled to take place at Poona, which was an extremists' stronghold. The moderates, therefore, shifted the venue to Surat. Lala Lajpat Rai, who had been deported, had by then returned from Mandalay and the extremists proposed his name as the next Congress president, while the moderate candidate was Rash Behari Bose. But Rai, who did not want a split, refused to accept the nomination.



मुस्लिम राजनीति एवं मुस्लिम लीग की स्थापना

भारत की राष्ट्रीयता की मुख्यधारा, जो भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के संरक्षण में पनप रही थी, अपने आप को उभरते हुए हिन्दू राष्ट्रीयता से अलग नहीं कर पाई थी। मुसलमानों को यह अप्रिय लगता था। फिर भी 19 वीं सदी के अंत तक मुसलमान स्वयं भी कोई समरूपी समुदाय नहीं कहे जा सकते थे, ना ही उनकी कोई अलग या स्पष्ट राजनैतिक विचारधारा थी।



Muslim League

1906 में मौर्ली के बजट भाषण से आभास मिला कि भारत में प्रतिनिधि सरकार की स्थापना होने वाली है। इससे बोर्ड के मुस्लिम सदस्यों को लगने लगा कि अब नव निर्मित स्वदेशी समितियों एवं संगठनों के सारे निर्णय कांग्रेस पार्टी के सुसंगठित हिन्दुओं के हाथों लिए जाएँगे। इसी संदर्भ में 1 अक्टूबर 1906 को शिमला में मुसलमानों का एक दल गवर्नर जनरल लॉर्ड मिंटो से मिला। कहा जाता है कि सारी घटनाएँ अंग्रेज़ों की योजना के तहत हो रही थीं और अलीगढ़ कॉलेज के यूरोपीय प्रिंसिपल द्वारा कार्यान्वित करवाई जा रही थीं। अलीगढ़ कॉलेज के सचिव एवं वरिष्ठ नागरिक श्री मोहसिन–उल–मुल्क मुस्लिम युवाओं को भी इन सबसे जोड़ना चाहते थे और उम्मीद रखते थे कि बंगाल के मुसलमानों का भी उनको सहयोग मिलेगा। लेकिन जो मसौदा शिमला गया उसमें सिर्फ अलीगढ़ के मुसलमानों के गिले शिकवे ही थे, बंगाल के मुसलमान उस दल में भी नहीं गए और उनकी माँगों को अधिक संवेदनशील एवं अलगाववादी मान कर मसौदे में शामिल ही नहीं किया गया।

मसौदे में मुसलमानों को एक अलग समुदाय बताया गया जिनके राजनैतिक हित हिंदुओं से अलग थे; अतः उन्हें अल्पसंख्यक समुदाय होने के नाते कुछ विशेष अधिकार प्रतिनिधित्व की उम्मीद थी। वाइसरॉय ने इस दल की बातें ध्यान से सुनीं तथा बंगाल के मुसलमानों को आश्वासन दिया कि उनके अधिकारों का भी ख्याल रखा जाएगा।



Muslim League leaders pose for a group photo at Lucknow, 1916

30 दिसंबर, 1906 को ढाका शिक्षा अधिवेशन में एक नई पार्टी का जन्म हुआ जिसे नाम दिया गया अखिल भारतीय मुस्लिम लीग। इस पार्टी का प्रमुख लक्ष्य था मुसलमानों के हितों एवं अधिकारों की रक्षा, ब्रिटिश सरकार से वफादारी और अन्य समुदायों के साथ सौहार्द बनाए रखना। कांग्रेस के मुस्लिम सदस्यों ने इस अलगाव को रोकना चाहा किंतु अधिकतर शिक्षित मुसलमान मुस्लिम लीग के सदस्य बन चुके थे और कांग्रेस से अलग एक नए रास्ते पर चल पड़े थे।



1910 तक मुस्लिम लीग मोहम्मदन एजुकेशनल कॉन्फ्रेंस का ही एक हिस्सा बनी रही किंतु बाद में अलग हो गई। 1909 से 1917 तक प्रादेशिक मुस्लिम लीगों की भी प्रदेशों में स्थापना हो गई और उन्हें अपना संविधान खुद बनाने की स्वायत्तता दी गई। भारत में मुस्लिम समुदाय की पहचान को भारतीय अल्पसंख्यक समुदाय से एक अलग राष्ट्रीय पहचान बना पाने में एक लम्बी एवं कठिन यात्रा तय करनी पड़ी। कांग्रेस और मुस्लिम लीग के रिश्तों में भी रूखापन सा था। 1920 और 1924 के बीच दोनो संगठनों ने मिल कर ख़िलाफत आंदोलन में भाग लिया लेकिन इसके बाद दोनों दो अलग रास्तों पर निकल पड़े।

संवैधानिक सुधार

19 वीं सदी के दूसरे चरण में, विशेष कर 1857 की क्रान्ति के दमन के बाद, ब्रिटिश उपनिवेशवाद ने अभूतपूर्व रूप अपना लिया। ताकतवर पैतृकता की भावना अब क्रूर तानाशाही में बदल चुकी थी जिसे किसी भी स्तर पर भारतीय स्वराज या स्वप्रशासन मंजूर नहीं था।

अतः भारत पर तानाशाही से शासन किया गया। भारतीयों को शिक्षित करना ब्रिटिश राज का नया उपनिवेशीय लक्ष्य बन गया। उनके अनुसार भारत तब तक स्वराज का अधिकारी नहीं हो सकता था जब तक उसे अंग्रेज़ों द्वारा बुद्धिवाद एवं प्राकृतिक न्याय की संपूर्ण शिक्षा न मिल जाए। मकॉले एवं रिपन जैसे जे. एस. मिल के शिष्यों का मानना था कि भारत को उस दिन स्वराज मिल सकता था जिस दिन उसकी शिक्षा सम्पन्न हो जाए।



The members of Home Rule League

फिर भी ब्रिटिश राज को 19 वीं सदी के अंत और 20 वीं सदी के शुरूआत तक भारत में प्रतिनिधि सरकार बनानी ही पड़ी। 1861 के इंडियन काउन्सिल ऐक्ट ने मद्रास, बंगाल एवं मुंबई में सीमित स्वराज की स्थापना की तथा 1886 में यह उत्तर पश्चिमी क्षेत्रों में भी लागू किया गया। 1897 तक पंजाब में भी सीमित स्वराज आ गया। 1892 के अधिनियम ने प्रादेशिक विधान परिषदों में मनोनीत सदस्यों की संख्या बढ़ा दी। फिर स्थानीय स्वराज अधिनियम 1882, इल्बर्ट बिल 1883 तथा मौर्ले–मिंटो सुधार 1909 एवं मौन्टेग्यू–चेम्सफोर्ड सुधार 1919 भी लागू हो गया।

सत्ता में इस प्रकार की ढिलाई, भारतीय सहयोग की आशा में की गई थी। निर्वाचित भारतीय प्रतिनिधि निश्चित रूप से अधिक राजस्व कमा सकते थे और खर्च भी सोच समझ कर ही करते। यह उपनिवेशिय शासन में कोई नई बात नहीं थी। जिन अधिनियमों से सीमित स्वराज मिला था, उनसे भी कोई भी राजनैतिक पार्टी संतुष्ट नहीं थी।

प्रथम विश्व युद्ध के दौरान संविधान से असंतुष्टि एवं स्वराज की माँगें और बढ़ गईं। ब्रिटिश राजनैतिक समूहों में भी भारतीय स्वराज के चर्चे होने लगे जिससे ब्रिटिश नीतियों में भी कई बदलाव आ गए। परन्तु अपनी नीतियों में सुधार लाने का निर्णय अंग्रेज़ों ने भारत की दिन प्रति दिन बदलती राजनीति को देखते हुए ही किया होगा। वाइसरॉय लॉर्ड चेम्सफोर्ड ने भी स्थिति की गंभीरता समझते हुए ब्रिटिश साम्राज्य के तहत ही भारतीय स्वराज की बात करनी शुरू कर दी। परन्तु अंग्रेज़ों के मन में था कि भारतीयों को स्वराज धीरे–धीरे दिया जाए, ताकि शिक्षा, साम्प्रदायिक मतभेद एवं अन्य राजनैतिक मसले स्वराज मिलने से पहले ही हल हो जाएँ। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो स्थिति यह थी कि स्वराज कब मिलेगा यह निश्चित नहीं था परन्तु स्वराज मिलने के बाद की कठिनाइयों का हल ढूंढ़ा जा रहा था। अंततः, जैसे जैसे भारतीय राजनीति में मध्यमार्गियों के स्थान को उग्रमार्गियों ने ले लिया, यह बात स्पष्ट हो गई कि ब्रिटिश सांसदीय संस्थाओं को भारत में स्थापित करने की प्रक्रिया शुरू हो गई थी। दिसंबर 1916 में कांग्रेस एवं मुस्लिम लीग ने पहली बार एक साथ एक संवैधानिक कार्यक्रम, लखनऊ में तैयार किया। स्वराज आंदोलन एवं अप्रैल 1917 में ऐनी बेसेंट के भारतीय राजनीति में आगमन ने भारतीय राजनीति पर गहरा प्रभाव डाला। तीव्र माँगों के विरूद्ध 1917 तक, जब तक एडविन मौन्टेग्यू राज्य सचिव नहीं बने, भारत में ब्रिटिश राज के नए स्वरूप एवं दिशा का स्पष्टीकरण नहीं हुआ। मौन्टागू के बारे में एक संवेदशील इतिहासकार ने लिखा है कि "वे, रिपौन के बाद नियुक्त सचिवों में सबसे उदार सचिव थे।" 20 अगस्त 1917 को लंदन के हाउस ऑफ कॉमन्स में मौन्टेग्यू ने एक ऐतिहासिक घोषणा की, कि "अब भारत में ब्रिटिश सरकार को भारत को स्वराज की ओर ले जाने वाली नीतियों को लाना होगा जिससे भारत में स्वप्रकाशित संस्थाओं का विकास हो सके ताकि भारत ब्रिटिश साम्राज्य का ऐसा हिस्सा बन सके जहाँ स्वराज एवं स्व–प्रशासन हो।" यह घोषणा भारतीय स्वतंत्रता की बात कदाचित् नहीं कर रही थी न ही भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के अंत की ओर इंगित कर रही थी। परन्तु निश्चय ही यह 1909 के अधिनियम के ऊपर एक बड़ा सुधार थी क्योंकि इसमें निर्वाचित बहुसंख्यकों को कार्यपालन की जिम्मेवारी थी। परन्तु स्वराज कब हासिल होगा, इसकी कोई चर्चा नहीं थी – अनिश्चित काल भारतीय नेताओं में असंतुष्टि एवं अविश्वास पैदा कर रहा था।



Mrs. Annie Besant with G. S. Arundale and B. P. Wadia



The Home Rule League deputation in London

भारत सरकार अधिनियम 1919 के अनुसार केंद्र में द्विसदन, राज्य परिषद एवं विधान सभा बनने का निर्णय हुआ। विधान सभा के निर्वाचित सदस्यों को मंत्रियों के ऊपर कोई अधिकार नहीं था। वाइसरॉय पर भी निर्णय बदल सकते थे।

Muslim Politics and Foundation of the Muslim League

The mainstream Indian nationalism, which was growing under the aegis of the Indian National Congress-and which, as we have seen previously, failed to maintain its separation from the blooming Hindu nationalism-was first contested by the Muslims. However, in the late nineteenth centuty, the Muslims were by no means a homogeneous community with a discernible political opinion.

The Secretary of State Morley's budget speech of 1906 indicated that representative government was going to be introduced in India. This alarmed Muslim leaders across the board, as they thought that in the new self-government bodies they would be swayed by the Hindu majority who were now well organized under the Congress. This provided the context for the Simla deputation of 1 October 1906 to the Governor General Lord Minto. For a long time the prevalent theory was that it was a "command performance", entirely stage-managed by the British, through the European principal of the Aligarh College, W.A.J. Archbald. The initiative had come from the Aligarh veterans, like Mohsin-ul-Mulk, the secretary of the Aligarh College, who wanted to assuage the feelings of younger Muslims; and it was hoped that the Bengal Muslims would also join any such deputation. But in the end the grievances of the Bengal Muslims were bypassed for being too sensitive or divisive and no Bengali joined the deputation to Simla. The petition, which the Aligarh leaders drafted, represented only their interests. It depicted the Muslims as a separate community with political interests different from those of the Hindus and therefore, having legitimate claim to minority rights to proportional representation in the representative bodies and public employment. The deputation was given a patient hearing by the viceroy, and he also assured the east Bengalees that their rights would not be jeopardized.



Sir Sultan Muhammad Shah Aga Khan



At the All India Muslim League Working Committee Lahore Session, March 1940

So it was in this Dacca Educational Conference on 30 December 1906 that a new party was launched and it was called the All India Muslim League. Its professed goals were to safeguard the political rights and interests of the Muslims, to preach loyalty to the British and to further the cause of inter-communal amity. The Muslim supporters of the Congress immediately tried to counteract this move, but in vain; the majority of the educated Muslims had already decided to tread along a different path.

Until about 1910, for all practical purposes, the All India Muslim League maintained its existence only as an adjunct of the Mohammedan Educational Conference and then the two bodies were separated.

Between 1909 and 1917, provincial Muslim League were formed in all the major provinces and they enjoyed liberty to frame their own constitutions.

Constitutional Reforms

The second half of the nineteenth century, particularly the period after the suppression of the revolt of 1857, is considered to be the high noon of British imperialism in India. A self-confident paternalism tended to turn into a despotism, which was not prepared to accept any self-governing right for the Indians.

India, therefore, had to be governed despotically. So they conceived the imperial goal as an educative mission: Indians could be entrusted with self-government when they were properly educated for the purpose of self-rule in accordance with the principles of rationalism and natural justice. J.S. Mill had his disciples in India like Macaulay and Lord Ripon, who still believed that the Indians could be given self-governing rights at an appropriate date, when they would be properly educated for this.



B. G. Tilak, 1916

Yet the Government of India had to introduce, though gradually, the principle of representative self-government in the late nineteenth and the early twentieth centuries. The Indian Councils Act of 1861 established limited self-government in Bengal, Madras and Bombay and it was extended to the North-Western Provinces in 1886 and Punjab in 1897. The Act of 1892 increased the number of nominated members in provincial legislative councils. Then there were the Local Self-Government Act of 1882, the Ilbert Bill of 1883, the Morely-Minto Reforms of 1909 and the Montagu-Chelmsford Reforms of 1919.

So devolution of power was meant to buy Indian support, as the elected Indian representatives would be better able to raise more revenue and would be more judicious in spending it. This was not a very new idea in itself.

The Indian Councils Act of 1909 (Morley-Minto Reforms) provided for limited self-government and therefore, satisfied none of the Indian political groups.

'Dissatisfaction with the existing constitution and clamour for more self-governing rights increased during World War One. There was also now greater acceptance of the idea of Indian self-rule in British political circles, and this brought in important changes in British policies too. But the idea of reform perhaps originated in India, where the government had been facing the radical transformation of Indian politics on a day-to-day basis. This experience strengthened the new Viceroy Lord Chelmsford's liberal vision of enunciating the goal of "Indian self-government within the Empire". But as the Government of India's dispatch to the Secretary of State in November 1916 argued, this should be offered gradually, in keeping with the rate of diffusion of education, resolution of religious differences and acquisition of political experience. In other words, there was no definite timetable for devolution, but enough safeguards to protect Indians against the tyranny of their own rule.



A view of Lucknow Congress Session, 1916

However, the ultimate goal of transplanting British parliamentary institutions in India had to be declared as the moderates in Indian politics were gradually being sidelined by the radicals. In December 1916, the Congress and the Muslim League for the first time drew up a common constitutional programme at Lucknow. The beginning of the Home Rule agitation and the internment of its leader Annie Besant in April 1917 further radicalized Indian politics.



Now it was desperate for a declaration of goals for British rule in India, but nothing happened until Edwin Montagu took over as the Secretary of State for India in July 1917. He has been described by a sympathetic historian as "the most liberal Secretary of State since Ripon". Montagu on 20 August 1917 made a historic declaration at the House of Commons that henceforth British policy in India would have an overall objective of "gradual development of self-governing institutions, with a view to the progressive realization of responsible government in India as an integral part of British empire". The declaration, in other words, did not propose the end of empire or independence for India. But the reform proposals were definitely an improvement over the 1909 act, as its main theme was elected majority in the provinces with executive responsibility. But the responsible government was to be realized progressively, thus suggesting an indefinite timetable that could be easily manipulated to frustrate liberal expectations.



G. S. Khaparde and B. S. Moonje

और तब गांधीजी आए....

और तब गांधी आए! वे एक ताज़ी हवा के उस प्रबल प्रवाह की तरह थे, जिसने हमारे लिए पूरी तरह फैलना और गहरी सांस लेना संभव बनाया। वे रोशनी की उस किरण की तरह थे, जो अंधकार में पैठ गई और जिसने हमारी आंखों के सामने से परदे को हटा दिया। वे उस बवंडर की तरह थे, जिसने बहुत–सी चीज़ों को, ख़ासतौर से लोगों के दिमाग़ को उलट–पुलट दिया। वे कहीं आसमान से नहीं टपके थे। बल्कि भारत के करोड़ों लोगों के बीच से ही उभर कर सामने आए थे। वे हम में ही से एक थे। आम लोगों की भाषा बोलते हुए वे सतत् हमारा ध्यान जनता की भयावह और दयनीय अवस्था की ओर आकर्षित कर रहे थे। उन्होंने कहा कि तुम लोग, जो किसानों और मज़दूरों के शोषण पर गुज़र करते हो, उनकी पीठ से उतर जाओ; उस व्यवस्था को, जो ग़रीबी और तकलीफ़ की जड़ है, दूर करो। तब राजनैतिक आज़ादी की एक नई शक़्ल सामने आई और उसमें एक नया अर्थ पैदा हुआ। उनकी ज़्यादातर बातों को हमने आंशिक रुप में माना और कभी–कभी तो बिल्कुल ही नहीं माना। लेकिन यह सब एक गौण बात थी। उनकी सीख का सार था निर्भयता और सत्य; और इन दोनों के साथ सक्रियता मिली हुई थी और उसमें हमेशा आम लोगों की बेहतरी का ख़्याल था। हमारी प्राचीन पुस्तकों में यह कहा गया था कि किसी आदमी या किसी राष्ट्र के लिए सबसे बड़ा उपहार है अभय – निर्भयता; सिर्फ़ शारीरिक हिम्मत ही नहीं, बल्कि दिमाग़ से डर का हट जाना। हमारे इतिहास के ही प्रभात में जनक और याज्ञवल्क्य ने कहा था कि जनता के नेताओं का काम उसको (जनता को) निर्भय बनाना है। लेकिन ब्रिटिश राज्य के अंदर हिंदुस्तान में जो सबसे अहम् लहर थी, उसमें डर – कुचलने वाला, दम घोटनेवाला, मिटा देनेवाला–डर था–फ़ौज का, पुलिस का, चारों तरफ़ फैले हुए खुफ़िया विभाग का डर था; अफ़सरों की जमात का डर था; कुचलने वाले क़ानूनों और जेल का डर था; ज़मींदार के कारिंदे का डर था; साहूकार का डर था; बेकारी और भूखे मरने का डर था, जो हमेशा ही नज़दीक बने रहते थे। चारों तरफ़ समाये हुए इस डर के ही ख़िलाफ़ गांधी की शांत, किंतु दृढ़ आवाज उठी–"डरो मत!" क्या यह ऐसी आसान बात थी? नहीं। फिर भी डर के अपने कल्पना–चित्र होते हैं और वे असलियत से भी ज़्यादा डरावने रहते हैं और अगर ठंडे दिमाग़ से असलियत का विश्लेषण किया जाये तो उसके नतीजों को खुशी से भुगतने को तैयार रहा जाये, तो उसका बहुत–सा आतंक अपने आप ख़त्म हो जाता है।



इस तरह मानो अचानक ही लोगों के ऊपर से डर का काला साया छट गया; यह नहीं कि वह पूरी तरह हटा दिया गया, लेकिन फिर भी एक बहुत बड़ी, एक हैरत–अंगेज़ हद तक, तो हटा ही दिया गया। चूंकि डर झूठ का क़रीबी दोस्त है, इसलिए निडरता के साथ सच आता ही है। हिंदुस्तान की जनता जैसी भी थी, उससे कोई बहुत ज़्यादा सच बोलनेवाली नहीं बन गई; और न उस जनता ने रातों–रात अपने बुनियादी स्वभाव को ही बदल लिया। फिर भी एक बड़ी तब्दीली दिखाई पड़ी, क्योंकि झूठ और लुक–छिपकर काम करने की ज़रुरत कम हो गई। यह तब्दीली मनोवैज्ञानिक थी–ठीक इस ढंग से, मानो कोई मनोविश्लेषक प्रक्रिया का विशेषज्ञ रोगी के भूतकाल में गहरा घुस गया हो और उसने उस रोगी की मानसिक विकृति के कारण को जानकर उसे रोगी के सामने खोल दिया हो और इस तरह उसको उसके बोझ से छुटकारा दिला दिया हो।

साथ ही वह मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया भी थी, जिसमें उस विदेशी राज्य के सामने लंबे अरसे से सिर झुकाये रखने पर शर्म महसूस हुई, जिसने हमें गिरा दिया था और जिसने हमारी बेइज़्ज़ती की थी। इसमें यह इरादा भी मिला हुआ था कि चाहे नतीजा कुछ भी हो, अब आगे सिर न झुकाया जाये।

पहले के मुक़ाबले हम कोई ज़्यादा सत्यवादी नहीं बन गये, लेकिन अब अटल सत्य के प्रतीक गांधीजी बराबर हमारे सामने थे, जो हमको ऊपर खींचते थे और जो सत्य पर डटे रहने का हमें वास्ता दिलाते थे। सत्य क्या है ? पक्के तौर पर मैं यह नहीं जानता और शायद हमारे सत्य सापेक्षिक हैं और पूरे–के–पूरे हमारी पहुंच के परे हैं। अलग–अलग आदमी सत्य को अलग–अलग तरह से लेते हैं और हर आदमी पर अपनी–अपनी पृष्ठभूमि, शिक्षा और प्रवृतियों का बड़ा असर होता है। वही बात गांधीजी के साथ लागू है। लेकिन आदमी के लिए कम–से–कम वह तो सत्य है ही, जो वह खुद महसूस करता है और जो वह खुद समझता है। इस परिभाषा के अनुसार गांधीजी की तरह सत्य की धारणा रखनेवाले किसी भी शख़्स को मैं नहीं जानता। राजनीतिज्ञ के लिए यह गुण बहुत ख़तरनाक है, क्योंकि इस तरह तो वह अपने दिमाग़ को खोलकर सामने रख देता है और जनता को भी उस के बदलते हुए पहलुओं को देखने देता है।

जवाहरलाल नेहरु

And then Gandhi Came....

And then Gandhi came. He was like a powerful current of fresh air that made us stretch ourselves and take deep breaths; like a beam of light that pierced the darkness and removed the scales from our eyes; like a whirlwind that upset many things, but most of all working of people's minds. He did not descend from the top; he seemed to emerge from the millions of India, speaking their language, and incessantly drawing attention to them and their appalling condition. Get off the backs of these peasants and workers, he told us, all you who live by their exploitation; get rid of the system that produces this poverty and misery. Political freedom took new shape, then, and acquired a new content. Much that he said we only partially accepted or sometimes did not accept at all. But all this was secondary. The essence of his teaching was fearlessness and truth, and action allied to these, always keeping the welfare of the masses in view. The greatest gift for an individual or a nation, so we had been told in our ancient books, was Abhaya (fearlessness), not merely bodily courage but the absence of fear from the mind. Janaka and Yajnavalkya had said, at the dawn of our history, that it was the function of the leaders of the people to make them fearless. But the dominant impulse in India under British rule was that of fear – pervasive, oppressing, strangling fear; of the official class; fear of laws meant to suppress and of prison; fear of the moneylender; fear of unemployment and starvation, which were always on the threshold. It was against this all-pervading fear that Gandhi's quiet and determined voice was raised: Be not afraid. Was it so simple as all that? Not quite. And yet fear builds its phantoms which are more fearsome than reality itself, and reality, when calmly analysed and its consequences willingly accepted, loses much of its terror.

So, suddenly, as it were, that black pall of fear was lifted from the people's shoulders, not wholly of course, but to an amazing degree. As fear is close companion to falsehood, so truth follows fearlessness. The Indian people did not become much more truthful than they were, nor did they change their essential nature overnight; nevertheless a sea-change was visible as the need for falsehood and furtive behaviour lessened. It was a psychological change, almost as if some expert in psycho-analytical methods had probed deep into the patient's past, found out the origins of his complexes, exposed them to his view, and thus rid him of that burden.

There was that psychological reaction also, a feeling of shame at our long submission to an alien rule that had degraded and humiliated us, and a desire to submit no longer whatever the consequences might be.

We did not grow much more truthful perhaps than we had been previously, but Gandhi was always there as a symbol of uncompromising truth to pull us up and shame us into truth. What is truth? I do not know for certain, and perhaps our truths are relative and absolute truth is beyond us. Different persons may and do take different views of truth, and each individual is powerfully influenced by his own background, training, and impulses. So also Gandhi. But truth is at least for an individual what he himself feels and knows to be truth. According to this definition I do not know of any person who holds to the truth as Gandhi does. That is a dangerous quality in a politician, for he speaks out his mind and even lets the public see its changing phases.

Jawaharlal Nehru

मोहनदास करमचन्द गांधी का स्वदेश आगमन

वर्ष 1915 की 9 जनवरी को मोहनदास करमचन्द गांधी दक्षिण अफ्रीका से भारत आए। वे साथ में कोई सम्पत्ति नहीं लाए थे, साथ थी केवल एक प्रबल इच्छा–अपने देशवासियों की सेवा। यद्यपि बुद्धिजीवी वर्ग दक्षिण अफ्रीका में उनके काम और उपलब्धियों से परिचित था फिर भी देश में गुजरात तथा बम्बई क्षेत्रों के बाहर उन्हें बहुत कम ही लोग जानते थे। आश्चर्य नहीं कि गुजरात, बम्बई तथा कराची में उनका भव्य अभिनन्दन किया गया। मद्रास में उनके मित्रों में जी. ए. नटेसन ने उनकी आवभगत की। वे उनकी महत्वपूर्ण पुस्तक 'हिन्दस्वराज' के प्रकाशक भी थे। अपने राजनैतिक गुरु गोपाल कृष्ण गोखले की सलाह पर गांधीजी अपने देश को भलीभॉति जानने समझने के लिये भारत दर्शन पर निकल पड़े। उस समय गांधीजी शान्ति निकेतन में गुरुदेव के पास थे जब उन्हें अपने गुरु की मृत्यु का समाचार प्राप्त हुआ।





भारत में गांधीजी का पहला जन सम्बोधन फरवरी 1916 में बनारस हिन्दूविश्वविद्यालय के उद्घाटन समारोह में था। इसी वर्ष दिसम्बर में वे कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में लखनऊ भी गए थे। आधुनिक भारत के इतिहास का यह निर्णायक बिन्दु था। गांधीजी अपनी आत्मकथा में लिखते हैं–

'मेरे कार्य मेरी नियति निर्धारित करती है। मैं कभी उन्हें ढूंढ़ने नहीं जाता। वे सभी काम स्वयं ही मुझे मिल जाते हैं। दक्षिण अफ्रीका और अब लौटने पर भारत में भी मेरे साथ यही हो रहा है।''



अगर दक्षिण अफ्रीका में वह एक रेलवे टिकट कलक्टर था जिसने एक सत्याग्रही के जन्म का रास्ता बनाया तो भारत में चम्पारण का वह एक निर्धन किसान था, राजकुमार शुक्ल जिसने उन्हें भारत की धरती पर सत्याग्रह को परखने का सुअवसर दिया।



राजकुमार शुक्ल से अपनी भेंट के बारे में वे लिखते हैं– 'मुझ तक वह किसान आया जो भारत के किसी भी किसान जितना ही दरिद्र और निर्बल दिखता था, और बोला मैं चम्पारण से आया हूँ आप मेरे जिले में आएं।' गांधीजी ने इससे पहले कभी इस जगह का नाम नहीं सुना था जो हिमालय की तलहटी में नेपाल राज्य के पास बिहार का एक छोटा सा गांव था।





सदियों से चम्पारण के किसान खेती बाड़ी करते थे और राजकुमार शुक्ल भी उन्हीं में से एक था। वह अशिक्षित था परन्तु दृढ़ निश्चयी था। वह कांग्रेस अधिवेशन में अपने प्रान्त की 'तिनकठिया' प्रथा के विरोध में अपनी बात रखने आया था और वहीं शायद किसी ने उसे कहा था 'गांधी से बात करो'।

इस निर्भीक किसान से प्रभावित हो गांधीजी चम्पारण जाने को तैयार हो गए।

वर्ष 1917 की 18 अप्रैल को गांधीजी ने भारत में बिहार के चम्पारण में किसानों के लिये अपना प्रथम सत्याग्रह आन्दोलन आरम्भ किया। और 1918 में अहमदाबाद के कपड़ा मिल के मज़दूरों के हित के लिये पहली बार मिल मालिकों के विवेक को जगाने के लिये 'उपवास' के नैतिक अस्त्र का प्रयोग किया। इसके बाद किसानों के लिये खेड़ा सत्याग्रह का नेतृत्व किया।





यह तीन आन्दोलन गांधीजी को भारतीय राजनीति के केन्द्र में ले आए और पहली बार ग्रामीण भारत की समस्याएँ राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रमुख मुद्दा बनीं।

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने उन्हें महान् आत्मा बताते हुए 'महात्मा' की उपाधि दी।

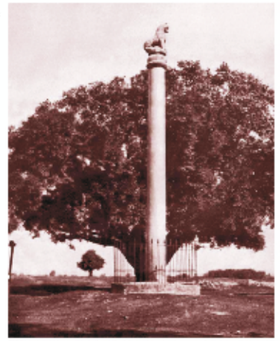
चम्पारण सत्याग्रह के दौरान गांधीजी के अनेक मित्र बने जिनमें आचार्य कृपालानी, प्रो. एन. आर.मलकानी, डॉ. राजेन्द्रप्रसाद, अनुग्रह नारायण सिंह तथा अन्य अनेक वे लोग थे जो बाद में स्वाधीनता आन्दोलन में उनके सहयोगी और अनुयायी बने। चम्पारण सत्याग्रह गांधीजी के जीवन में असाधारण मोड़ ले आया। उनके शब्दों में, ''मैंने वास्तव में जो काम किया वह एक बहुत ही साधारण सी बात थी। मैंने यह साबित कर दिया कि अपने ही देश में अंग्रेज़ मुझे हुक्म नहीं दे सकते''।

चम्पारण जीवन भर महात्माजी के लिये विशेष रहा। जब भारत छोड़ो आन्दोलन के दौरान 1942 में गांधीजी के जीवनी लेखक लुई फिशर उनके आश्रम में उनसे मिले तो गांधीजी ने उनसे कहा, ''मैं आपको बताता हूँ 'अंग्रेजो भारत छोड़ो' का बीज मंत्र मुझे कब और कहां मिला था। यह 1917 में चम्पारण में हुआ और मैं इसका श्रेय राजकुमार शुक्ल को देता हूँ।''

Mohandas Karamchand Gandhi returns Home

On 9 January 1915 Mohandas Karamchand Gandhi arrived in India from South Africa. With no possessions and with only one ambition – to serve his people. Though the intelligentsia had heard of his feat in South Africa, he was not much known outside Gujarat and Bombay residency. In Gujarat, Bombay and Karachi he was accorded a big reception. He had his friends in Madras – the family of G.A. Natesan, the publisher of his seminal work Hind Swaraj. On the advice of his political Guru Gopal Krishan Gokhale, Gandhiji set out on a countrywide pilgrimage to know his country and her people. Gandhiji was in Bengal to pay his respects to the Bard of Shantiniketan in 1915, when he heard about the sad demise of his Guru.





Gandhiji's first public address in India was on the occasion of the opening ceremony of the Banaras Hindu University in February 1916. In December, the same year he went to Lucknow to attend the Annual Convention of the Congress. This turned out to be a turning point in the history of modern India. Gandhiji has written in his Autobiography,

"Fate decides my undertakings for me. I never go to seek them. They come to me almost inspite of me. That has been my lot all my life long, in South Africa as well as ever since my return to India."

If in South Africa it was the Railway ticket collector who paved the way for the birth of a Satyagrahi, in India it was a poor peasant from Champaran, RajkumarShukla, who provided him a platform to test the power of Satyagraha on the Indian soil.



About his meeting with RajkumarShukla, Gandhiji recounted, 'a peasant came up to me looking like any other peasant in India, poor and emaciated', and said, "I am RajkumarShukla. I am from Champaran, and I want you to come to my district!" Gandhiji had never-heard of the place. It was in the foothills of the towering Himalays, near the kingdom of Nepal.



Under an ancient arrangement, the Champaran peasants were share-croppers. RajkumarShukla was one of them. He was illiterate but resolute. He had come to the Congress Session to complain about the injustice of the landlord system in Bihar, and somebody had probably said 'Speak to Gandhi'.

Impressed by the share-cropper's tenacity, perseverance and honesty Gandhiji agreed to look into their grievances.



On 18 April 1917 Gandhiji launched the first Satyagraha in India in Champaran, Bihar on behalf of the peasants and in 1918 he took up the cause of the textile mill workers of Ahmedabad where for the first time he used 'fast' as a moral force to rouse the conscience of the mill owners. This was followed by Kheda Satyagraha on behalf of the peasants.



These three events brought Gandhiji to the centrestage of Indian politics and for the first time problems of rural India became the focal point of our National struggle.

And Gurudev Rabindranath Tagore honoured him with the title of 'Mahatma' the great soul.

During Chamapran Satyagraha Gandhiji made friends with AcharyaKriplani, Prof. N.R. Malkani, Dr.Rajendra Prasad. Anugraha Narain Singh and several other important leaders who joined him in the struggle for freedom. The Champaran episode was a turning point in Gandhi's life. 'What I did', he explained, 'was a very ordinary thing. I declared that the British could not order me about in my own country'.





Champaran, remained very special for the Mahatma for the rest of his life. When Louis Fischer, his biographer met him at his Sevagram Ashram in 1942, just before the launch of the Quit India Movement, Gandhiji told him "I will tell you how it happened, and when did I really decide to urge the British to Quit India. It was in 1917 at Champaran and I owe it to Rajkumar Shukla."

भारतीय राजनीति में गांधी युग का प्रारम्भ



यह समय था जब भारतवर्ष अंग्रेज़ी साम्राज्य के बड़े ही दमनकारी दौर से गुज़र रहा था। 'रॉलेट एक्ट', पंजाब में मार्शल लॉ और जलियांवाला बाग़ हत्याकाण्ड इसके प्रत्यक्ष उदाहरण थे।

यही वह दौर था जो साक्षी बना अंग्रेज़ी हुकूमत के 'वफादार नागरिक' गांधी जी के अग्रणी विद्रोही के रुप में परिवर्तन का। गांधी जी ने खिलाफत एवं पंजाब में दमनकारी अंग्रेज़ी शासन के विरुद्ध असहयोग आन्दोलन छेड़ दिया और भारत के सामने स्वराज का लक्ष्य रखा। इसके लिए उन्होंने भारतवासियों से विशेषकर मध्यवर्गी जनता से अंग्रेज़ी शिक्षा संस्थानों का, कचहरियों का एवं विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करने की अपील की। ये तीन स्तम्भ थे जिस पर टिका था ब्रितानिया साम्राज्य और राष्ट्र को जागृत करने के लिए लाए पांच सूत्रीय रचनात्मक कार्यक्रम जिसमें हिन्दू–मुस्लिम एकता, अस्पृश्यता निवारण, नारी–उत्थान, खादी एवं स्वदेशी को मुख्य स्थान दिया।



किन्तु चौरी–चौरा की हिंसात्मक घटना ने गांधी जी को फरवरी 1922 में असहयोग आन्दोलन स्थगित करने पर बाध्य कर दिया और 10 मार्च 1922 को सरकार के विरुद्ध जनता को उकसाने के आरोप में उन्हें 6 वर्ष की कड़ी सज़ा सुनाई गई।



महात्मा गांधी ने अपना अपराध स्वीकार किया। मुक़दमे के जज श्री ब्रूमफील्ड ने उनको छः वर्ष के कारावास की सज़ा सुनाई। सज़ा सुनाए जाने से पहले गांधीजी ने अपना वक्तव्य पढ़ा। इस वक्तव्य का मसौदा और गद्य दोनों ही काव्यमय थे। इतने वर्षों बाद भी आज वे शब्द मानों प्रतिध्वनित होते हैं :

"अहिंसा मेरी आस्था की पहली कसौटी है। यही मेरी निष्ठा की अन्तिम कसौटी भी है ....मैं किसी प्रकार की क्षमा की आशा नहीं रखता। मैं इसलिये यहाँ हूँ कि खुशी के साथ अधिकतम सज़ा पाऊँ, उस कारण से, जिसे कानून तो अपराध समझता है मगर जो मेरी नज़र में एक नागरिक का सर्वोच्च कर्तव्य है। जज महोदय, आपके सामने केवल यही रास्ता है कि आप या तो पदत्याग करें या मुझे कठिन से कठिन सज़ा दें, यदि आपको विश्वास है कि जिस व्यवस्था और कानून के पालन में आप सहायक हैं वह लोगों की भलाई के लिये है। मैं इस प्रकार के बदलाव की उम्मीद नहीं रखता, परन्तु जब मैं अपना वक्तव्य समाप्त करुंगा तब आप शायद मेरे भीतर धधकती आग की झलक देख पाएंगे....। मेरा सार्वजनिक जीवन प्रतिकूल परिस्थितियों में 1893 में दक्षिण अफ्रीका में आरम्भ हुआ था। ब्रिटिश प्रशासकों से उस देश में मेरा पहला परिचय बिल्कुल भी आनन्ददायक नहीं था। मैंने देखा कि एक मनुष्य तथा एक भारतीय होने के नाते मेरे कोई अधिकार नहीं थे। सही तो यह है कि एक मनुष्य होने के नाते मेरे कोई अधिकार इसलिये नहीं थे क्योंकि मैं एक भारतीय था..... ।"



मो. क. गांधी



जज ब्रूमफील्ड भी एक संवेदनशील व्यक्ति थे और उन्होंने कहा, ".....राजनीति में जो आप से मतभेद भी रखते हैं वे भी आपके उच्च आदर्शों, निर्मल चरित्र तथा सन्तों के समान जीवन को श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं .... मैं सोचता हूं कि आप श्री तिलक की श्रेणी के बन्दी माने जायें और दो–दो वर्ष की साधारण सज़ा तीनों आरोपों के लिये, अर्थात् कुल छः वर्ष का कारावास पायें। यदि परिस्थितिवश सरकार के लिये आपकी सज़ा कम करना सम्भव हो सके तो मुझसे अधिक प्रसन्न कोई न होगा।"



और यहीं से हुआ भारत की स्वतन्त्रता संग्राम में गांधी–युग का सूत्रपात।

5 फरवरी 1924 को जब गांधी जी रिहा होकर आए तो हिन्दू–मुस्लिम के बीच बढ़ती दूरी को देख अत्यन्त दुःखी हुए। हिन्दु–मुस्लिम एकता का अर्थ है स्वराज। अतः आपने 18 सितम्बर 1924 से 21 दिन का व्रत करने का निश्चय किया। उसके पश्चात् उसी वर्ष बेलगाम अधिवेशन में महात्मा गांधी वर्ष 1925 के लिए राष्ट्रीय काँग्रेस के अध्यक्ष निंवाचित हुए। पूरे वर्ष गांधीजी ने भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक भ्रमण किया। वर्ष 1926 को गांधी जी ने "राजनीति से मौन का वर्ष" घोषित किया।

The Beginning of the Gandhi Era in Indian Politics



India was passing through a period of extreme repression. "Rowlatt Act, Marshal Law in the Punjab and a national humiliation culminating in the Jallianwala Bagh massacre were its outward manifestations.



The period was witness to the transformation of Mahatma Gandhi "from a loyal citizen of the empire into an extreme rebel". In 1921 Gandhiji launched the non-cooperation movement with the twin objective of redressal of the Punjab and khilfat wrongs and the establishment of Swaraj through Swadeshi, Charkha and Khadi, Hindu-Muslim unity, removal of untouchability and the emancipation of women. He regarded these programmes as the pillars of Swaraj Gandhiji gave a nationwide call for the boycott of foreign goods, English courts and educational institutions, which were patronized by the middle class, who were the backbone of British imperialism in India.

People's violence in Chauri-Chaura in February 1922 cast a dark shadow all over India. Gandhiji suspended the mass-movement and was arrested on March 10, 1922.





Gandhiji was charged with preaching "disaffection" towards His Majesty's Government. Mahatma Gandhi pleaded guilty. The judge, Mr Broomfield sentenced him to six years' imprisonment. Before the sentence was announced, the Mahatma read out a statement. The drafting was masterly. So was the prose. It resonates even after so many years:

"Non-violence is the first article of my faith. It is also the last article of my creed... I do not ask for mercy. I do not plead any extenuating act. I am here, therefore, to invite and cheerfully submit to the highest penalty that can be inflicted upon me for what in law is a deliberate crime and what appears to me to be the highest duty of a citizen. The only course open to you; Your Lordship, is either to resign your post or inflict on me the severest penalty, if you believe that the system and law you are assisting to administer-are good for the people. I do not expect that kind of conversion, but by the time I have finished with my statement, you will perhaps have a glimpse of what is raging in my heart... My public life began in 1893 in South Africa, in troubled weather. My first contact with British authority in that country was not of a happy character. I discovered that as a man and an Indian I had no rights. More correctly, I discovered that I had no rights as a man because I was an Indian..."



M.K.Gandhi



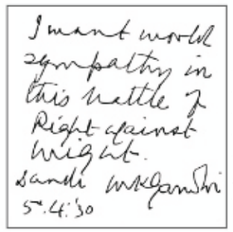
Justice Broomfield also rose to the occasion and concluded thus: "...Even those who differ from you in politics look upon you as a man of high ideals and of noble character and even saintly life... You will not consider it unreasonable, I think that you should be classed with Mr Tilak, i.e., two years' simple imprisonment on each count, six years in all... If the course of events should make it possible for the government to reduce the period and release you, no one will be better pleased than I."





He was sentenced to 6 year rigorous imprisonment for spreading disaffection against the government. On his release on February 5, 1924, Gandhiji was pained to find the hindus and muslims drifting apart. Hindu-Muslim unity means swaraj. Hence from 18 Septmber 1924 he went on a 21 day fast for self purification. The same year at the Belgam Convention he was elected president of the Indian National Congress for the year 1925. Throughout the year 1925 Gandhiji extensively travelled through the length and breadth of India. The year 1926 was declared as the "year of political silence" by Gandhiji.

दांडी कूच एवं नमक सत्याग्रह



26 जनवरी 1930 को पूर्णस्वराज की शपथ के साथ ही गांधी जी ने सक्रिय राजनीति से संक्षिप्त अवकाश समाप्त कर फिर से राष्ट्रीय आन्दोलन की बागडोर संभाली एवं 12 मार्च 1930 को नमक कानून भंग करने की घोषणा कर सविनय अवज्ञा आन्दोलन का सूत्रपात किया।





12 मार्च 1930 प्रातः साढ़े छः बजे महात्मा गांधीजी ने 79 स्वयं सेवकों के साथ 'मार्च प्रारम्भ किया। ये स्वयंसेवक भारत के विभिन्न धर्मों और पथों के विद्वानों, समाचार पत्रों के संपादक, जुलाहे और अस्पृश्य लोगों में से लिये गये थे। उनका अन्तिम गन्तव्य दो सौ इकतालीस मील से अधिक दूरी पर स्थित दांडी समुद्र तट था। 'बा' ने उनके माथे पर मांगलिक तिलक लगाया और खादी की सूत की माला पहना कर उन्हें एक लाठी पकड़ाई जो यात्रा के दौरान उनका 'ट्रेड मार्क' बन गई।







गांधीजी इस विशाल अहिंसक सेना के प्रमुख सेनानायक थे। मार्च के दौरान गांधीजी के बारे में नेहरुजी ने लिखा है 'सत्य की तलाश में वह एक अत्यन्त शान्त, दृढ़निश्चयी एवं निडर तीर्थ यात्री था जो परिणामों की चिन्ता किये बिना अपनी मंज़िल की ओर बढ़ता गया'।



उस महान् 'यात्रा' को देख कर नेहरू इतना अधिक प्रभावित हो गए कि उसके तुरन्त बाद उन्होंने युवाओं को अपने घरों और विश्वविद्यालयों से बाहर आने का आह्वान किया। "आज़ादी और इन्कलाब का गगन भेदी नारा लगाने वाले तुम पुरुष और महिलाए कहाँ हो?" युद्ध का मैदान तुम्हारे सामने है, भारत का झंडा तुम्हें संकेत दे रहा है, भारत की स्वाधीनता की देवी स्वयं तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है। यदि भारत मरता है तो कौन जिएगा और यदि भारत जीता है तो कौन मरेगा"?



इस आन्दोलन की एक अद्भुत उपलब्धि जो राष्ट्रवादी प्रेस में और सरकार की रिपोर्टों में एक समान दिखलाई पड़ी–वह यह थी कि गांधी जी के स्वागत में महिलाएँ भारी संख्या में आती थीं और इस अभियान में बहुत अधिक रूचि ले रही थीं। नमक सत्याग्रह का अनोखा और अत्यन्त प्रभावशाली पक्ष यह था कि महिलाएँ आगे आ रही थीं।

यात्रा के दौरान अनेक भारतीय तथा अमरीकी पत्र पत्रिकाओं के द्वारा गांधीजी ने सारे संसार का ध्यान आकर्षित किए रखा। बड़े अमरीकी समाचार पत्रों और पत्रिकाओं में यात्रा को प्रमुख स्थान मिला। अमरीकी मीडिया ने इस घटना के समाचारिक मूल्य की सराहना की। उनकी टिप्पणियाँ थीं, "विद्रोह के 'बास्टन–टी–पार्टी तरीके का प्रयोग', 'लाइक ए मास्टर शो मैन', सेरेमोनियसली डिफाइज़ द ब्रिटिश गवर्नमेंटस साल्ट मॉनोपली एंड इट्स रिसेंटेड टैक्स ऑन साल्ट" इस परिदृश्य ने टाइम मैगज़ीन को महात्मा गांधी को वर्ष 1930 के लिए "मैन ऑफ द इयर"



घोषित करने को प्रेरित किया और टिप्पणी की कि महात्माजी स्टालिन या हिटलर से अधिक इसके पात्र थे। भूरे आदमी के लिए 1930 में मिला यह सम्मान विश्व के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

5 अप्रैल को महात्मा गांधी अपनी तीर्थयात्रा के लिए विश्व समुदाय द्वारा उनकी यात्रा के समर्थन को नहीं भुला सके। रेवरेंड होम्स का न्यूयार्क से एक संदेश था "ईश्वर तुम्हारी रक्षा करे।" जर्मनी के डाक्टर ने लिखा "एक विनम्र सह–यात्री आपके लिए प्रार्थना करता है।" पूरी यात्रा के दौरान गांधी जी ने मीडिया के माध्यम से सहानुभूति की अपील की थी और अब वे अपने श्रोताओं को विशेष ध्यान दे रहे थे। अमरीका को एक संदेश में उन्होंने कहा "सहानुभूति का स्वागत है पर यह पर्याप्त नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि हमारे स्वाधीनता के अधिकार के लिए वहाँ का पूरा जनसमर्थन मिले। भारत यदि अहिंसा के रास्ते पर चल कर अपना लक्ष्य प्राप्त कर लेता है तो यह संसार के लिए एक संदेश होगा।" अंत में 5 अप्रैल, नमक कानून तोड़ने की पूर्वसंध्या पर डांडी से गांधी जी ने लिखा, "ताकत के विरूद्ध सत्य की इस लड़ाई में मुझे विश्व की सहानुभूति चाहिए।"



5 अप्रैल की संध्या को डांडी के छोटे से गाँव की जनसंख्या (460) बढ़ कर 12,000 हो गई। गांधी जी ने डांडी यात्रा की अंतिम प्रार्थना सभा को सम्बोधित करते हुए कहा, "पिछले चौबीस दिनों तक लक्ष्य "डांडी" का था परन्तु अब हमारा वास्तविक लक्ष्य स्वराज की देवी का मंदिर है।"



6 अप्रैल को प्रातःकाल जिन लोगों ने समुद्र तट का दृश्य देखा उन्होंने एक चमत्कार के दर्शन किए। प्रार्थना के बाद गांधीजी ने घोषणा की "सविनय अवज्ञा का यह धर्म युद्ध नमकीन जल में स्नान करने के बाद आरंभ किया जाना चाहिए।" एक विवरण के अनुसार 6.30 बजे गांधीजी समुद्रतट पर रूके और प्रतीकात्मक रूप से नमक उठाया और नमक कानून की सविनय अवज्ञा की। काम पूरा हो गया। उन्होंने कहा, "इसके साथ मैं ब्रिटिश साम्राज्य की नींव हिला रहा हूँ।"



वर्ष के अंत तक इस प्रकार के कार्य करते हुए 60,000 से अधिक महिला–पुरुष (सरकारी अनुमान के अनुसार) जेलों में गए।

गांधीजी जानते थे कि जैसे ही वे नमक कानून तोड़ेंगे वे गिरफ्तार कर लिये जायेंगे। अतः उन्होंने अपने घनिष्ठ विश्वासपात्रों सरोजनी नायडू और अब्बास तय्यबजी को नमक सत्याग्रह का नेतृत्व करने के लिए अपना उत्तराधिकारी नामित किया। सत्याग्रह के बारे में उन्होंने सही भविष्यवाणी की थी कि वह सारे भारत में फैल जायेगा।



सरकार द्वारा गम्भीर कार्रवाई मई के प्रारम्भ में शुरु हुई। साठ हज़ार भारतीयों के साथ पकड़े गये महत्वपूर्ण व्यक्तियों में से मदन मोहन मालवीय एक थे।



सारे देश में नमक कानून की अवज्ञा और विभिन्न प्रकार के विरोधों के बावजूद सरकार ने अप्रत्याशित रुप से गांधीजी को तत्काल गिरफ्तार नहीं किया। प्रतिक्रिया गांधीजी के उम्मीदों से भी कहीं अधिक थी क्योंकि उन्होंने अत्यन्त अनुशासित एवं अहिंसक आन्दोलन के लिये अनुदेश दिये थे। विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार हुआ, तथा वस्त्रों को सार्वजनिक रुप से जलाया गया और स्थानीय अधिकारियों और विधायकों ने इस्तीफे दिये।







अन्त में सरकार ने महात्मा गांधी को दांडी के निकट एक गांव कराडी में 5 मई 1930 को गिरफ्तार किया।

गांधीजी की गिरफ्तारी से देशवासी कोधित हो गये और सब जगह असंतोष भड़क उठा। मिल मज़दूरों, दुकानदारों और रेलवे कर्मचारियों ने काम बंद कर दिया। देश के कुछ भागों में मार्शल लॉ लागू कर दिया गया। दूसरी तरफ विवाद को शांतिपूर्वक हल करने के लिये ब्रिटेन में सरकार पर अन्तर्राष्ट्रीय दबाव बढ़ने लगा। बम्बई में कुछ अत्यन्त दमनकारी कार्यवाईयाँ हुईं।



गांधीजी के साथ नमक अभियान पर चले 79 स्वयं सेवकों में से कोई भी महिला नहीं थी किन्तु बाद में चले सत्याग्रह के दौरान गांधीजी द्वारा उत्साहित किये जाने पर कस्तूरबा सहित अप्रत्याशित संख्या में महिलाओं ने भाग लिया।

21 मई 1930 को गुजरात के धरसाना नमक डिपो पर एक बड़ा धावा बोला गया। अपनी गिरफ्तारी से पहले गांधीजी ने एक अधिक आक्रामक, अहिंसक प्रतिरोध की योजना बनाई थी जिसमें धरसाना के नमक डिपो पर कब्ज़ा करना शामिल था। धावे का नेतृत्व सरोजनी नायडू के द्वारा किया जाना था। अमरीकी रिपोर्टर वेब मिलर जिसने धावे को देखा, स्वयं सेवकों के साहस और पुलिस की बर्बर कार्रवाई का बहुत अच्छा विवरण दिया; "मैंने अपने 18 वर्ष के कार्यकाल में ऐसे कष्टदायक दृश्य नहीं देखे....इतने दर्दनाक कि मुझे थोड़ी देर के लिये दूर जाना पड़ा। एक आश्चर्य जनक विशेषता थी स्वयंसेवकों का अनुशासन .....वे पूरी तरह से गांधीजी के अहिंसक सिद्धान्त से पूरी तरह ओतप्रोत थे।"







सत्याग्रहियों ने 3 जून 1930 को बम्बई में एक और नमक डिपो वडाला पर धावा बोला। वडाला में पुलिस ने फिर वही बर्बरतापूर्व कृत्य दोहराया हालांकि स्वयंसेवक अपनी अहिंसा के प्रति वचनबद्धता पर अडिग रहे। प्रत्यक्षदर्शियों ने यह रिर्पोट व्यापक रुप से प्रचारित की जिससे सारे विश्व में सहानुभूति एवं प्रंशसा मिली।

9 जुलाई 1930 को बम्बई में भीषण पुलिस कार्रवाई हुई। 1930 की गर्मियाँ आने तक अहिंसक प्रतिरोध अपने चरम पर पहुंच गया लेकिन सरकार का दमन भी वैसा ही था। यद्यपि सत्याग्रहियों ने बम्बई जैसे कुछ शहरों को वास्तव में शासन के अयोग्य बना दिया था। एक लाख से अधिक भारतीय एवं अनेक प्रमुख कांग्रेसी नेता जेल में थे। जून में कांग्रेस को भी गैर कानूनी घोषित कर दिया गया था।



इस बीच अधिकारीगण चिंता और आश्चर्य के साथ आंदोलन पर नजर रखे हुए थे। ब्रिटिश सरकार अपने भारतीय साम्राज्य को समाप्त होते नहीं देखना चाहती थी। भारत के लिए अवर सचिव अर्ल रसेल ने पूर्ण स्वतंत्रता की कांग्रेस की मांग पर टिप्पणी की "भारतीयों के अलावा बेहतर ढंग से और कौन समझ सकता है कि पूर्ण स्वतंत्रता की बात करना कितना मूर्खतापूर्ण है। स्वतंत्र उपनिवेश स्तर इस समय संभव नहीं है और आंदोलन ज़्यादा दिन नहीं चलेगा।"

लार्ड इरविन ने भी यही भावना व्यक्त की थी जब उन्होंने कहा कि "लक्ष्य का अनुमान कर लेना ही इसे प्राप्त करना नहीं है।" शासक वर्ग सत्य से कितना दूर थे इसका अनुमान बाद



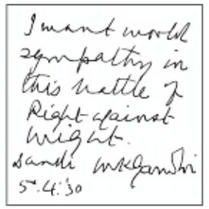
की घटनाओं से लगाया जा सकता है। क्योंकि नमक सत्याग्रह भारत के स्वाधीनता संग्राम में एक महत्वपूर्ण मोड़ साबित हुआ। देश भर में यह जंगल की आग के समान फैला। उत्तर–पश्चिम सीमा प्रान्त में भी लालकुर्ती या खुदाई खिदमतगार के नाम से विख्यात बादशाह ख़ान के अनुयायियों द्वारा चलाया गया अहिंसक सत्याग्रह जैसा उदाहरण पराक्रमी समाज की लोक कथाओं में ही पाया जा सकता है।



हिमालय की चोटियों से दूर दक्षिण में कन्याकुमारी तक केवल एक ही आवाज़ उठ रही थी "नमक कानून तोड़ो।"



The epic march and the Salt Satyagraha



Gandhiji resumed the leadership of the national movement after a brief retirement from active politics. With the adoption of the pledge of Poorna Swaraj on January 26, 1930, and the announcement of the civil disobedience movement by breaking the Salt Act on 12 March 1930.



On 12 March, 1930 at 6.30 p.m. in the morning Mahatma Gandhi set out with seventy-nine volunteers, drawn from different parts of India and faiths and included scholars, newspaper editors, weavers and untouchables. Their ultimate destination was the seashore at Dandi, more than two hundred forty one miles away. Ba applied the benedictory *tilak* on his forehead and garlanded him, not with flowers but with *khadi,* and handed to him the walking stick that became his trademark on the march.



The march had all the appearance of an epic journey, with Gandhiji at the head of a vast non-violent army. Nehru later observed of Gandhi during the march that he 'was the pilgrim in the quest of truth, peaceful, determined and fearless, who would continue that quiet pilgrimage regardless of the consequences'.

This was the *satyagrahi* on the pilgrimage to swaraj. So moved was Nehru at the epic sight of Gandhiji leading the march that in his public address soon after he gave a call to the youth of India to come out of their homes and universities. "And whither go you, young men and women of India who shouted so loudly and so lately of independence and *inquilab*? Whither go you? .....The field of battle lies before you, the flag of India beckons to you, and freedom herself awaits your coming. Who lives if India dies, who dies if India lives?"



A particular phenomenon, noted by the nationalist press and in government dispatches alike, was that "women assembled in thousands' to applaud Gandhiji and were taking an uncommon interest in the campaign. This was the most fascinating and unique feature of the Salt Satyagraha that saw the women power to the fore.A novel feature of the Salt Satyagraha was the media attention Gandhiji received.



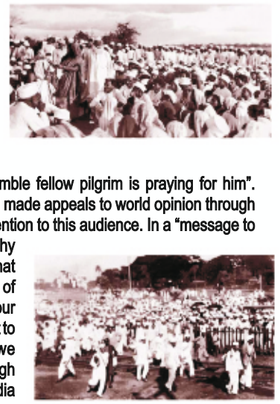
The world attention was sustained in the coming months by numerous Indian and American journalists. The march received prominent coverage in major U.S. newspapers and periodicals throughout 24 days – and also days preceding the event and beyond . The American media appreciated the newsworthy quality of the event, commenting on how the Mahatma "reversing the 'Boston-tea-party' method of revolt," "like a master showman" "ceremoniously defies the British Government's salt monopoly and its resented tax on salt." It was this kind of drama that led *Time Magazine* to name Gandhi "Man of the Year" for 1930 and conclude that more than Stalin or Hitler, the Mahatma deserved the award, "the little brown man whose 1930 mark on world history will undoubtedly look largest of all."







On 5th April, Mahatma Gandhi did not forget the support his pilgrimage had received from the world community. "God Guard you," said a New York message from Rev. Holmes, A doctor from Germany sent a note saying "a humble fellow pilgrim is praying for him". Throughout the march, Gandhiji had made appeals to world opinion through the media: now, he gave special attention to this audience. In a "message to America" he insisted that sympathy was welcome but not sufficient: "What is wanted is concrete expression of public opinion in favour of India's inherent right to independence....if we attain our end through non-violent means India will have delivered a message for the world". Finally, Gandhiji summed up in a sentence his appeal to the world from Dandi: **"I want world sympathy in this battle of Right against Might."**





Many of those who watched on the shore that early morning of April 6 did indeed believe that they were witnessing a miracle. The deed was done. "With this," he said, "I am shaking the foundations of the British Empire."



Gandhi believed that he would be arrested once he broke the salt law and thus had nominated his close confidants, Sarojini Naidu and Abbas Tyabji, to succeed him as leaders of the Salt Satyagraha, which he correctly predicted would spread throughout India.

The government's crackdown began in earnest in early May. Madan Mohan Malaviya was one of several prominent officials arrested and jailed along with more than sixty thousand Indians.



Unexpectedly, the government did not arrest Gandhi immediately, even though mass violations of the salt law and various forms of protests occurred across the country. The response exceeded all Gandhi's expectations and was, as he had instructed, highly disciplined and non-violent. British goods were boycotted, foreign cloth was burnt, and local officials and legislators resigned.





The government finally detained Mahatma Gandhi on 5 May 1930 at Karadi, a village near Dandi.





Mahatma Gandhi's arrest stirred the wrath of the nation and everywhere unrest escalated. Mill workers, shopkeepers and railway workers stopped work. In some parts of the country Martial law was implemented, while in Britain the government faced growing international pressure to resolve the dispute peacefully. Bombay was the scene of some of the worst oppression.

None of the seventy-nine volunteers who set out with Gandhiji on the Salt March were women. But during the Satyagraha that followed, unprecedented numbers of women throughout India including Kasturba joined the struggle upon Mahatma Gandhi's encouragement.



On 21 May 1930 there was mass raid on Dharasana salt depot, Gujarat. In the days prior to his arrest Gandhiji planned a more aggressive phase of non-violent resistance, which involved raiding and taking possession of the salt depot at Dharasana. The raid was led by Sarojini Naidu. Webb Miller, an American reporter who observed the raid, famously documented the courage of the volunteers, as well as the savage response by police: "In eighteen years of reporting I have never witnessed such harrowing scenes...so painful that I had to turn away momentarily. One surprising feature was the discipline of the volunteers...they were thoroughly imbued with Gandhi's non-violent creed."







The Satyagrahis led another raid on the Wadala salt depots in Bombay on 3 June 1930. Police at Wadala repeated the same barbarous acts, yet the volunteers' commitment to non-violence held firm. The eyewitness reports were widely circulated which aroused both sympathy and admiration around the world.



On 9 July 1930, the Police unleashed brutal crackdown in Bombay. By the summer of 1930, non-violent resistance was at its height, but, so too, was government oppression. Though satyagrahis had rendered some cities, such as Bombay, virtually ungovernable, more than a hundred thousand Indians and many prominent Congress leaders were in prison. In June Congress itself was outlawed.

The authorities had been watching the movement with mingled anxiety and bewilderment. The British had no intention to liquidate their Indian Empire. "over a pinch of Salt"- Earl Russell, the Under-Secretary of State for India, had commented on the Congress demand for complete independence: 'None knows



better than the Indians themselves how foolish it is to talk of complete independence. Dominion status is not possible at the moment and would not be for a long time'. "*The Salt Satyagraha is but an amusing interlude".* Lord Irwin had expressed the same opinion when he said that the assertion of a goal was not the same thing as its attainment. How far removed they were from the ground realities the subsequent developments were to prove. For the Salt Satyagraha proved to be a turning point in India's struggle for freedom. It spread like wild fire across the country. The non-violent Satyagraha offered by Badshah Khan's followers known as the 'Red Shirts' or *Khudai Khidmatgars* in the North-West Frontier Province are the stuff found only in the legends and folklores of valiant societies.



लंदन में गोलमेज़ अधिवेशन में महात्मा गांधी



जून 1930 के अन्त तक वायसराय लार्ड इरविन को यह विश्वास हो गया कि भारतीयों द्वारा ब्रिटिश राज्य के विरुद्ध खड़ा किया गया खतरा निष्प्रभाव हो गया था। 26 जनवरी 1931 को गांधीजी को यर्वदा जेल से छोड़ दिया गया।



गांधीजी के नेतृत्व में एक बार फिर स्वतंत्रता संघर्ष के अगले चरण में और यह निर्णय करने के लिए कि क्या सरकार के साथ संवैधानिक चर्चा की जाये, कांग्रेसी नेता फरवरी 1931 में इलाहाबाद में एकत्रित हुए।



इसके बाद 10 मार्च 1931 को साबरमती नदी के तट पर नागरिकों की सभा हुई। कई सप्ताह के नाजुक विचार विमर्श के बाद 5 मार्च को गांधीजी और लार्ड इरविन के बीच एक समझौते पर सहमति हुई। तथाकथित गांधी–इरविन समझौते में सभी प्रकार के भारतीय प्रतिरोध की समाप्ति का प्रावधान था। ब्रितानिया सरकार ने लन्दन में भारत के भविष्य से सम्बन्धित संवैधानिक समस्याओं पर विचार करने के उद्देश्य से गोलमेज़ अधिवेशन की घोषणा की। गांधी जी ने पहले दौर में भाग नहीं लिया। इससे भारत के लिए नये संविधान पर चर्चा के लिये आयोजित होने वाले द्वितीय गोलमेज़ सम्मेलन में कांग्रेस द्वारा भाग लेने का रास्ता साफ हो गया। गांधीजी ने 29 अगस्त 1931 को लंदन के लिये प्रस्थान किया और लंदन में वे किंगस्ले हाल में ठहरे। उन्होंने चार्ल्स चेपलिन से भी मुलाकात की।



26 सितम्बर 1931 को उन्होंने लंकाशायर स्थित कपड़ा मिल का दौरा किया और कामगारों से मुलाकात की। उनकी यात्रा का सबसे सुखद आश्चर्य था उत्तरी इंग्लैंड में मिल मज़दूरों से मिला जोशीला और प्यार भरा स्वागत। यद्यपि वे गांधीजी के विदेशी कपड़ों के बहिष्कार से बुरी तरह प्रभावित थे किन्तु फिर भी उन्होंने गांधीजी का साथ दिया और भारतीय मज़दूरों की दुर्दशा पर सहानुभूति दर्शायी।





गांधीजी बकिंघम पैलेस में अपनी ट्रेडमार्क धोती पहन कर मिले। यह पूछे जाने पर कि क्या उन्हें ऐसा नहीं लगा कि उन्होंने कम कपड़े पहन रखे थे, उन्होंने जवाब दिया कि उनके मेज़बान ने 'हम दोनों के लिये पर्याप्त कपड़े' पहन रखे थे।



इस सम्मेलन में गांधीजी ने अपने सपनों के भारत की रुप रेखा विश्व पटल पर रखी। "मैं एक ऐसे संविधान के लिए प्रयत्न करूँगा जो भारत को सभी प्रकार की दासताओं और संरक्षणों से मुक्त कराएगा और यदि आवश्यक हुआ तो इसे मैं गुनाह करने का अधिकार तक दूँगा। मैं ऐसे भारत के लिए काम करूँगा जिसमें सबसे निर्धन आदमी भी यह महसूस करेगा कि यह उसका देश है जिसके निर्माण में उसकी प्रभावी भूमिका हैं



एक ऐसा भारत जिसमें कोई उच्च वर्ग का और निम्न वर्ग का नहीं होगा, एक ऐसा भारत जिसमें सभी समुदायों के लोग मिलकर रहेंगे। अस्पृश्यता की बुराई से बचा जाएगा और मेरे भारत में इसका कोई स्थान नहीं होगा। शराब या नशीले पदार्थों का वहाँ सेवन नहीं हो रहा होगा। महिलाओं को पुरूषों के



समान अधिकार प्राप्त होंगे। चूँकि संसार में सब के साथ शान्ति होगी, चूँकि शोषक और शोषित नहीं होंगे, हमारे पास सेना बहुत थोड़ी होगी। करोड़ों मूक लोगों के हितों के साथ टकराव न रखने वाले हितों का सम्मान किया जाएगा, चाहे कोई स्वदेशी हो या परदेशी। मैं स्वदेशी और विदेशी के भेदभाव से



नफरत करता हूँ। ऐसा होगा मेरे सपनों का भारत। इससे कम पर मैं संतुष्ट नहीं हूँगा।"





अपनी भारत वापसी के दौरान गांधीजी ने रोमां रोला से मिलने के लिये स्विट्ज़रलैंड एवं इटली की संक्षिप्त यात्रा का निर्णय लिया।



स्विट्ज़रलैंड में गांधीजी के आगमन का उत्सुकता से इन्तज़ार हो रहा था। उन्हें जेनेवा और लासेन में विभिन्न जन सभाओं में भाषण–करने के लिये आमंत्रित किया गया।

16 दिसम्बर 1931 को उन्होंने रोम का संक्षिप्त दौरा किया। एक दिन पहले गांधीजी थोड़ी देर के लिए मुसोलिनी से भी मिले थे। यह तानाशाह उन पर कोई प्रभाव नहीं डाल सका यद्यपि गांधीजी ने बाद में लिखा कि उसकी शक्ल एक 'जल्लाद' जैसी थी। वे रोम में सिसटीनी चैपल भी गए जहां पर प्रभु यीशू को क्रास पर लटकाये जाने के दृश्य ने उन्हें बहुत विचलित किया।



Mahatma Gandhi in London : the Round Table Conference



By the end of 1930 the Viceroy, Lord Irwin, believed that the menace posed to British rule by the protests had been neutralized. On 26 January 1931, Gandhiji was released from Yervada prison.

In February 1931, Congress leaders gathered at Allahabad under the leadership of Gandhiji to plan the next phase of the independence struggle and to decide whether to begin constitutional negotiations with the government.



This was followed by Citizen's meeting on the sands of Sabarmati river, Ahmedabad on 10 March 1931. After weeks of delicate negotiations, Gandhiji and Lord Irwin agreed to a settlement on 5 March. The so-called Gandhi-Irwin Pact provided for the immediate end to all forms of Indian resistance. British government announced a Round Table Conference in



London to deliberate upon the constitutional problems concerning India's future status. Gandhiji's boycotted the first round and secured Congress participation in the Second Round Table Conference in London to discuss a new constitution for India. Gandhiji departed for London on 29 August 1931. In England he stayed at Kingsley Hall. He also met Charles Chaplin.





On 26 September 1931, he also visited a textile mill and met the workers at Darwen, Lancashire. For Gandhiji one of the most pleasant surprises of his trip was the warm and affectionate reception he received from textile workers in northern England. Although hardest hit by his boycott of foreign cloth, they revelled in Gandhi's company and showed great sympathy when told of the desperate plight of workers in India.



Gandhi met the King at Buckingham Palace wearing his trademark *dhoti*.



Asked if he felt underdressed he was quoted as saying that his host 'had enough on for both of us'.

In this conference Gandhiji placed the outlines of the India of his dreams before the world. "*I shall strive for a constitution which will release India from all thraldom and patronage and give her, if need be, the right to sin. I shall work for an India in which the poorest shall feel that it is their country, in whose making they have an effective voice, an India in which there shall be no high class and low class of people; an India in which all communities shall live in perfect harmony. There can be NO room in such an India for the curse of untouchability, or the curse of intoxicating drinks and drugs. Women will enjoy the same right as men. Since, we shall be at peace with the rest of the world, since neither exploiting nor being exploited, we should have the smallest army inarguably. All interests not in conflict with the interest of the dumb millions will be scrupulously respected, whether foreign or indigenous. I hate the distinction between foreign and indigenous. This is the India of my dreams; I shall be satisfied with nothing less.*"









During this trip Gandhiji decided to pay a short visit to Switzerland and Italy *en route* to India especially to meet Romain Rolland.



Mahatma Gandhi's visit was eagerly awaited in Switzerland and he was invited to speak at various public meetings in Geneva and Lausanne.

On 16 December, 1931 Gandhiji paid a brief visit to Rome. He had a brief meeting with Mussolini the day before. The dictator made no significant impression on him, though Gandhiji later noted that he had the appearance of an 'executioner'. In Rome he was spellbound by a visit to the Cistine Chapel.



The Pope would not see Gandhi but the Vatican galleries were opened for him specially. Their art treasure greatly interested him. The Cistine Chapel held him rapt in awe and wonder. Tears sprang to his eyes as he gazed at the figure of Christ. He could not tear himself away.



भारत छोड़ो आन्दोलन

वर्ष 1939 के प्रारम्भ से ही पूरे विश्व पर युद्ध के बादल मंडराने लगे थे। इसी वर्ष अप्रैल माह से ही महात्मा गांधी भी देशव्यापी सत्याग्रह के अगले दौर पर गम्भीरता से विचार कर रहे थे। वे इस सत्याग्रह के प्रारूप पर चिन्तन में लीन थे। जैसे–जैसे विश्व दूसरे महायुद्ध की कगार पर पहुँचने लगा, वैसे ही भारत भी दुविधाग्रस्त स्थिति में आ गया।



गांधी जी की लेखनी तथा वाणी दोनों में ही एक नया ओज, एक नई ऊर्जा प्रतीत होने लगी थी। "भारत छोड़ो" आन्दोलन के विषय में वे 'हरिजन पत्रिका' में पाठकों तथा पत्रकारों के प्रश्नों के उत्तर के माध्यम से देशवासियों को अगले दौर के संघर्ष के लिए तैयार कर रहे थे। उनसे कुछ पाठकों ने पूछा "क्या आप ब्रिटिश शासकों को जाने के लिये कहकर जापान को भारत पर आक्रमण करने के लिये नहीं उकसा रहे हैंः"



गांधीजी 'हरिजन' के 3 मई अंक में अपने उत्तर में स्पष्ट कहते हैंः "नहीं, मैं ऐसा नहीं कर रहा हूँ। मेरा यह दृढ़ मत है कि यहाँ पर ब्रिटिश मौजूदगी ही जापानी आक्रमण को उकसा रही है। यदि ब्रिटिश समझदारी के साथ भारत छोड़ दें ताकि भारत अपने मामले खुद सुलझा सके तो जापान अपनी युद्ध योजना पर पुनः विचार कर सकता है। ब्रिटेन के इस क़दम से जापानी अचम्भित रह जाएंगे, ब्रिटेन के प्रति उनकी दबी घृणा भी कम हो जाएगी तथा भारतीय जन जीवन को भी इस दमघोंटू परिस्थिति से मुक्ति मिलेगी।"



एक प्रश्न जो अधिकतर पूछा जाता है वह है कि कैसे गांधीजी ने ऐसा आन्दोलन छेड़ा जिसमें विरोधी किसी भी प्रकार से किसी झेंप का शिकार हो।

महात्मा गांधी का कहना था "मैं केवल कांग्रेस ही नहीं बल्कि उन सभी की ओर से कह रहा हूँ जो देश की विशुद्ध स्वतंत्रता में विश्वास रखते हैं कि यदि मैं अभी यह कहूँ कि ब्रिटेन के लिए कोई झेंप नहीं है। ...अतः यदि मैं इस समय इस विचार को दबा देता तो वह शायद आत्मघाती होगा।"

कुछ ऐसी ही परिस्थितियों में 'भारत छोड़ो' आन्दोलन की पृष्ठभूमि तैयार हो रही थी। मांग यह थी कि ब्रिटेन यह घोषणा करे कि भारत अहिंसक तरीके से युद्ध के विरूद्ध प्रचार प्रसार करने के लिए स्वतन्त्र है और तब युद्ध के खिलाफ तो असहयोग आन्दोलन होगा किन्तु सरकार के विरुद्ध सविनय अवज्ञा आन्दोलन नहीं होगा। यदि यह मांग अस्वीकार हुई तो कांग्रेस के समक्ष ठोस क़दम उठाने के अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं है।

गांधी जी की दलील यह थी कि ब्रिटेन में भी युद्ध विरोधी लोगों को जबरन सेना में भर्ती नहीं किया जाता है, और उन्हें अपनी बात खुलकर कहने की आज़ादी भी प्राप्त थी। हां, उन्हें यह अधिकार कदापि नहीं था कि वे युद्ध में विश्वास रखने वालों को किसी भी प्रकार रोक सकें। परन्तु भारत की स्थिति अलग थी। गांधी जी ने वाइसरॉय को स्पष्ट बता दिया था कि उनके द्वारा भारत को दी गई रियायतें या आश्वासन पर्याप्त नहीं थे। यदि कांग्रेस को मरना ही है तो उसके लिए शान्तिपूर्ण तरीक़ों पर अपनी पूरी आस्था का ऐलान करते हुऐ मरना अधिक सराहनीय होगा।

इस ऐलान के साथ ही हुआ देशव्यापी सत्याग्रह अभियान का उद्घाटन। जो प्रारम्भ में सांकेतिक मात्र ही था, यानि व्यक्तिगत सत्याग्रह। गांधी जी ने इसके लिये कड़े नियम बनाए तथा एक शपथ भी तैयार की। वे इस बार के अभियान में उत्कृष्टता देखना चाहते थे। उन्होंने स्पष्ट किया कि वे स्वयं सविनय अवज्ञा में भाग नही लेंगे ताकि ब्रिटिश सरकार को असमंजस मे न पड़ना पड़े। प्रथम व्यक्तिगत सत्याग्रही के रूप मे उन्होंने विनोबा भावे का चयन किया।



परन्तु बहुत ही जल्दी व्यक्तिगत सत्याग्रह ने एक विशाल जन आन्दोलन का स्वरुप ले लिया। ऐसे में गांधीजी ने इसे तुरन्त स्थगित करने का निर्णय लिया। चौरी–चौरा काण्ड के बाद ऐसा उन्होंने दूसरी बार किया था। उस समय असहयोग आन्दोलन को समाप्त कर देने के गांधीजी के निर्णय को जवाहरलाल नेहरू तथा कई नेताओं ने सही नहीं माना था। परन्तु गांधीजी ने इसे एक 'हिमालय जितनी बड़ी भूल' की संज्ञा दी थी।

बहुत पहले जब किसी ने गांधीजी से कहा था कि इतिहास में पहले कभी सत्य और अहिंसा पर आधारित जन आन्दोलन का कोई उदाहरण नहीं है– तो उन्होंने कहा कि इस बात से उन्हें "कोई फ़र्क नहीं पड़ता"। 1942 के आन्दोलन के पूर्व जब वे कर्नाटक से बम्बई आये तब कार्यकर्ताओं में ये एक ने कहा कि "इतिहास में एक भी उदाहरण नहीं है जहाँ अहिंसा द्वारा स्वराज–प्राप्ति हुई हो।"

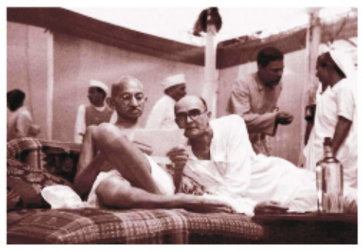
गांधी जी मुस्कुराए और बोलेः "हम नया इतिहास लिख रहे हैं।" इससे यह स्पष्ट होता है कि न केवल जन संघर्षों में सत्याग्रह का प्रयोग करने वाले वे सर्वप्रथम थे बल्कि वे यह भली–भांति जानते थे कि यह एक मौलिक क्रान्तिकारी कदम है।



दिसम्बर 1941 में जापान ने पर्लहार्बर पर हमला किया। इसी दौरान भारत में सर स्टैफर्ड क्रिप्स का आगमन हुआ जो देश के नेताओं के साथ मिल कर स्थिति का समाधान करना चाहते थे। सर क्रिप्स के प्रयासों से ही रुस अन्ततः युद्ध में शामिल होने को राज़ी हुआ था। इन्हें चर्चिल के उत्तराधिकारी के रुप में देखा जा रहा था। परन्तु भारत में उनके प्रस्तावों में स्वीकार किये जाने वाली कोई बात नहीं थी और गांधी जी ने इन्हें 'पोस्ट डेटेड चैक' की उपाधि दी। सर स्टैफर्ड क्रिप्स की यात्रा विफल रही।

ऐसा ही मनोवैज्ञानिक क्षण में गांधी जी ने 'भारत छोड़ो' आन्दोलन छेड़ा। 'करो या मरो' के मन्त्र से उन्होंने देश में एक बार फिर नयी चेतना भर दी।

वर्ष 1942 के 8 अगस्त को कांग्रेस द्वारा भारत छोड़ो प्रस्ताव पारित किया गया और गांधी जी ने कहा "हमें दुनिया का सामना निर्भीक होकर शान्ति से करना है भले ही आज खुद दुनिया की नज़रें रक्तरंजित हैं।" उन्होंने देशवासियों से कहा कि वे आगे बढ़ें और स्वाधीनता की बलिवेदी पर प्राणों को न्यौछावर कर दें।



8 अगस्त 1942 को कांग्रेस ने बम्बई में अपनी बैठक में कार्यकारी समिति के प्रस्तावों पर विचार विमर्श कर उनका अनुमोदन दिया। कांग्रेस ने अपने वक्तव्य में कहा "कांग्रेस कमेटी यह निर्णय लेती है कि भारत की स्वाधीनता के अधिकार प्राप्ति के लिये अहिंसक पद्धति पर आधारित जन–आन्दोलन आरम्भ किया जाए, उस अहिंसक शक्ति को आधार बनाकर जो पिछले बाइस वर्षों के शान्तिपूर्ण संघर्ष को संचालित कर रही है। स्वाभाविक है कि यह संघर्ष महात्मा गांधी के नेतृत्व में ही संचालित होगा।"





गांधीजी ने अपने सम्बोधन में कहा कि उन्हें कोई जल्दी नहीं हैं और वे वाइसरॉय से मिलकर स्थिति का हल ढूंढ़ना चाहेंगे। परन्तु अगले ही दिन 9 अगस्त की भोर में गांधीजी और कार्यकारी समिति के सभी सदस्य गिरफ्तार कर लिये गये। एक सप्ताह के भीतर कांग्रेस के प्रत्येक महत्वपूर्ण व्यक्ति को बन्दी बना लिया गया। इसके बाद शुरू हुआ दमन–चक्र जिसमें निरीह, शान्तिपूर्ण संघर्ष में लगे जन–मानस पर अत्याचारों की झड़ी लग गई। इसमें महिलाएं भी हज़ारों की संख्या में कूद पड़ीं। एक नाम जो सबकी जुबां पर था वह है अरुणा आसफ अली का। आँकड़ों के अनुसार इस दौरान लगभग 2000 लोगों ने प्राण गँवाए, 600 घायल हुए और क़रीब 15 लाख रूपये जुर्माना किये गए। घरों को जलाने, लूटने, पुलिस तथा सेना के क्रूर अत्याचारों का तो कोई दस्तावेज है ही नहीं। परन्तु इसके बावजूद पूरा देश "अंग्रेज़ों भारत छोड़ो" के नारों से गूंजता रहा।



पूरे भारत में जन–जागृति और जन विद्रोह की अहिंसक लहर ने "भारत छोड़ो" आन्दोलन को विश्व इतिहास में अनोखा स्थान दिला दिया। जिस प्रकार देश की जनता ने क्रूर अत्याचार के सामने भी अहिंसा का साथ नहीं छोड़ा, देश के हर बड़े नेता के बन्दी बनाए जाने के बावजूद शान्तिपूर्ण तरीक़े से आन्दोलन जारी रखा यह बात वास्तव में अभूतपूर्व है। सत्याग्रह के, देश के स्वाधीनता संग्राम के इतिहास के एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अध्याय के रूप में भारत छोड़ो आन्दोलन सदा अविस्मरणीय रहेगा।

Quit India Movement

From the beginning of the year 1939 the war clouds had started gathering on the horizon. And from the end of April in 1939 onwards, Mahatma Gandhi had started thinking of the next mass Satyagraha. He was deeply reflecting on its form and agenda. As the world drew closer to the Second World War, India found herself on the crossroads.



Suddenly, there was a new urgency and passion in Gandhiji's speeches and writings. While writing about the "Quit India" programme in the 'Harijan' he answers some of the questions raised by journalists. Many of his readers asked him, "Are you not inviting the Japanese to attack India by asking the British rulers to withdraw?"

Gandhiji replied in the Harijan on May 3 : "I am not. I feel convinced that the British presence is the incentive for the Japanese attack. If the British wisely decided to withdraw and leave India to manage her own affairs in the best way she could, the Japanese would be bound to reconsider their plans. The very novelty of the British stroke will confound the Japanese, dissolve the subdued hatred against the British, and the atmosphere will be set up for the ending of an unnatural state of things that has dominated and choked Indian life."



"When even the 'enemy' is in dire distress, should he not be given some quarter?" asked an Englishman. "In asking us to withdraw, are you not inviting your own people to bend the knee to Japan, knowing full well that you have not the non-violent strength as a country to resist any foreign aggression or domination?" Gandhiji replied.

One of the questions often asked is how Gandhiji, the advocate of non-embarrassment of the opponent, sponsored a movement, which involved at least some embarrassment.



Gandhiji said: 'I am not only speaking for the Congress but for all who stand for national freedom, unadulterated independence. I should tell all of them that if I said now: "No embarrassment to the British…"; therefore, if I exercised that self-suppression at this critical moment it would be suicidal.'

It was in such an atmosphere that the idea of 'Quit India' Movement was taking shape. The demand was: 'simply declare that India is free to carry on non-violently and openly the anti-war propaganda. That India is free to preach non –cooperation with the Government in their war effort, and we will have no civil disobedience.' If even this was not accepted then the Congress could not but act.

Gandhiji's argument was that in Britain, conscientious objectors of war were exempted from conscription and were even allowed to profess their faith in public but were not permitted to carry their opposition to the length of endeavouring to persuade others to abandon their allegiance to war or to discontinue their war-effort. But the situation in India was different, and Gandhiji told the Viceroy frankly that his concessions were not sufficient in the present conditions of India. He declared that if the Congress was to die, it should die in the act of defending its faith in the principle of peaceful methods.

Then followed the inauguration of the Satyagraha campaign. Gandhi laid down very strict rules and drew up a pledge. He wanted 'quality' this time. He said he would not offer civil disobedience himself, as that would cause much embarrassment. He chose Vinoba Bhave, an ideal choice, as the first Satyagrahi.



When the movement overgrew its frames, becoming a form of mass struggle, Gandhiji decided to cancel this action. He did so a second time. Earlier when the impetus of the awakened masses had almost, during the non-cooperation movement, brought them to the brink of a countrywide anti-colonial uprising, and then it took a violent turn at Chauri Chaura.' Jawaharlal Nehru had resented Gandhiji's decision to withdraw the non-cooperation movement on this occasion, the launch of which he described as a 'Himalayan Blunder'.

Long ago when somebody said to Gandhi that there were no examples of mass satyagraha in history, he replied that that need not deter him. On the eve of the 1942 movement Gandhi was amidst the Karnataka workers in Bombay, one of the workers said that there was not a single instance in history where swaraj had been won by non-violence.

Gandhiji simply smiled and said: "We are writing new history".

That shows that Gandhiji was not only original in the application of Satyagraha to mass conflicts but also he was intensely conscious of the fact that it was an original method.

In December 1941, Japanese planes swooped on Pearl Harbour.

It was at this time that Sir Stafford Cripps, the man who was reputed to have brought Russia into the war and was considered the likely successor to Winston Churchill, flew to India with his scheme of political reform. Sir Stafford began his work in auspicious circumstances. He was a good friend of Jawaharlal Nehru. His views on Indian problem breathed an air of freshness and his radicalism was in sympathy with the aspirations of Young India.



But what a disappointment! The Churchillian impression was stamped indelibly in the Cripps proposals. Gandhi promptly described it as a 'post-dated cheque'. Cripps, however, in his last statement maintained that he never agreed to any major departure from the present constitution and said that that the National Government proposed by the Congress would put in power an irresponsible Executive irremovable for all practical purposes. Sir Stafford left India in a huff.

At this psychological moment, Gandhi began the 'Quit India' campaign. He infused new life amongst the masses with the mantra of 'Do' or 'die'.



On the evening of August 8, when what is known as the "Quit India" resolution was passed by the all-India Congress Committee, Gandhi said: "We must look the world in the face with calm and clear eyes, even though the eyes of the world are bloodshot today. He told his countrymen and women to go ahead and offer yourself on the altar of ultimate sacrifice to win freedom for India.



On 8 August 1942, the All India Congress Committee held its meeting in Bombay and after giving due consideration to all points of view endorsed the Working Committee's resolution. The operative part of the A.I.C.C. resolution said: "The Committee resolves, therefore, to sanction for the vindication of India's inalienable right to freedom and independence, the starting of a mass struggle on nonviolent lines on the nonviolent strength it has gathered during the last twenty two years of peaceful struggle. Such a struggle must inevitably be under the leadership of Mahatma Gandhi".



Gandhiji in his speech mentioned that he was in no hurry and that he would seek an opportunity to see the Viceroy and negotiate with him. But before the next day dawned, on 9 August Gandhiji and all the Working Committee members were arrested. Within a week every one who mattered in the organization was arrested and locked up without trial. Then followed the rule by ordinances, firings, lathi charges, and even bombings from aeroplanes were reported from some places. At some centers, people, driven to desperation, attacked railways and the police. The Government states that on the whole about 56 people succumbed to the fury of the mob.



It is estimated that more than 2000 unarmed and innocent people were shot down and about 6000 injured by the police and the military; tens of thousands wounded by lathis; about 1,50,000 were jailed and about 15 lakhs of rupees were imposed as collective fines; there is no record of tortures, burning of houses, looting and other atrocities by the police and the military.

The mass awakening and mass revolt witnessed throughout India and the predominantly nonviolent way the vast masses conducted themselves during the "Quit India Movement":, apart from a few acts of unorganized violence, were something remarkable and incomparable with anything anywhere in the world. What shape the movement would have taken had Gandhiji's hands not been on the lever is another matter. The way in which people including a large number of women, a prominent name amongst them being that of Aruna Asaf Ali faced brutal violence even without his guidance and without the guidance of any important leader, and carried on the struggle for months during the Quit India movement is worth studying from the point of view of social dynamics. It will ever remain an important chapter in the history of nonviolent resistance if not of pure and unadulterated Satyagraha.

शान्तिदूत

महात्मा गांधी का सम्पूर्ण जीवन करुणा और त्याग की महागाथा है। परन्तु अन्तिम कुछ वर्ष शायद उनके जीवन के सबसे उत्कृष्ट पल थे। महात्मा गांधी की वह अशान्त छवि आज भी गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर की वह कविता ''यदि तुम्हारी पुकार सुन कोई भी तुम्हारा हमराही बन तुम्हारे साथ नहीं चलता, तो तुम अकेले चलो। अकेले चलो'' को मानों चरितार्थ करती है। अपने आंसुओं से बिहार और नोआखाली में साम्प्रदायिक घृणा की आग को शान्त करते बापू की वह छवि आज भी मानव हृदय पर अंकित है। उनकी उपस्थिति अज्ञान, घृणा एवं द्वेष से संतप्त विश्व हृदय को अहिंसा एवं मैत्री का संदेश देती है।



शान्तिदूत अपूर्व श्रद्धा के साथ नोआखली आए और लोगों के दिलों से द्वेष की भावना को दूर करने के लिए उन्होंने उजड़े हुए वीराने में पड़ाव डाला। गांधीजी अपनी कुटिया के द्वार पर खड़े हो गये और अपनी भावी मंजिल की जाँच की। शान्ति यात्रा के दौरान उन्होंने हताश लोगों से बातें कीं। अहिंसा के तकनीक की यहां अग्नि परीक्षा हो रही थी। धार्मिक सहिष्णुता पर ज़ोर देते हुए गांधीजी ने कहा, 'हर प्रान्त में हर आदमी हिन्दुस्तानी है।' उन्होंने बहुसंख्यकों से यह आशा की कि वे अल्पसंख्यकों के रक्षक बनें। गांधीजी के वहां जाने से लोग निर्भय बने और धार्मिक असहिष्णुता के कारण फैला हुआ आतंक कम होता गया।





जनवरी 7, 1947 की सुबह इस यात्री ने नंगे पैर चांदीपुर से 'एक रात में एक गांव' का ऐतिहासिक यात्रा शुरु की।

राह अंधेरी थी और कठिन पथ को प्रकाशित करने के लिये उनके पास सिवाय सत्य और अहिंसा के और कुछ न था।

गांधीजी हिन्दू और मुसलमान दोनों कौमों को मिलाते हुए और एकता और शान्ति का संदेश फैलाते हुए गांवों की पगडंडियों पर आगे बढ़ते जाते थे।







मीलों लंबा मुश्किल रास्ता तय करते हुए गांधीजी ने 28 दिनों में अपनी यात्रा की पहली मंज़िल पार की। 5 फरवरी की सुबह उनकी यात्रा का दूसरा अध्याय शुरु हुआ। नित्य प्रतिदिन कौमी एकता का अथक यात्री गंगा के बीहड़ प्रदेशों को पार करता चला जा रहा था। 'तेरी पुकार सुनकर अगर कोई न आये तो अकेले ही चलते जाना... तूफानी अंधेरी रात में कोई दिया न दिखाये तो दिल का दिया जलाकर अपनी राह रोशन करते जाना'...

सात सप्ताह में 116 मील चल कर गांधीजी 47 गांवों में गए और वहाँ उन्होंने साम्प्रदायिक हिंसा को करुणा से शान्त किया। 2 मार्च 1947 को गांधीजी की नौआखाली की यह महायात्रा सम्पन्न हुई और उन्होंने चांदीपुर से बिहार में हो रहे दंगों को समाप्त करने के लिए स्टीमर से प्रस्थान किया।







Apostle of Peace

Mahatma Gandhi's whole life is a saga of sacrifice, but the last few years of his life were, perhaps his "finest hours." A lingering image of a forlorn figure of the Mahatma personifying poet Tagore's favourite hymn "if there is none to heed your call walk alone, walk alone", remains eternally etched in the hearts of humanity. He tried to extinguish the flames of intolerance and communal violence with his tears in Bihar and Noakhali and incurred the wrath of those who loved his religion not wisely but too well. But his inspiring presence instilled sanity in the hearts and minds of the people gone insane with hatred and ignorance.



In Noakhali the pilgrim of peace ventured in faith…and buried himself in the devastated areas to purge the hearts of the people of hatred…. Mahatma Gandhi stood at the door of his hut and probed his future path. He set out on his peace plan and talked to the downhearted. His technique of non-violence was on trail….





On the morning of January 7, 1947, the barefoot pilgrim commenced his historic one-night, one village march from Chandipur…the way was dark and he had naught but the twin stars of truth and non-violence to light his perilous trail.

He strolled on the narrow village-roads mingling freely with the Hindus and Muslims and expounding his gospel of communal unity and peace…to reinforce the human bond between the two communities and bring the shattered villages to sanity and composure. Emphasising the need of complete religious tolerance he maintained, "In every province, everyone is an Indian." He expected the majority to constitute itself into the guardian of the minority. In Gandhi's presence fear fled and the hold of fanatical terror loosened.





Touring through miles of difficult terrain, Gandhi finished the first stage of his tour after 28 days. On the morning of February 5, the second part of his tour commenced. Tireless in his pursuit of communal harmony, the pilgrim progressed making his way through the inaccessible delta of the 'Ganga… "If they answer not thy call, walk alone…" "If they do not hold up the light when the night is troubled with storm, with the thunder-flame of pain, ignite thine own heart and let it burn alone…"



After seven weeks' pilgrimage of about 116 miles through forty-seven villages, the epic march of Noakhali ended when Gandhi boarded the steamer at Chandipur on March, 2 on way to Bihar to still the raging fury…





उप–महाद्वीप का विभाजन और स्वाधीन भारत का जन्म

बापू की वेदना का अन्त नहीं था। 5 मई 1944 को बापू ने जेल से रिहा होकर आने पर अपने ही सामने अपने जीवन भर की अर्जित पूंजी, हिन्दू–मुस्लिम एकता को बिखरते पाया। भारतवर्ष ज्वालामुखी के कगार पर बैठा था, तो दूसरी ओर ब्रितानिया सरकार। कांग्रेस एवं मुस्लिम लीग के मध्य जटिल वार्ताओं का दौर चल रहा था।

22 मार्च, 1947 को लार्ड माउन्टबैटेन भारत पहुँचे और दो दिन बाद देश के नए वाइसरॉय पद की शपथ ली। उनके आते ही राजनैतिक गतिविधियों ने तेज़ी पकड़ ली। उनके लिये निर्धारित आदेश स्पष्ट था–उन्हें भारत में ब्रिटिश शासन के अन्त की व्यवस्था करनी थी। जवाहरलाल नेहरु के साथ अपनी पहली मुलाकात में उन्होंने कहा – "मैं चाहता हूँ कि आप मुझे अन्तिम वाइसरॉय न समझें .....बल्कि नए भारत की राह दिखाने वाला प्रथम व्यक्ति समझें।" 2 अप्रैल 1947 को लन्दन अपनी पहली रिर्पोट भेजते हुए उन्होंने लिखा – "यहां पर बहुत दुःख छाया हुआ है ...कैबिनेट में भयानक साम्प्रदायिक मतभेद हैं और हर पार्टी की अपनी–अपनी सोच है।"

परन्तु महात्मा गांधी ने वाइसरॉय के साथ अपनी पहली भेंट में ही यह स्पष्ट कर दिया था कि वे भारत के विभाजन के विरुद्ध हैं और यह सुझाव भी दिया कि श्री जिन्ना को स्वाधीन भारत का प्रमुख नेता बनाया जाए। इस सुझाव को कांग्रेस ने ही नहीं श्री जिन्ना ने भी यह कहते हुए अस्वीकार कर दिया कि "इसमें अधिकारों के बिना उत्तरदायित्व का बोझ है।" वे चाहते थे कि "शीघ्र ही निर्णय लिया जाए जो शल्य चिकित्सा के समान हो।"

मई का गरम महीना राजनैतिक कूटनीति से और भी तप रहा था। माह के अन्त तक ब्रिटिश सरकार ने स्वाधीनता और विभाजन की योजना को अपनी स्वीकृति दे दी। इस योजना के अनुसार भारत और पाकिस्तान को सत्ता सौंपने का प्रावधान था और 1935 का भारत सरकार विधान उनके संविधान का काम करेगा। भविष्य के प्रति सभी के मन में अनेकों आशंकाएं थीं।

इसी बीच गांधीजी 25 मई को फिर दिल्ली वापस आ गए थे और बड़े कड़े शब्दों में विभाजन का विरोध कर रहे थे। 2 जून को नयी ड्राफ्ट योजना देश के नेताओं को दे दी गई। नेहरुजी ने कहा कि कांग्रेस से इस ड्राफ्ट को पूरा समर्थन मिलना तो मुश्किल है – फिर भी इसे स्वीकार करने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं है। कांग्रेस कार्यकारिणी समिति ने वाइसरॉय को 3 जून की मध्यरात्रि को इस योजना की सहमति दे दी।

4 जून 1947 को लार्ड माउन्टबैटन ने पहला संकेत दिया कि 15 अगस्त को दोनों देशों को सत्ता सौंपी जाएगी। उस दिन प्रार्थना सभा में गांधीजी ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि "उन्हें भारत के विभाजन का बहुत गहरा दुःख है।"

जैसे–जैसे 15 अगस्त नज़दीक आने लगा वे हतोत्साहित और अपने को बहुत अकेला महसूस करने लगे। अतः उन्होंने सेवाग्राम ही लौट जाना अधिक उचित समझा। परन्तु शीघ्र ही उन्हें कलकत्ता आना पड़ा। 15 अगस्त 1947 को वे कलकत्ता में घृणा और हिंसा की साम्प्रदायिक आग को अपने आँसुओं से बुझाने पहुंचे। जीवन के अन्तिम क्षण तक वे देश और प्रान्तों के विभाजन का विरोध करते रहे, जो अपने साथ लाया, धर्म का, देश का और मानवता का बंटवारा।









We deeply deplore the recent acts of lawlessness and violence that have brought the utmost disgrace on the fair name of India and the greatest misery to innocent people, irrespective of who were the aggressors and who were the victims.

We denounce for all time the use of force to achieve political ends, and we call upon all the communities of India, to whatever persuasion they may belong, not only to refrain from all acts of violence and disorder; but also to avoid both in speech and writing, any words which might be construed as an incitement to such acts.




















Declare India As Independent Nation

Congress Call To Britain

I. C. C. Debates Working Committee Resolution

FORTIFICATION ON NEW REICH BORDER

SOVIET PROPOSALS TO LITHUANIA

Repatriation Of Germans From Baltic And Balkan Countries

Tri-Partite Consultations






The Times of India

BIRTH OF INDIA'S FREEDOM

NATION WAKES TO NEW LIFE

Mr. Nehru Calls For Big Effort From People

"INCESSANT STRIVING TASK OF FUTURE"

Assembly Members Take Solemn Pledge

WILD SCENES OF JUBILATION IN DELHI

STATE VISIT TO KARACHI

LORD MOUNTBATTEN GREETS PAKISTAN

Mr. Jinnah Re-Affirms Firm Friendship With Britain

FRENZIED ENTHUSIASM IN BOMBAY

Crowds In Festive Mood


The Hindustan Times

END OF 200-YEAR-OLD BRITISH RULE IN INDIA

ROYAL ASSENT TO INDEPENDENCE BILL

BRIEF BUT COLOURFUL CEREMONY IN LORDS

Two Dominions Created

'UNION'S RELATIONSHIP' WITH RULERS

PROVISION FOR PROVINCES' JURISDICTION IN STATES


The Hindustan Times

DIVISION OF ARMED FORCES ON COMMUNAL LINES

INDIA GETS 22 NAVAL VESSELS, PAKISTAN 34

NO DECISION YET ON AIR FORCE

INDIA ACT OF 1935 BEING REMODELLED











Partition of the Subcontinent and the Birth of Independent India

On his release on May 5, 1944, Gandhiji found his life-long dream of communal unity lying in shambles and India sitting on the edge of a volcano in the midst of tortuous negotiations between the British, Congress and the Muslim League.

On 22 March, 1947 Lord Mountbatten arrived in India and two days later sworn in as the new Viceroy. His arrival intensified the moves and countermoves. He had an extraordinary assignment and his brief appeared to be clear-to arrange the termination of British rule in India. During his first meeting with Jawaharlal Nehru, the Viceroy Mountbatten said – "I want you to regard me not as the last Viceroy…but as the first to lead the way to new India". The Viceroy in his very first personal report sent to London on 2nd of April wrote—"The scene here is one of unrelenting gloom…the Cabinet is fiercely divided on communal lines and each party has its own solution".

Mahatma Gandhi in his very first meeting with the Viceroy made it clear he was against the breakup of India and suggested that M.A. Jinnah head the government after independence. This, neither found the approval of the Congress, nor M.A. Jinnah "who rejected Gandhiji's proposal saying that it entailed responsibility without authority." He favoured a "quick decision and a surgical operation."

The hot month of May was made more tortuous by the ongoing meetings and negotiations. The month ended with the British Government giving its approval for the new plan for independence and partition. The plan provided that power would be transferred to India and Pakistan as Dominions and that the Government of India Act of 1935 would serve as their respective Constitution. Everyone was apprehensive about the future.

In the meanwhile, Mahatma Gandhi was back in Delhi on 25 May and protested against the proposed division of the motherland. On 2nd June, copies of the new Draft Plan were given to the leaders. Jawaharlal Nehru said that while there could never be "complete approval" of the plan by Congress, on balance the party accepted it. Congress Working Committee's acceptance of the plan was communicated to the Viceroy at quarter past midnight on the 3rd of June.

On 4th June Lord Mountbatten gave the first informal indication that the 15th August would be the likely date for the actual transfer of power to the two new Dominions. Mahatma Gandhi in his prayer meeting on June 4, said, "he regretted the partition of India."

As the day of reckoning grew closer, Gandhiji felt defeated and forsaken. He returned to Sevagram. On 15 August 1947, he was in Calcutta fighting "fire of hatred and violence with his tears." But soon he had to leave for Calcutta. Till the end he remained opposed to both partition of India as well as the provinces, which brought in its wake breakup of geographical boundaries, religion and humanity.

"कोई यह न कहे कि भारत के विभाजन में गांधी की सहमति थी"

अब मेरी चेष्टाओं की पवित्रता की परीक्षा की घड़ी है। राजनैतिक स्थिति का मेरा अध्ययन.... यह कहता है कि यदि विभाजन होता ही है तो वह ब्रिटिश दख़लअन्दाज़ी या ब्रिटिश राज में न हो। आज मैं खुद को बिल्कुल अकेला पाता हूँ.... फिर भी, मैं जो महसूस करता हूँ वह मुझे ज़रूर कहना चाहिये.... इसके बावजूद कि मेरी सलाह का महत्व हो या न हो। मुझे साफ दिखाई दे रहा है कि हम इस मसले को गलत तरीके से सुलझाने की कोशिश कर रहे हैं। हम शायद अभी इसके पूरे असर को महसूस नहीं करेंगे, लेकिन मुझे साफ़ दिखाई दे रहा है कि इस क़ीमत पर पाई गई आज़ादी का भविष्य अंधकारपूर्ण ही होगा। मेरी प्रार्थना है, कि भगवान मुझे यह दिन देखने के लिये जीवित न रखे। ईश्वर मुझे सम्पूर्ण विरोध के माहौल में भी सच बोलने की मेरी क्षमता को अडिग रखे, मुझे पवित्रता से प्राप्त पूरी शक्ति की ज़रूरत है....।

परन्तु, शायद अन्य सभी सही हैं और मैं ही अकेला अंधकार में भटक रहा हूँ.... मैं, शायद, यह देखने के लिये जीवित न बचूँ, पर यदि भारत और उसकी आज़ादी पर वह ख़तरा आए जिसका मुझे डर है, तो आनेवाली पीढ़ियाँ यह जान लें कि इस विचारमात्र से भी इस बूढ़ी आत्मा को कितना कष्ट हुआ था। यह कभी न कहा जाए कि गांधी की भारत के बंटवारे में सहमति थी। पर आज हर व्यक्ति आज़ादी पाने के लिये उतावला है और इसीलिये कहीं कोई दूसरी मदद भी नहीं है।

मो. क. गांधी
1 जून, 1947



Let it not be said that Gandhi was party to India's vivisection

The purity of my striving will be put to the test only now. My reading of the political situation…..is that even if there was to be partition, it should not be through British intervention or under the British rule. Today, I find myself all alone. Nevertheless, I must speak as I feel .....regardless of whether my advice is appreciated or not. I see clearly that we are settling about this business the wrong way. We may not feel the full effect immediately, but I can see clearly that the future of independence gained at this price is going to be dark. I pray, the God may not keep me alive to witness it. In order that He may give me the strength and wisdom to remain firm in the midst of universal opposition and to utter the full truth, I need all the strength that purity can give…..

But may be, all are right and I, alone, am floundering in darkness…I shall, perhaps, not be alive to witness it, but should the evil I apprehend overtakes India and her independence be imperilled, let posterity know what agony this old soul went through thinking of it. Let it not be said that Gandhi was party to India's vivisection. But everybody is today impatient for independence. Therefore, there is no other help.

M. K. Gandhi
1 June, 1947



गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने 'एक व्यक्ति के रुप में' गांधीजी का चित्रण करते हुए लिखा है कि "गांधीजी के व्यक्तित्व में असामान्य जैसा कुछ भी नहीं है जैसा कि हम किसी महापुरुष के विषय में कल्पना करते हैं, वे वक्ता के रुप में नितान्त सामान्य हैं। जनसमूह के सामने जब भाषण देते हैं तब भी उनकी शैली साधारण संवाद जैसी रहती है। प्रभाव पैदा करने के लिए वे कोई प्रयत्न भी नहीं करते। फिर भी उनमें कुछ ऐसा है कि उनके भाषण का हर शब्द लोगों के दिलों में उतर जाता है"।

"ऐसा शायद इसलिए है क्योंकि उन्हें इस बात का एहसास था कि उनकी वाणी से भारत की स्वतंत्रता ही अपनी बात कहना चाहती है। वह उनकी आखों में और उनके त्याग और कष्टों को सहने की उनकी क्षमता में झलकती है। जिस महान ध्येय के लिए उन्होंने अपने आप को समर्पित कर दिया है यही उनकी विशिष्टता की पहचान है। जब गांधीजी बोलते हैं, तो लगता है साक्षात् स्वतंत्रता की आत्मा बोल रही है।" गांधीजी का आत्म विश्वास इतना दृढ़ है कि वे दावे के साथ कह सकते हैं कि "वे अपने लाखों देशवासियों की भावनाओं को पहचानते है"। और यही कारण है कि वे पूरे राष्ट्र को अपने साथ ले कर चलने में सफल हो सके हैं।

भारत की स्वतंत्रता के सूत्रधार

आज के दिन हमारा ध्यान इस स्वतंत्रता के सूत्रधार हमारे राष्ट्रपिता की ओर जाता है जिन्होंने स्वयं में भारत की प्राचीन भावनाओं का समावेश करते हुए स्वतंत्रता की मशाल को ऊपर उठाया और उसे प्रज्जवलित कर हमारे चारों ओर व्याप्त अंधकार को दूर भगाया। हम प्रायः उनके अयोग्य अनुयायी रहे हैं और उनके द्वारा दिये गये संदेश से भटक गये हैं। किन्तु केवल हम ही नहीं बल्कि आने वाली पीढ़ियाँ इस संदेश को याद रखेंगी और अपने हृदय पटल पर भारत के इस महान सपूत के विश्वास, शक्ति, साहस और विनम्रता से ओत प्रोत छवि को सहेज कर रखेंगी।

जवाहरलाल नेहरु,
15 अगस्त 1947



Writing about 'Gandhi-the man' Gurudev Tagore says, "taken just as a person, he was not particularly significant. He had no commanding presence such as we associate with greatness…he was no orator, never lifted his voice above the conversational level when talking to a multitude, and there was no attempt at producing an effect. Yet the multitudes hang on every word as upon an oracle".

"It was because he knew that when he spoke, the cause of India's freedom spoke. That cause looked out of his eyes and suffered as he suffered. He had the significance of the cause with which he was identified…In Gandhi, the word of freedom became flesh. When he spoke, freedom spoke." He could claim with conviction, "I know my millions". He could take an entire nation along with him.





Architect of India's Freedom

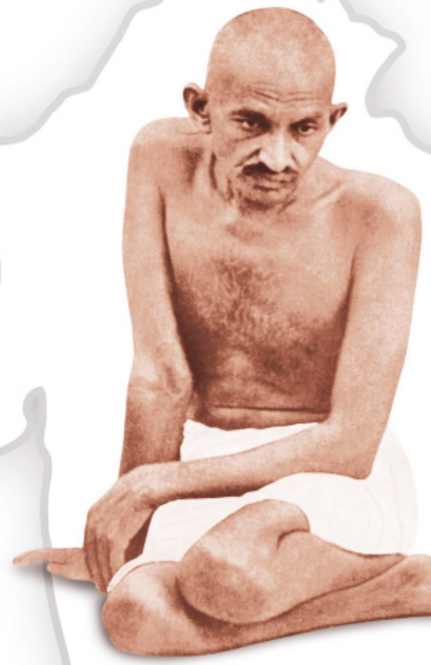
On this day, our first thoughts go to the architect of this freedom, the Father of our Nation, who, embodying the old spirit of India, held aloft the torch of freedom and lighted up the darkness that surrounded us. We have often been unworthy followers of his and have strayed from his message, but not only we, but succeeding generations will remember this message and bear the imprint in their hearts of this great son of India, magnificent in his faith and strength and courage and humility.

Jawaharlal Nehru,
August 15, 1947

मेरे सपनों का भारत

मैं ऐसे संविधान की रचना करवाने का प्रयत्न करूँगा, जो भारत को हर तरह की गुलामी और परावलम्बन से मुक्त कर दे और उसे, आवश्यकता हो तो, पाप करने तक का अधिकार दे। मैं ऐसे भारत के लिए कोशिश करूँगा, जिसमें ग़रीब लोग भी यह महसूस करेंगे कि वह उनका देश है – जिसके निर्माण में उनकी आवाज़ का महत्व है। मैं ऐसे भारत के लिए कोशिश करुंगा, जिसमें ऊँचे और नीचे वर्गों का भेद नहीं होगा और जिसमें विविध सम्प्रदायों में पूरा मेलजोल होगा। ऐसे भारत में अस्पृश्यता या शराब और दूसरी नशीली चीज़ों के अभिशाप के लिये कोई स्थान नहीं हो सकता। उसमें स्त्रियों को वही अधिकार होंगे जो पुरुषों को होंगे। चूँकि, शेष सारी दुनिया के साथ हमारा सम्बन्ध शान्ति का होगा, यानि न तो हम किसी का शोषण करेंगे और न किसी के द्वारा अपना शोषण होने देंगे, इसलिये हमारी सेना छोटी से छोटी होगी। ऐसे सब हितों का, जिनका करोड़ों मूक लोगों के हितों से कोई विरोध नहीं है, पूरा सम्मान किया जाएगा, फिर वे हित देशी हों या विदेशी। अपने लिए मैं यह भी कह सकता हूँ कि मैं देशी और विदेशी के फ़र्क से नफ़रत करता हूँ। यह है मेरे सपनों का भारत।..... इसमें अंश मात्र की कमी से भी मुझे संतोष नहीं होगा।

मो.क.गांधी



India of My Dreams

I shall strive for a constitution, which will release India from all thraldom and patronage, and give her, if need be, the right to sin. I shall work for an India, in which the poorest shall feel that it is their country in whose making they have an effective voice; an India in which there shall be no high class and low class of people; an India in which all communities shall live in perfect harmony. There can be no room in such an India for the curse of untouchability or the curse of intoxicating drinks and drugs. Women will enjoy the same rights as men. Since we shall be at peace with all the rest of the world, neither exploiting, nor being exploited, we should have the smallest army imaginable. All interests not in conflict with the interests of the dumb millions will be scrupulously respected, whether foreign or indigenous. Personally, I hate distinction between foreign and indigenous. This is the India of my dreams. …I shall be satisfied with nothing less.

M. K. Gandhi



भारत का स्वराज

यह कहा गया है कि भारत का स्वराज बहुसंख्यकों अर्थात हिंदुओं का शासन होगा। इससे बड़ी भ्रांति और कोई नहीं हो सकती। यदि ऐसा हो तो मैं उसे स्वराज मानने से इंकार कर दूंगा और अपनी पूरी शक्ति के साथ उसका विरोध करूंगा....क्योंकि मेरी दृष्टि से हिंद के स्वराज का अर्थ है सब लोगों का शासन, न्याय का शासन। इस शासन में मंत्री चाहे हिंदू हों, मुसलमान हों या सिख हों और विधान सभाओं के सदस्य चाहे केवल हिंदू हों, केवल मुसलमान हों अथवा किसी अन्य समुदाय के हों, सबको निष्पक्ष न्याय करना होगा।

मो. क. गांधी









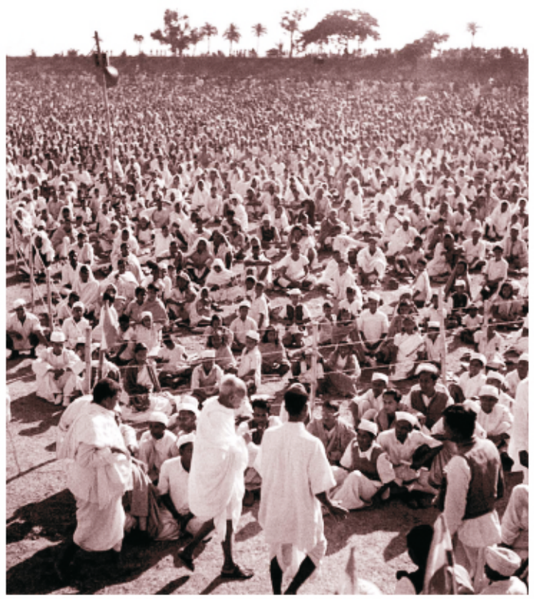
Indian Swaraj

It has been said that Indian Swaraj will be the rule of the majority community, i.e., the Hindus. There could not be a greater mistake than that. If it were to be true, I, for one, would refuse to call it Swaraj and would fight it with all the strength at my command, for to me, Hind Swaraj is the rule of all people, is the rule of justice. Whether, under rule, the ministers were Hindus or Mussalmans or Sikhs and whether legislatures were exclusively filled by the Hindus or Mussalmans or any other community, they would have to do even-handed justice.

M. K. Gandhi

मैं अपने इन लाखों–करोड़ों दरिद्र भारतवासियों को जानने का दावा करता हूं। मैं दिन के चौबीसों घंटे उनके साथ हूं। उनकी देखभाल मेरा प्रथम और अंतिम कर्तव्य है, क्योंकि मैं उन मूक लाखों–करोड़ों के हृदय में वास करने वाले भगवान के अलावा और किसी भगवान को नहीं पहचानता। वे उस ईश्वर की उपस्थिति का अनुभव नहीं करते, मैं करता हूं। और मैं इन्हीं लाखों–करोड़ों दरिद्र लोगों की सेवा के ज़रिए ईश्वर जो सत्य है अथवा सत्य जो ईश्वर है, उसकी पूजा करता हूं।

मो. क. गांधी



I claim to know the millions of poor Indians. I am with them all the twenty four hours of the day. They are my first and last care because I recognize no God except that God that is to be found in the hearts of the dumb millions. They do not recognize His presence, I do. And I worship the God that is Truth or Truth which is God through the service of these millions.

M. K. Gandhi

अहिंसक समाज

जब तक धनवानों और लाखों–करोड़ों भूखे लोगों की खाई नहीं पटती तब तक अहिंसक किस्म की सरकार की स्थापना करना नितांत असंभव है। नयी दिल्ली के आलीशान भवनों और उनके पास ही मज़दूरों की टूटी–फूटी झोपड़ियों का अंतर स्वतंत्र भारत में एक दिन भी नहीं चल सकता, जिसमें देश के गरीब लोगों के हाथों में भी उतनी ही शक्ति होगी जितनी कि सर्वाधिक धनी लोगों के हाथों में।

मो. क. गांधी



Non-violent Society

A non-violent system of government is clearly an impossibility, so long as the wide gulf between the rich and the hungry millions persists. The contrast between the palaces of New Delhi and the miserable hovels of the poor, labouring class nearby cannot last one day in a free India in which the poor will enjoy the same power as the richest in the land.



M. K. Gandhi

अहिंसक समाज

मैं मानता हूँ कि मैं अर्थशास्त्र और नीतिशास्त्र के बीच कोई सुस्पष्ट या किसी अन्य प्रकार का भेद नहीं करता। वह अर्थशास्त्र अनैतिक और इसीलिए पापयुक्त है जो किसी व्यक्ति अथवा राष्ट्र के नैतिक कल्याण को क्षति पहुँचाता हो। तदनुसार वह अर्थशास्त्र पापयुक्त है जो यह अनुमति देता है कि एक देश दूसरे देश को लूट ले। शोषित श्रम द्वारा तैयार की गई वस्तुओं को खरीदना और उनका इस्तेमाल करना पापयुक्त है।




मो. क. गांधी



Economics and Ethics

I must confess that I do not draw a sharp or any distinction between economics and ethics. Economics that hurt the moral well-being of an individual or a nation are immoral and, therefore, sinful. Thus, the economics that permit one country to prey upon another are immoral. It is sinful to buy and use articles made by sweated labour.




M. K. Gandhi

''यदि गांव नष्ट होते हैं तो भारत का भी विनाश हो जाएगा''

भारत अपने सात लाख गांवों में बसता है–इन दीन–हीन, छोटे–छोटे और दूर–दराज़ के गांवों की आबादी मुश्किल से सैकड़ों में और कभी–कभी तो सिर्फ सौ–पचास में होती है। मैं ऐसे ही किसी गांव में जाकर बसना चाहूंगा। असली भारत, मेरा भारत, वही है। हम एक ग्रामीण सभ्यता के उत्तराधिकारी हैं। अतः हमें एक आदर्श नागरिक से पहले एक आदर्श ग्रामवासी बनना होगा।



मान लीजिए, मैं एक कोल्हू लेकर गांव में जाकर बस जाता हूं तो मैं 15–20 रूपये माहवार कमाने वाला कोई साधारण तेली नहीं होऊंगा। मैं तो एक महात्मा तेली होऊंगा। मैंने यहां 'महात्मा' शब्द का प्रयोग विनोद के लिए किया है; मेरा असली आशय तो है कि तेली के रूप में मैं ग्रामवासियों के अनुकरण के लिए एक आदर्श बन जाऊंगा। मैं ऐसा तेली होऊंगा जिसे गीता और कुरान की जानकारी है। मैं इतना पढ़ा–लिखा होऊंगा कि उनके बच्चों को शिक्षा दे सकूं। मैं उन्हें कताई सिखाऊंगा और जब वे मुझ से किसी बुनकर को लाने के लिए आग्रह करेंगे तो मैं उन्हें उसी प्रकार बुनकर लाकर दूंगा जिस प्रकार मैंने उन्हें शिक्षक लाकर दिया है। यह बुनकर उन्हें सिखायेगा कि वे अपना कपड़ा किस प्रकार बुन सकते हैं।





मेरी शिक्षा पद्धति बुद्धि, शरीर और आत्मा, तीनों का विकास करती है। इसकी तुलना में, सामान्य शिक्षा पद्धति केवल बुद्धि की ओर ध्यान देती है। वहां के साधारण लोगों तक आप उच्च योग्यता–प्राप्त चिकित्सक और अस्पताली साज–सामान नहीं पहुंचा सकते। उनकी आशा का आधार तो सरल प्राकृतिक उपचार और रामनाम ही होता है। मैं उन्हें स्वास्थ्य–रक्षा और सफाई के महत्व के प्रति जागरूक करूंगा और जब वे मुझ से कहेंगे कि मैं उनके लिए एक मेहतर की व्यवस्था कर दूं तो मैं कहूंगा, "मैं आपका मेहतर हूं और आपको इस काम की शिक्षा मैं दूंगा।"



मेरी भौतिक आवश्यकताओं के लिए मेरा गांव ही मेरी दुनिया है, परन्तु मेरी आध्यात्मिक आवश्यकताओं के लिए पूरा विश्व मेरा गांव है।

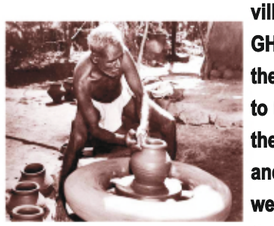
मो. क. गांधी

"If Villages perish, India will perish too"

India lives in her seven lakhs of villages-obscure, tiny, out-of-the-way villages, where the population in some cases hardly exceeds a few hundred, very often not even a few score. I would like to go and settle down in some such village. That is real India, my India. We are the inheritors of a rural civilisation. We must become ideal villagers before we become ideal citizens.



Supposing I go and settle down in a village with a GHANI (village oil press), I won't be an ordinary GHANCHI (oil presser) earning 15-20 rupees a month. I will be a Mahatma GHANCHI. I have used the word 'Mahatma' in fun, but what I mean to say is that as a GHANCHI I will become a model for the villagers to follow. I will be a GHANCHI who knows the Gita and the Quran. I will be learned enough to teach their children. I will teach them spinning and when they come and ask me for the services of a weaver, I will find them a weaver on the same terms as I found them a teacher. And the weaver will teach them how to weave their own cloth.



My system of education leads to the development of the mind, body and soul. The ordinary system cares only for the mind. You cannot take to these humble people the paraphernalia of highly qualified doctors and hospital equipment. In simple, natural remedies and Ramanama lies their only hope. I will inculcate in them the importance of hygiene and sanitation, and when they come and ask me for a sweeper, I will tell them: "I will be your sweeper and I will train you all in the job."





For my material needs village is my world, but for my spiritual needs the whole world is my village.

M. K. Gandhi

ग्राम उद्योग और स्वराज

जिन ग्राम उद्योगों का पुनर्जीवन संभव है, उनके पुनर्जीवन का प्रयास करते हुए...मैं वही कर रहा हूं जो ग्राम जीवन का प्रत्येक प्रेमी, ग्रामों के विघटन का अर्थ समझने वाला प्रत्येक व्यक्ति कर रहा है अथवा करने का प्रयास कर रहा है। मैं ग्रामवासी से अपना आटा खुद पीसकर उसे पौष्टिक चोकर निकाले बिना इस्तेमाल करने या बिक्री के लिए नहीं तो कम से कम अपनी जरूरत लायक गुड़ अपने गन्ने से स्वयं तैयार करने को कहकर आधुनिक सभ्यता के रुख को पीछे की ओर मोड़ने का प्रयास क्यों कर रहा हूं? मैं अगर ग्रामवासी से केवल फसल उगाने तक सीमित न रहकर उसे बिक्री योग्य उत्पाद में रूपांतरित करने का आग्रह करता हूं ताकि वह अपनी दैनिक आमदनी में कुछ और वृद्धि कर सके तो क्या मैं आधुनिक सभ्यता के रूख को पीछे की ओर मोड़ रहा हूं?



मो. क. गांधी



Village Industry and Swaraj

In seeking to revive such village industries as are capable of being revived... I am trying to do what every lover of village life, everyone who realizes the tragic meaning of the disintegration of villages is doing or trying to do. Why am I turning back the course of modern civilization, when I ask the villager to grind his own meal, eat it whole, including the nourishment bran, or when I ask him to turn his sugarcane into gur for his own requirements, if not for sale? Am I turning back the course of modern civilization when I ask the villagers not merely to grow raw produce, but to turn it into marketable products and thereby add a few more pies to their daily income?

M. K. Gandhi



